

विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का स्वरूप

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)



2016

शोधार्थी

एम. सुधा देवी
06HHPH04

विभागाध्यक्ष
प्रो. आर. एस. सराजू
हिन्दी विभाग
मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद-500046

शोध-निर्देशक
प्रो. सुवास कुमार
हिन्दी विभाग
मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद-500046

**“VISHNU PRABHAKAR KE UPANYASON
MEIN CHITRIT NARI KA SWAROOP”**

A thesis submitted to the University of Hyderabad in partial
fulfillment of the requirement for the award

of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

HINDI

Submitted by

M. SUDHA DEVI



2016

DEPARTMENT OF HINDI
SCHOOL OF HUMANITIES
UNIVERSITY OF HYDERABAD
HYDERABAD – 500046
TELANGANA, INDIA.



CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **“VISHNU PRABHAKAR KE UPANYASON MEIN CHITRIT NARI KA SWAROOP”** (विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का स्वरूप) submitted by **M. SUDHA DEVI** Bearing Reg. No. **06HHPH04** in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by her under our supervision and guidance which is a plagiarism free thesis.

As far as we know the thesis has not been submitted previously in part or full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the Supervisor

Signature of the Co-Supervisor

Head of Department

Dean of the School of Humanities

DECLARATION

I, M. SUDHA DEVI, hereby declare that this thesis entitled **“VISHNU PRABHAKAR KE UPANYASON MEIN CHITRIT NARI KA SWAROOP”** (विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का स्वरूप) submitted by me under the guidance and supervision of Prof. Suvas Kumar and Prof. R.S. Sarraju is a bonafide research work, which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in any University or Institution for the award of degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date : / /2016

Signature of Supervisor

Name : **M. SUDHA DEVI**

(Signature of the Student)

Signature of the Co-Supervisor

Regd. No. 06HHPH04

अनुक्रमाणिका

भूमिका	I-VI
प्रथम अध्याय : विष्णु प्रभाकर के व्यक्तित्व का विकास	1-12
1.1 विष्णु प्रभाकर का पारिवारिक जीवन	
1.2 विष्णु प्रभाकर और आर्य समाज	
द्वितीय अध्याय : विष्णु प्रभाकर का रचना संसार	13-62
2.1 कहानीकार	
2.2 उपन्यासकार	
2.3 जीवनीकार	
2.4 निबंधकार	
2.5 एकांकीकार	
तृतीय अध्याय : विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों का कथ्य और शिल्प	63-103
3.1 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों का कथ्य	
3.2 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों की शिल्पयोजना	
3.3 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों की भाषा-शैली	
चतुर्थ अध्याय : विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का समाजार्थिक स्वरूप	104-145
4.1 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का सामाजिक-आर्थिक आधार	
4.2 नारी पात्रों का वर्गीय चरित्र : उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग	
4.3 नारी पात्रों के प्रकार – श्रमिक, गृहणियाँ, कामकाजी (नौकरीपेशा),	

अधिकारी आदि

4.4 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का राजनितिक आधार

पंचम अध्याय : विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का मनोविज्ञान 146-187

5.1 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का अतीत

5.2 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का वर्तमान

5.3 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का समन्वयात्मक रूप

5.4 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का आत्म-संघर्ष

उपसंहार 188-196

संदर्भ ग्रन्थ सूची 197-206

भूमिका

साहित्य और साहित्यकार का किसी युग की परिस्थितियों से गहरा सम्बन्ध होता है। ऐसे में जब विष्णु प्रभाकर जैसे साहित्यकार की बात हो रही हो तो इस सम्बन्ध पर कोई प्रश्न चिह्न नहीं खड़ा किया जा सकता। विष्णु प्रभाकर ने खुद कहा है कि पूरा साहित्य उनके अनुभवों की देन है। प्रभाकर जी ने कहानी, उपन्यास, जीवनी, आत्मकथा, एकांकी और नाटक आदि लिखे हैं। इनको प्रसिद्धि मूलतः जीवनीकार के रूप में मिली। इन्होंने शरत्चंद्र के जीवन पर चौदह वर्ष शोध करके उनकी जीवनी लिखी। शरत्चंद्र की जीवनी लिखने का मूल कारण कुछ घटनाओं की इनके जीवन से समानता का होना भी था। विष्णु प्रभाकर ने शरत्चंद्र की तरह अपनी रचनाओं में केवल अपने अनुभवों को ही लिखा है। इनकी पूरी सृजन-प्रक्रिया अतिकल्पना के प्रभाव से प्रायः मुक्त दिखाई देती है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में जब स्त्री-विमर्श और लेखन की चर्चा ज़ोरों पर है, स्त्रीवादी साहित्य स्त्रियों और पुरुषों द्वारा लिखा जा रहा है। कुछ लोगों का मानना है कि स्त्रियों द्वारा लिखा गया साहित्य पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा प्रामाणिक है। ऐसे मतभेद विषय में भटकाव पैदा करते हैं, अतः ज़रूरी है कि इस बहस में न पड़कर मूल मुद्दे पर ध्यान दिया जाए। विष्णु प्रभाकर ने स्त्रियों के साथ हो रहे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्तर के भेदभाव को अन्याय पूर्ण माना है।

विष्णु प्रभाकर अपनी कहानी सुनाने की प्रणाली के अंतर्गत प्रचलित सामाजिक एवं धार्मिक विश्वासों पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं। मिथक की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न खड़ा करते हुए वे पूछते हैं कि निरपराध और असहाय स्त्री को दण्ड देकर उसे आजीवन, असहाय, अकेलापन एवं रिक्तता में जीवन बिताने के लिए क्यों विवश किया जाता है। वे समाज की इस क्रूर प्रवृत्ति की खिल्ली उड़ाते हैं। विष्णु प्रभाकर ने मात्र सभ्य कहे जाने वाले समाज की स्त्रियों से सम्बन्धित सवाल ही नहीं उठाया है अपितु उनके चिंतन के केन्द्र बिंदु में आदिवासी स्त्रियाँ भी हैं। उनका मानना है कि सभ्य कहे जाने वाले समाज में जितनी शिक्षा, ज्ञान और भौतिकता में उन्नति हुई है उतनी ही उनकी संवेदना में अवनति हुई है। आदिवासी स्त्रियाँ सभ्य कहे जाने वाले समाज की स्त्रियों से कई मामलों में अधिक स्वतन्त्र हैं। पुरुषसत्तात्मक विचारधारा से मुक्ति स्त्री की पहली आज़ादी होगी जहाँ अपने वर से लेकर अर्थ तक के चुनाव के समान अवसर होंगे। समाज की रूढ़िवादी विचारधारा में बदलाव से ही स्त्री इन तमाम सामाजिक बन्धनों से मुक्त हो सकती है।

विष्णु प्रभाकर ने अपनी रचनाओं में सभी वर्ग की स्त्रियों से सम्बन्धित मुद्दों को शामिल किया है। इनके समूचे औपन्यासिक लेखन के केंद्र में स्त्री रही है। 'निशिकांत' इनका प्रथम उपन्यास है। इसमें प्रभाकर जी ने धर्म और अर्थ के मुद्दे को एक विधवा स्त्री के साथ जोड़कर दिखाया

है । 'तट के बंधन' और 'कोई तो' में मध्यवर्गीय स्त्री के जीवन संघर्षों को बखूबी दिखाया है । 'अर्धनारीश्वर' विष्णु प्रभाकर का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें स्त्री से सम्बन्धित शायद ही कोई मुद्दा छूटा हो जिसको इसमें शामिल न किया गया हो । इसको अगर 'स्त्री संघर्ष का महागाथात्मक' उपन्यास कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

विष्णु प्रभाकर मूलतः मानवतावादी हैं । इनका मानवतावाद गाँधी की अहिंसा और लोहिया के समाजवाद से प्रभावित है । विष्णु प्रभाकर का सम्बन्ध गाँधी और क्रांतिकारियों से भी था । इस स्थिति में दोनों विचारधाराओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था । शुरुआती दौर में गाँधी जी से अधिक प्रभावित थे बाद में इन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए क्रांतिकारी विचारधारा को भी उचित माना है। गाँधी जी की विचारधारा के सम्बन्ध में उनका कहना है कि 'मैं गाँधी जी की अहिंसा के साथ ज्यादा दिन तक नहीं चल सका ।' सरकार और पूँजीपति वर्ग की गलत नीतियों की वजह से किसान की बिगड़ती हालत का मूल कारण देश-सेवा की भावना का अभाव ही मानते हैं । इनकी पूरी रचना-प्रक्रिया में मनुष्य को मनुष्य समझे जाने की विशेष चिंता दिखायी देती है ।

मेरे शोध का विषय 'विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का स्वरूप' है । शोध की सुविधा की दृष्टि से मैंने अपने शोध-प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया है, जो निम्नलिखित हैं-

प्रथम अध्याय 'विष्णु प्रभाकर के व्यक्तित्व का विकास' है । इसमें मैंने विष्णु प्रभाकर के जीवनानुभवों के साथ-साथ आर्य समाज का उनपर किस तरह और कैसे प्रभाव पड़ा, इस बात पर प्रकाश डालने की कोशिश की है ।

द्वितीय अध्याय 'विष्णु प्रभाकर का रचना संसार' है । इसमें मैंने विष्णु प्रभाकर के कहानी, उपन्यास, जीवनी, निबन्ध और एकांकी का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी विशेषताओं को बताने की कोशिश की है ।

तृतीय अध्याय 'विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों का कथ्य और शिल्प' है। इसमें मैंने विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों के कथ्य का परिचय दिया है । इसके साथ ही उनकी शिल्प-योजना और भाषा-शैली की मूल विशेषताओं का मूल्यांकन करने का प्रयास किया है ।

चतुर्थ अध्याय 'विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का समाजार्थिक स्वरूप' है । स्त्री की सामाजिक भूमिका कैसे अर्थ पर निर्भर करती है ? और किस प्रकार उनका वर्ग चरित्र सामने आता है, उच्च, मध्य और निम्नवर्ग की स्त्री के शोषण और संघर्ष में क्या मूलभूत अन्तर है ? इन विषयों को विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों के संदर्भ में विश्लेषित किया है। इसके साथ-साथ श्रमिक, गृहणी और कामकाजी स्त्रियों की समाज के निर्माण में क्या भूमिका है और राजनीति को लेकर स्त्रियाँ कितनी जागरूक

हैं ? उनको इसके लिए किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है ? इन सारे बिन्दुओं की चर्चा इस अध्याय के अंतर्गत की गयी है।

पंचम अध्याय 'विष्णुप्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का मनोविज्ञान' है । इस अध्याय में मैंने विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में नारी का अतीत क्या था और अतीत और वर्तमान की नारी में क्या समानताएँ और क्या भिन्नताएँ हैं ? इसके तुलनात्मक रूप को दिखाने का प्रयास किया है । वर्तमान नारी अपने अधिकारों को लेकर किस हद तक सचेत है और अगर नहीं है तो क्यों ? इन सब कार्यों में किस प्रकार समन्वय स्थापित करती है और समन्वय स्थापित करते समय किन आत्मसंघर्षों से गुज़रती है और उस समय उसपर किस प्रकार का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है । इसके मूल कारणों का विश्लेषण करने का प्रयास इस अध्याय में किया है ।

इस शोध कार्य का मूल उद्देश्य विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों के माध्यम से समाज में नारी की स्थिति और उसके विविध रूपों को प्रस्तुत करना मात्र रहा है।

इस शोध कार्य को मूर्त रूप प्रदान करने में निरन्तर मार्गदर्शन करने एवं उपयुक्त सहयोग प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम मेरे गुरु एवं शोध निर्देशक प्रो. सुवास कुमार के प्रति मैं आभारी हूँ । सह-शोधनिर्देशक एवं विभागाध्यक्ष प्रो. आर.एस. सराजू और विभाग के शिक्षकगण तथा समस्त

कर्मचारियों के विशेष सहयोग के लिए मैं कृतज्ञ हूँ । मेरे प्रिय अनुज राज बहादुर, राजीव कुमार एवं कैलास के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने टंकन से लेकर संशोधन तक अपना समय देकर इस शोध-प्रबन्ध को पूरा करने में सहयोग दिया है ।

- एम. सुधा देवी

(06HHPH04)

प्रथम अध्याय

विष्णु प्रभाकर के व्यक्तित्व का विकास

1.1 विष्णु प्रभाकर का पारिवारिक जीवन

मानव-जीवन पर तत्कालीन समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था एवं धर्म का गहरा प्रभाव होता है। जो अपनी जीवनानुभूतियों को इन बाह्य तत्वों के प्रभाव के साथ अपनी सूक्ष्म दृष्टि को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त कर पाता हो, वही सफल साहित्यकार हो सकता है। उस साहित्यकार के व्यक्तित्व को जानना-समझना और परखना उसके साहित्य के माध्यम से होता है। उसका साहित्य तभी समृद्ध माना जा सकता है जब उस साहित्यकार के जीवन में विविध अनुभव हुए हों जिनका सूक्ष्मान्वेषण करके पाठकीय अनुभूति के स्तर पर ले गया हो। इस प्रकार उसका जीवन-दर्शन और जीवन सत्य साहित्य में रूपायित होते हैं। हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार, कलम के धनी श्री विष्णु प्रभाकर ने अपने जीवन में जिन कटु सत्यों का सामना किया, उनसे जो अनुभव प्राप्त किया उनका अपनी साहित्य-साधना में उपयोग किया। साहित्य को कलात्मकता उसका बाह्य-सौंदर्य है जबकि उसका अन्तः सौंदर्य साहित्यकार के जीवनानुभूतियों से प्राप्त ज्ञान एवं जीवन-दर्शन में निहित है। इसी आधार पर हिन्दी साहित्य की दुनिया ने उनको पर्याप्त समादर और सम्मान दिया। वे साहित्यकारों की सभी पीढ़ियों के प्रिय और अजातशत्रु माने जाते रहे।

विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून 1912 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के मीरापुर गाँव में हुआ था। इनके माता-पिता महादेवी और दुर्गाप्रसाद थे। उनका जन्म ऐसे खानदान में हुआ था जिसे 'हकलों का खानदान' कहा जाता था। विष्णु प्रभाकर की साहित्य-साधना के संदर्भ में उनको 'हकलों का खानदान' से जोड़कर देखना कुछ विचित्र-सा ज़रूर लगेगा, लेकिन दिलचस्प संयोग है कि उनकी सात पीढ़ी पूर्व लाला मंगूशाह नाम के एक पुरखे से लेकर इनकी अगली पीढ़ी तक खानदान में कोई-न-कोई व्यक्ति हकला होता रहा है। इनका संयुक्त

परिवार था जिसमें इनका पालन-पोषण बड़े प्यार से हुआ था। इनके पिता श्री दुर्गाप्रसाद की तम्बाकू की दुकान थी। वे धार्मिक कट्टरता, रुढ़िग्रस्त विचारधारा एवं अंधविश्वासों के परम समर्थक थे। पूजा-पाठ बहुत करते थे। साधु प्रकृति के होने के बावजूद जबान पर गालियाँ बहुत होती थीं। अपने पिता के गाली देने के दुर्गुण के बारे में विष्णु प्रभाकर ने कहा है कि 'पुरुष के अहम् के प्रतीक हैं ये गालियाँ।'¹ फिर भी विष्णु प्रभाकर को अध्ययन-मनन करने की प्रेरणा उनके पिता से ही मिली। उनके अनुसार उनके पिताजी परिवार के आर्थिक आधार को दृढ़ बना सकने में असमर्थ और घर के हर काम में निमित्त मात्र थे।² पिता की असफलताओं से भी विष्णु प्रभाकर ने सबक सीख ली।

विष्णु प्रभाकर की माँ महादेवी आर्य समाजी परिवार में पत्नी हुई थी। शिक्षित एवं सुशील थीं। सरल, शांत स्वभावी तथा परोपकारी थीं। उस जमाने के संयुक्त परिवार में रहकर भी वे पर्दे का परित्याग करके ससुर से बातें करनेवाली पहली स्त्री थीं। अपनी माँ के मिलनसार और व्यवहार कुशल होने के गुणों का उल्लेख करते हुए विष्णु प्रभाकर कहते हैं, "मैं जब छः-सात वर्ष का था तब नाना के घर एक पड़ोसिन को यह कहते सुना था, 'जैसा माधो ने घर का नाम उजाला, वैसा सब बेटियाँ करें।'³ वे सच्चे अर्थों में 'माँ' थी और अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य की पथ-प्रदर्शिका थी। विष्णु प्रभाकर अपनी माँ से इतना प्यार करते थे कि जब उनके निःसन्तान चाचा विश्वम्भर सहाय इनको गोद लेना चाहते थे तो उन्होंने उस 'ऑफर' को ठुकरा दिया।⁴

विष्णु प्रभाकर के भरे-पूरे परिवार में उनके सगे दादा, छोटे चाचा और माँ का अक्षुण्ण प्रभाव था। उनके परिवार के इन व्यक्तियों के व्यक्तित्व का असर विविध रूपों में उनके चरित्र-निर्माण एवं रचनाकर्म में पाया जाता है। विद्यार्जन करने की प्रेरणा उन्हें दादी से सुनी कहानियों से मिली। लेकिन जब 'पट्टीपूजन

¹ 'पंखहीन', विष्णु प्रभाकर' (आत्म-कथा-प्रथम खंड), पृ. 36

² वही, पृ. 37

³ वही, पृ. 31

⁴ वही, 46

संस्कार' से उनका विद्यारंभ हुआ तब उनके बाल-मन को काल्पनिक और वास्तविक जगत् की विषमता का स्वाद पहली बार मिला।

विष्णु प्रभाकर के कथनानुसार उनके पहले गुरु उमादत्त और बाद में मौलवी खुदाबख्श की पाठशाला के अनुभव मीठी यादों की कोटि में गिने नहीं जा सकते।⁵ पंडित उमादत्त और मौलवी खुदाबख्श से असन्तुष्ट हो इनके अभिभावकों ने विष्णु प्रभाकर और उनके भाई को सरकारी प्राइमरी स्कूल में दाखिला कर दिया।

उस स्कूल में उन्होंने चार साल पढ़ाई की। बाद में हिसार में अपने मामा के घर जाकर 10वीं तक पढ़े। दसवीं से आगे पढ़ने की योग्यता रखने के बावजूद परिवार की आर्थिक दुःस्थिति के कारण वे पढ़ नहीं पाए। मामा की सिफारिश से सरकारी पशु-पालन फार्म में चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी बनकर उन्हें घर संभालना पड़ा। उनका बी.ए. तथा प्रभाकर परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना उनके अथक परिश्रम एवं विद्यार्जन की प्रतिष्ठा के सबूत हैं।

विष्णु प्रभाकर की अधिकतर रचनाओं में समाज में स्थापित पुराने मूल्यों पर जो प्रश्न उठाए जाते हैं उनका मूल स्रोत उनके बचपन और कैशोर्य में है। उनके बचपन और कैशोर्य के अनुभव निराले तो नहीं थे, लेकिन उनके मन में निराला असर छोड़ चुके थे। बचपन में ही वे रूढ़ि और अंधविश्वास से रू-ब-रू हुए। उन्हें यह देखकर आश्चर्य होता था कि अछूतों को छूने का 'पाप' पानी में सोने की चीज लगाकर उस पानी के छिड़कने से छूट जाता था। देवी की प्रतिमा को जलेबियों की रिश्वत देकर क्लास में अव्वल आने का शार्टकट बताया गया था। उनके जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ घटीं जिनसे उनके मन में सवाल करने एवं विद्रोह करने की प्रवृत्ति जगी। कर्मकांड के प्रति उनके किशोर मन में ही विद्रोह का पहला अंकुर फूटा।⁶

⁵ विष्णु प्रभाकर—'पंखहीन' (आत्म-कथा-प्रथम खंड), पृ. 48

⁶ विष्णु प्रभाकर—'पंखहीन' (आत्म-कथा-प्रथम खंड), पृ. 59

विष्णु प्रभाकर का दृढ़-संकल्प उनके आजीवन खदर पहनने में दिखाई देता है। अपने खदर पहनने के निर्णय को भावुकता कहते हुए उन्होंने यह तर्क भी प्रस्तुत किया, “भावुकता कह सकते हैं इसे भावुकता अच्छी नहीं होती, पर यह भी सच है विश्व में अनेक महान कार्य इसी भावुकता के कारण हुए।”⁷ लड़कपन एवं कैशोर्य से संबंधित घटनाओं ने उनके व्यक्तित्व के निर्माण में अहम् भूमिका निभायी। वैसे तो हरेक मनुष्य अपने जीवन में अनेक अनुभवों से गुजरता है, लेकिन उन अनुभवों को कलात्मक अभिव्यक्ति के स्तर तक ले जाने में कुछ ही लोग समर्थ हो पाते हैं। विष्णु प्रभाकर इस कला में निष्णात थे। उनका किशोरावस्था से यौवनावस्था तक का सफर बड़ा दर्दनाक था। धनार्जन की विद्या में शून्य पिताजी घर की आर्थिक स्थिति को संभाल नहीं पाए। अर्थाभाव मनुष्य-जीवन में अस्तव्यस्तता, मानसिक दबाव, मनोवैज्ञानिक उलझन का कारण बनता है। विष्णु प्रभाकर का जीवन इसका अपवाद नहीं है। अभाव ने उनकी माँ के मन को वेदनाग्रस्त बना दिया। उस वेदना ने विष की तरह फैलकर विष्णु के किशोर मन में हीन भावना पैदा होने के कारण बनी। भगवान शंकर ने खुद गरल पीकर सुरों की रक्षा की। इधर विष्णुजी ने भी जीवन में कटु अनुभवों का गरल पीकर हिन्दी साहित्य को अपना अमृत प्रदान किया। भगवान विष्णु को क्षीरजा लक्ष्मी मिलीं तो रचनाकार विष्णु प्रभाकर को सरस्वती। वे जितने उदारमना और सहज व्यक्ति थे उतने ही दृढ़प्रतिज्ञ भी थे।⁸

मिथक एवं वास्तविक जीवन के इस अंतराल ने हिन्दी साहित्य जगत को एक ऐसा साहित्य-साधक दिया जिसकी कलम बिकी नहीं जबकि कलम की मजदूरी कभी उनकी वार्षिक आय को पंद्रह हजार रुपये से ज्यादा नहीं बढ़ा पायी। वे तो सालों साल की इस फकीरी के आदी हो गए, लेकिन इसने उन्हें उदारमना भी बनाया। अज्ञेय की पंक्तियाँ हैं—‘दर्द सबको माँजता है और जिन्हें माँजता है उन्हें वह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।’

⁷ विष्णु प्रभाकर—‘पंखहीन’ (आत्म-कथा—प्रथम खंड), पृ. 52

⁸ कथादेश—सं० हरिनारायण, पृ. 8, मई 2009

कई बार जीवन का यथार्थ आदमी को इतना बाँध देता है कि वह लाख चाहने पर भी उससे मुक्त नहीं हो पाता। उसी तरह विष्णु प्रभाकर का कहना है कि हीन भावना उनके व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग जैसी बन गयी। मनोवैज्ञानिक रूप से यह भावना उनके पहले उपन्यास 'निशिकान्त' से लेकर 'अर्द्धनारीश्वर' तक अनेक बार अपना रूप-रंग बदलती आई है। विष्णु प्रभाकर के जीवन की विपरीत एवं प्रतिकूल परिस्थितियों ने उनकी अन्तः चेतना को स्पन्दित कर बार-बार उनमें नयी शक्ति भर दी जिससे उनमें संवेदनशीलता और भावुकता की मात्रा बढ़ गई। जीवन में सुखद-दुःखद एवं निर्मम परिस्थितियों से जूझने के कारण वे किसी को छोटा होते सह नहीं पाते। उनके मानस पटल पर अंकित दुःखभरी घटनाओं ने उनको बाधाओं की जंजीरों को तोड़कर मुक्त रूप से मन-मुताबिक आकाश में उड़ने की शक्ति प्रदान की।

अपने जीवन की सारी विषमताओं के बावजूद विष्णु प्रभाकर अपने उसूलों के साथ जीते रहे। सन् 1929 से सन् 1944 तक उन्होंने अनिच्छा से ही सरकारी पशुपालन फार्म में नौकरी की थी। बाद में राजनीतिक कारणों से उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी। सन् 1944 से सन् 1946 तक अखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल में एकाउण्टेंट के पद पर काम किया। सन् 1946 से 1955 तक वे स्वतंत्र रूप से लेखन-कार्य में लगे रहे। सन् 1955 से 1957 तक उन्होंने आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र में नाटक-निर्देशक के पद पर काम किया। लेकिन 1957 में वहाँ से भी त्यागपत्र देकर पुनः इस बार हमेशा के लिए, स्वतंत्र लेखन को अपनाया। वे चाहते थे कि उनका विवाह अंतरजातीय हो। लेकिन वे अपनी माँ की आज्ञा को टाल न सके। फलस्वरूप सुशीला जी से उनका विवाह 30 मई 1938 को संपन्न हुआ। इनका दांपत्य जीवन मधुमय रहा। दम्पति को चार सन्तानें हुईं—अनीता, अतुल, अमित और अर्चना।

गौर वर्ण, सौम्य चेहरा, खद्वर से आवेष्टित, मितभाषी, मृदु भाषी, ईमानदार, परिश्रमी एवं सरल प्राणी—ये विष्णु प्रभाकर के व्यक्तित्व को परिभाषित करते हैं। 'विद्या ददाति विनयम्' विष्णु प्रभाकर कीर्ति-स्तम्भ के जितने ऊँचे पहुँचते गए

उतनी ही विनम्रता को अपनाते गए। ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा कि साहित्य में अहम्मन्य लोगों की भीड़ में विष्णु प्रभाकर जैसे लोग उँगलियों पर गिने जा सकते हैं।

1.2 विष्णु प्रभाकर और आर्य-समाज

विष्णु प्रभाकर का उपन्यास 'निशिकान्त' पढ़ते हुए पाठक पाता है कि उसमें आर्य समाजी तत्व बहुत हैं। कहीं उनमें से कुछ तत्वों को श्रेय माना गया है तो कुछ को हेय। आर्य समाज से संबंधित या कहें आर्य समाज की पृष्ठभूमि में लिखा गया 'निशिकान्त' इसलिए प्रामाणिक बना है क्योंकि विष्णु प्रभाकर आर्य समाजी थे। ज्ञातव्य है कि विष्णु प्रभाकर की किशोरावस्था उनके मामा के यहाँ बीती। उनके मामा आर्य समाजी थे। अपने मामा से प्रेरणा पाकर वे आर्य समाज की गतिविधियों में भाग लेने लगे। उनका आर्य समाज से संबंध उनकी छुपी हुई प्रतिभा को बाहर लाने में एवं उनके जीवन और व्यक्तित्व में आत्म-विश्वास बढ़ाने में उपयोगी रहा।

इससे उनमें बचपन से पनपती आई हीन भावना कम होने लगी। आर्य समाज के मंच पर उन्हें जो सम्मान मिला, उसने उन्हें सरकारी नौकरी की पीड़ा सहने की शक्ति दी।⁹ वे आर्य समाज की सभाओं में अच्छी और शुद्ध हिन्दी में भाषण देने लगे। हवन में बैठना (हवन-तैयारियाँ करना), सभा संबंधी कार्यक्रमों में भाग लेना व आयोजन करना इत्यादि नाना प्रकार के कार्यों में बड़ी रुचि से अपना योगदान करने लगे।

आर्य समाज का पुस्तकालय विष्णु प्रभाकर के ज्ञान-भण्डार की कुन्जी रहा। उन्हें वहाँ तॉल्स्टाय, ओ०हेनरी, शरत्चन्द्र, प्रेमचन्द, बंकिमचन्द्र, जैसे महान साहित्य शिल्पियों की कृतियों को पढ़ने का अवसर मिला। उन्होंने उस अपार ज्ञानराशि का पूरा लाभ उठाया। उनमें जो 'साहित्यकार' सुप्तावस्था में था, उसको जगाने और सक्रिय बनाने में ये अमूल्य किताबें प्रेरकशक्ति बनीं।

⁹ 'विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य', सं. महीप सिंह, पृ. 46

विष्णु प्रभाकर की किशोरावस्था में आर्य समाज के प्रति आकर्षित होने का सबसे प्रमुख कारण यह था कि उस वक्त एक जीवन्त सक्रिय संस्था के रूप में वह समाज—सुधार पर ज़्यादा ज़ोर देता था। विष्णु प्रभाकर बचपन में छुआछूत और जाति—पांति, संबंधी भेदभाव एवं असमानताओं को बहुत नजदीक से देख चुके थे। इतिहास इस बात का गवाह है कि दलितों का शोषण एवं उन पर तरह—तरह के अत्याचार हजारों वर्षों से होते आए हैं जो इस देश का अभिशाप है। उन दलितों, पीड़ितों एवं सुविधाओं से वंचित लोगों के लिए अतीत में अनेकों प्रयास किए गये। समाज में सुधार लाने वाले पहले धर्मगुरु होते थे, बाद में ही समाज—सुधारक। स्वामी दयानंद सरस्वती वेदादि ग्रंथों एवं संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने समाज—कल्याण एवं समाज—सुधार हेतु आर्य समाज की स्थापना की।

स्वामी दयानन्द दलितोद्धार के लिए अथक प्रयास करते रहे। उनका मन्तव्य था कि जन्म से नहीं, कर्म से मनुष्य का वर्ण—निर्धारण होता है। स्वामीजी के उदार दृष्टिकोण, विचार एवं सक्रियता ने दलितों की जिन्दगियों को नया मोड़ ला दिया। उन्होंने सब वर्णों के लिए समानाधिकार का प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा, 'परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्न आदि पदार्थ सबके लिए प्रकाशित किए हैं।' ¹⁰ उन्होंने 'स्त्रीशूद्रानाधीयताम्' का खण्डन करके 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्तेतत्र देवताः' का मण्डन किया। यह प्रवृत्ति विष्णु प्रभाकर के साहित्य में व्याप्त है। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक आर्य समाज का प्रभाव और दो उनकी माँ उस मातृ—शक्ति की प्रेरणास्त्रोत थी जो मात्र जाया नहीं थी अपितु 'माँ' थी। वह 'माँ' अपनी ही नहीं दूसरों की सन्तान को भी अपना समझती थी और प्यार करती थी। इसी वजह से विष्णु प्रभाकर ने अपने साहित्य में नारी के विविध रूप—स्वरूप का विवेचन—विश्लेषण करते हुए भी कभी उसको लांछित नहीं किया।

आर्य समाज का विष्णु प्रभाकर पर स्थायी प्रभाव पड़ा था। 'स्वामी दयानन्द' पर उन्होंने एक लंबा निबन्ध लिखा जिसमें स्वामी दयानंद सरस्वती के जन्म से

¹⁰ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध, भाग—3 पृ. 248

लेकर उनकी शिक्षा-दीक्षा, आर्य समाज की स्थापना आदि का सविस्तार वर्णन है। समाज-सुधार में नारी-मुक्ति, उसका स्वावलंबन और उसके व्यक्तित्व का विकास आर्य समाज के लिए महत्वपूर्ण काम था। विष्णु प्रभाकर स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व पर मुग्ध थे। वे स्वामी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थकते नहीं थे। आर्य समाज में विधवा-विवाह व्यक्ति की समस्या से ज्यादा सामाजिक-समस्या का हल बनता गया। वैधव्य के कारण स्त्री चार दीवारों के अंदर बंद की जाती थी। जीवनपर्यन्त कूप मंडूक जैसी सड़ाँध में रहकर अपनी अंतिम साँस लेती थी। आर्य समाज के लिए नारी-मुक्ति एवं नारी-सशक्तिकरण के लिए विधवा-विवाह भी एक रास्ता है। आर्य समाज नारी-मुक्ति की ओर क्रियाशील था। इसलिए विधवा-विवाह का समर्थन करते हुए स्वामी दयानन्द ने कहा, 'विधवा-विवाह का जो लोग विरोध करते हैं उनकी पुष्टि करके विधवा का खण्डन करने की इच्छा नहीं है, पर यह अवश्य कहूँगा कि ईश्वर के समीप स्त्री-पुरुष दोनों बराबर हैं, क्योंकि वह न्यायकारी है। उसमें पक्षपात का लेश नहीं। जब पुरुषों को पुनर्विवाह करने की आज्ञा दी जाय तो स्त्रियों को दूसरे विवाह से क्यों रोका जाय ?" ¹¹ आर्य समाज का यह समाज-सुधारोचित विचार विष्णुजी के मन को जँचने लगा। इस विचार को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने अपने कथा-साहित्य में विधवा-विवाह का यथोचित संदर्भों में समर्थन किया। यह मानना अनुचित नहीं होगा कि विष्णु प्रभाकर के अनुशासनपूर्ण जीवन की सुदृढ़ नींव आर्य समाज के साथ उनका आरंभिक संपर्क ही है। इसी आर्य समाज की वजह से उन्होंने अपने लिए तीन प्रण लिये।

1. विधवा से विवाह करूँगा
2. जातिगत भेदभाव नहीं रखूँगा
3. हिन्दी का प्रचार करूँगा

अपने इन तीन प्रणों में उन्होंने दो को निभाया, परन्तु पहले प्रण का पालन करने में असमर्थ हुए। उन्हें अपनी माँ की बात मानकर सुशीला जी से शादी

¹¹ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध, विष्णु प्रभाकर, भाग-3, पृ. 47

करनी पड़ी। आजीवन उन्होंने सत्य वचन का पालन किया। उनके अपने परिवार में विभिन्न जाति, विभिन्न प्रान्त एवं वर्ण की बहु-बेटियाँ आयीं। हिन्दी से इतर भाषा बोलने वाले दामाद हुए।

हिन्दी का प्रचार करने में इन्होंने अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ी। साहित्यकार के रूप में 250-300 कहानियाँ, 7 उपन्यास, 23 जीवनी-संस्मरण, 14 नाटक, 17 एकांकी और अनेक यात्रा-वृत्तान्त, विचार-निबंध उनके हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम के नमूने हैं। 'विष्णु प्रभाकर का संपूर्ण निबंध' संकलन की भूमिका में उन्होंने कहा है कि वे कुशल निबंधकार नहीं हैं, बल्कि उनके बहुतेरे निबंध विभिन्न प्रांतों और विभिन्न संदर्भों में दिए गए उनके भाषणों का संकलन मात्र है।¹² उन्होंने भारतवर्ष के लगभग सभी प्रांतों का भ्रमण किया है। कश्मीर के सीमा प्रांत में अशांति के समय अपने साहित्यकार-दल सहित वहाँ हाज़िर हुए। उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, केरल और तमिलनाडु की व्यापक सैर की। उन्होंने इन प्रदेशों में आयोजित शिविरों में, दीक्षांत भाषण समारोहों में भाग लेकर हिन्दी भाषा की सेवा की। विष्णु प्रभाकर भारतवासियों को ही नहीं अपितु विदेशियों को भी हिंदी पढ़ाते थे। कभी-कबार समय के अभाव या स्वास्थ्य संबंधी कारणों से वे पढ़ा नहीं पाते तो दूसरे हिंदी प्रेमियों से अनुरोध करके अहिंदी भाषियों को हिंदी पढ़ाने का इन्तज़ाम करते। '.... .विष्णुजी मसिजीवी रचनाकार ही नहीं रहे, सच्चे अर्थों में उन्होंने गाँधीवादी जीवन जिया है। उन्होंने अपनी लेखनी से तो हिंदी भाषा को समृद्ध किया ही है, अपनी जीवन-पद्धति में भी वही सही मायने में हिंदी सेवी हैं। आज जब हर तरफ़ से विदेशी मुद्रा का अर्जन हमारा राष्ट्रीय उद्देश्य दिखाई दे रहा है और हर विदेशी संपर्क को व्यक्ति किसी-न-किसी तरह से अपने लाभ के लिए भुना लेना चाहता है, उस जमाने में निष्ठा से विदेशियों को हिंदी सिखाते रहना और सिखाने की व्यवस्था करते रहना

¹² विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध, विष्णु प्रभाकर, भाग-3, भूमिका-दो शब्द।

विष्णु प्रभाकर जी की स्वयं अपने जीवन-मूल्यों के प्रति ईमानदारी थी, जिस पर वे लगातार कायम रहे और जिसकी कद्र करते रहे।¹³

विष्णु प्रभाकर ने विधवा-विवाह करने की अपनी शपथ की पूर्ति मानो 'निशिकान्त' उपन्यास के माध्यम से की है। निशिकान्त विधवा कमला से शादी करता है। इससे विष्णुजी का कलाकार मन विशेष आश्वस्त होता हुआ लगता है। ऐसा लगता है कि कमला और निशिकान्त की शादी कराने का पहले से कोई विचार उपन्यासकार का नहीं था, फिर भी इन दो मुख्य पात्रों के चरित्र ऐसे विकसित हुए कि आखिर उसकी परिणति में ऐसा ही होना स्वाभाविक बन गया।

आर्य समाज ने विष्णु प्रभाकर के भीतर हिन्दी ठीक सीखने और उसका प्रचार करने की ललक पैदा की। आर्य समाज की गतिविधियों से विष्णु प्रभाकर बड़े प्रभावित थे तथा उनमें सहभागिता भी करते थे। शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज का अमूल्य योगदान रहा। आर्य समाज की सारी विशिष्टताओं के बावजूद विष्णु प्रभाकर उसके कुछ सिद्धान्तों और व्यवहारों से असहमत भी थे।

यह असहमति की भावना बाद में इस कदर बढ़ी कि उनका आर्य समाज से मोहभंग होने लगा। अपने तत्सम्बन्धी विचारों को विष्णु प्रभाकर ने अपने रचनाकर्म में स्वर दिया है। आर्य समाज से सहमति-असहमति के इस संदर्भ में विष्णु प्रभाकर कहते हैं, "वह (आर्य समाज) उन्हें गायत्री का उपदेश पाने, यज्ञोपवीत पहनने और होम करने का अधिकार देता है। उनके साथ सहभोज और किसी सीमा तक विवाह करने में भी उसे कोई आपत्ति नहीं है। उसने अनेक दलित कही जानेवाली जातियों को शुद्ध करके अपने में मिला लिया। परिणाम इसका यह हुआ कि इन जातियों में आत्मसम्मान की भावना जाग्रत हुई और वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हो उठीं।"¹⁴ लेकिन दलितोद्धार 'शुद्धि' के सीमित दायरे में होना विष्णु प्रभाकर के लिए स्वीकार्य नहीं था। नैतिकता विष्णु प्रभाकर के अनुसार मात्र दैहिक नहीं, अपत्ति मानसिक शुद्धि भी है। आर्य समाज द्वारा

¹³ 'साहित्य अमृत', सं. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, अंक 11, जून 2009, (लेख : 'विदेशियों को हिंदी सिखाने में समर्पित विष्णु प्रभाकर, रीतारानी पालीवाल) पृ. 91

¹⁴ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबंध, भाग-3, पृ. 157

परिभाषित नैतिकता, नैतिक-आचरण संबंधी बातें उनको खोखली लगीं। इस तरह आर्य समाज के सुधारवादी विचारों से पहले आकृष्ट होने वाले विष्णु प्रभाकर का बाद में आर्य समाज से इसलिए भी मोहभंग हो गया कि तब तक उसमें द्वास होने लगा था। उन्होंने देखा कि आर्य समाज में पहुँचकर “छुआछूत से मुक्ति मिलती है, पर अन्तर की छूत और भी बढ़ती है।”¹⁵ ‘निशिकान्त’ की नायिका कमला आर्य समाज के स्कूल में अध्यापिका का काम करती है। लेकिन वह तथाकथित दुराचरण के इलज़ाम में कन्या पाठशाला से निकाली जाती है। निशिकान्त आर्य समाज की सदस्यता ले चुका है। वह कमला की दयनीय स्थिति देखकर उससे सहानुभूति रखता है। तथाकथित सभ्य समाज के झूठे आचरणों से वह बौखला उठता है और आर्य समाज की अपनी सदस्यता से इस्तीफा दे देता है। यह निशिकान्त के पात्र का निर्णय मात्र नहीं, अपितु विष्णु प्रभाकर के मन में आर्य समाज के कुछ सिद्धान्तों के विरुद्ध उपजे विचारों का सूचक भी है। बदलते समयानुसार मूल्यबोध में भी यथोचित परिवर्तन का आना आवश्यक होता है। इसके लिए कोई व्यक्ति या संस्था या संघ निर्धारित निश्चित मानदंड शायद ही बनाकर सदस्यों से उसे मनवा सकता है।

शरीर के आवरण से बढ़कर अन्दर के आचरण को अधिक महत्व देने की संस्कृति उन्हें अच्छी लगती थी। जो भी हो, विष्णु प्रभाकर का जो आर्य समाज से मोहभंग हुआ, इस बात का ‘निशिकान्त’ साहित्यिक साक्षी है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विष्णु प्रभाकर और आर्य समाज से संबंधित जानकारी उनके निबन्धों, साक्षात्कारों, कथा-साहित्य तथा आत्मकथा सबमें उपलब्ध है। विष्णु प्रभाकर यद्यपि अपने आरंभिक जीवन में आर्यसमाज एवं उसके सिद्धान्तों के प्रति आकर्षित रहे, आर्य समाज के कार्यक्रमों में अति उत्सुकता और उत्साह के साथ भाग लेते थे, तथापि कालान्तर में उसके मूल्यबोध की जड़ता से असंतुष्ट हो गए। फलतः उन्होंने आर्य समाज की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। फिर भी विष्णु प्रभाकर जिस अनुशासन प्रियता के लिए जाने

¹⁵ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबंध, भाग-3, पृ. 69

जाते हैं उसका श्रेय उन्होंने आर्य समाज को ही दिया।¹⁶ अपनी शुरुआती रचनाओं में वे आर्य समाज की ख्याति के संदेशवाहक जैसे दिखायी देते हैं। बाद में आर्य समाज के क्षीणप्राय सैद्धान्तिक पक्ष का अंकन भी करने लगे।

¹⁶ 'विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य', सं. महीप सिंह, पृ. 47-48

द्वितीय अध्याय

विष्णु प्रभाकर का रचना संसार

विष्णु प्रभाकर का रचनाकर्म 'दिवाली के दिन' कहानी के साथ शुरू हुआ। यह कहानी लाहौर से निकलने वाले 'हिन्दी मिलाप' के नवम्बर 1931 अंक में प्रकाशित हुई थी। उससे पहले सन् 1926 में 'बाल सखा' में उनका एक पत्र प्रकाशित हुआ था। इस तरह चौदह वर्ष की उम्र में उनकी कलम चलने लगी जो निरंतर पिचहत्तर साल से भी ज़्यादा चलती रही। कठोर परिश्रम करने की शक्ति विरासत में मिली। पढ़ाई-लिखाई में रुचि का विस्तार करके हिन्दी साहित्यकारों की मूर्धन्य कोटि में पहुँचे। सन् 1934 के बाद से इनका नियमित लेखन होने लगा जिसकी झलक तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में दिखाई देने लगी।

उनकी लेखनी से 7 उपन्यास, 30 कहानी-संग्रह, 3 लघुकथा-संग्रह, 14 नाटक, 3 रूपान्तर, 17 एकांकी नाटक, 2 अनूदित नाटक, 25 जीवनी-संस्मरण, 5 यात्रा-वृत्तान्त, 5 विचार निबन्ध, उनकी आत्मकथा के तीन खंड, 12 बाल नाटक व एकांकी-संग्रह, 14 बाल-कथा संग्रह और 19 विविध पुस्तकें निःसृत हुईं।

साहित्यकार की दृष्टि का उपजीव्य अर्थात् मूलस्रोत व्यापक जीवन है। वहीं से वह अपने अनुभवों से प्राप्त पात्रों, घटनाओं आदि का चयन करता है। उनमें इधर-उधर, थोड़ा संशोधन-परिवर्तन करता और अपनी कल्पना से नया रंग देकर रचना को साहित्यमंच पर प्रस्तुत करता है। विष्णु प्रभाकर के कथा-साहित्य में हमें ऐसे पात्र मिलते हैं जिनसे वे रू-ब-रू हुए हैं। उनकी कृतियाँ उनके देखे एवं भोगे हुए सत्य के दस्तावेज हैं। उन्होंने अपने आत्मकथात्मक साहित्य में कहा है, "अपने सगे बाबा की चर्चा मैंने की है पर उतने में वे समा नहीं सकते। उनको लेकर मैंने एक एकांकी लिखी है मुरब्बी।"¹⁷ 'आरम्भ', 'परम्परा', 'अधूरी कहानी', 'मुरब्बी', 'निशिकान्त', 'कोई तो', 'शरीर से परे', 'एक और कुंती', 'धरती अब भी घूम रही है', 'कैसी हो मारियम्मा', 'ऐसे-ऐसे', 'दादा की कचहरी', 'अभया' जैसे

¹⁷ पंखहीन (आत्मकथा प्रथम खंड), विष्णु प्रभाकर, पृ. 31

कथा-साहित्य में उनके व्यापक जीवनानुभव का सीधा साक्षात्कार (फर्स्ट हैंड इन्फॉर्मेशन) पाठक को मिलता है।

2.1 कहानीकार

साहित्य की विविध विधाओं के धनी थे विष्णु प्रभाकर। उन्होंने कथा एवं नाटक साहित्य को विशेष महत्व दिया। जीवनी और आत्मकथा जैसी विधाओं पर भी अपनी गहरी छाप छोड़ी। वैसे तो एक तरह से ये सारी विधाएँ कथापरक ही हैं। अतः यह स्वाभाविक ही है कि वे अपने आपको मूलतः कहानीकार मानते हैं।¹⁸

उनका यह मन्तव्य भी रहा है कि सभी विधाओं के मूल में कोई-न-कोई कथात्मक मानसिकता होती है।¹⁹ उनके अबतक 30 कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें लगभग 250 कहानियाँ संग्रहीत हैं।

कहानी-लेखन में प्रेमचन्द उनके आदर्श थे, जिन्हें वे अपना गुरुतुल्य मानते थे। सन् 1932 में प्रेमचन्द से उनकी मुलाकात हुई थी। उनकी बातों से प्रेरित होकर विष्णु प्रभाकर ने गंभीरता से लिखने की कोशिश की। प्रेमचन्द ने 'जागरण' में इनकी रचनाएँ छापीं। बाद में श्रीचन्द्रगुप्त विद्यालंकर ने इनको मनोविज्ञान पर आधारित कहानियाँ लिखने की प्रेरणा दी। प्रेमचन्द की मृत्यु के बाद भी 'हंस' पत्रिका में इनकी रचनाएँ निरन्तर छपती रहीं। श्रीमती शिवरानी देवी 'हंस' पत्रिका की संपादिका थीं। उन्होंने भी विष्णु प्रभाकर को कहानी लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। उसके बाद जैनेन्द्र 'हंस' पत्रिका के संपादक बने। उन्होंने विष्णु प्रभाकर की कहानियों की बहुत प्रशंसा की। अज्ञेय ने 'विशाल भारत' में विष्णु प्रभाकर की कहानी छापते हुए उन्हें सावधान किया था कि बहुत सारे पाठक विष्णु प्रभाकर को छोटा जैनेन्द्र समझते हैं।²⁰

¹⁸ विष्णु प्रभाकर-संपूर्ण साक्षात्कार, से. रा. यात्री से बातचीत (1983), पृ. 145

¹⁹ वही, पृ. 145

²⁰ विष्णु प्रभाकर की प्रतिनिधि रचनाएँ, डॉ. कमलकिशोर गोयनका, पृ. 266

विष्णु प्रभाकर स्वयं मध्यवर्गीय परिवार के थे। इसलिए उनकी कहानियों में मध्यवर्ग से जुड़ी हुई परिस्थितियाँ, समस्याएँ एवं उसकी मानसिकता केन्द्रित की गई हैं। उनकी लोकप्रियता आलोचकों की प्रशंसा का मोहताज नहीं। क्योंकि उनकी कहानियाँ सहज जीवन की मार्मिक कहानियाँ हैं। उनकी कहानियों में घर के बाहर का जीवन कम और घर के भीतर की कहानी ज्यादा है। उनकी कहानियों में स्वतंत्रतापूर्व, विभाजन आजादी और आजादी के बाद के दौर के भारत की सामाजिक, राजनैतिक स्थितियों का मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थ परक चित्रण हुआ है।

उनकी कहानियों के विषय इतने विविधमुखी हैं कि मानव-जीवन के लगभग सभी पहलुओं का उनमें चित्रण हुआ है। नारी-संबंधी कहानियों में नारी की मानसिकता, उनकी दैहिक, समाजार्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति को लेकर उन्होंने यथार्थ और आदर्श का अद्भुत सम्मिश्रण प्रस्तुत किया है। तरह-तरह के नारी पात्र विष्णु प्रभाकर की कहानियों में मिलते हैं। 'नागफाँस', 'एक रात एक शव', 'शरीर से परे' कहानियाँ अलग किस्म की कहानियाँ हैं, जिनमें से डॉ. राजकुमार सैनी 'नागफाँस' कहानी को अस्वाभाविक एवं अविश्वसनीय मानते हैं।²¹

भले ही कहानीकार ने 'नागफाँस' की माँ पात्रा को स्वार्थी ठहराया हो और कतिपय विश्लेषक उसको विश्वसनीयता से दूर कहते हों परन्तु समाज, अर्थ-व्यवस्था, संस्कृति एवं धर्म की समग्र पृष्ठभूमि के आधार पर इस कहानी का अध्ययन करने पर हमें जीवन के कठोरतम सत्य का पता चलता है। ऐसा कहना असंगत नहीं होगा कि समाजार्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ नारी-मानसिकता के स्वरूप-निर्धारण में अहम् भूमिका निभाती है। पुरुष-प्रधान समाज ने उसे इतना पराश्रित बना कर रखा है कि वह पुरुष के आश्रय और सहारे के बिना गुजारा करने की सोच तक नहीं पाती। कहते हैं, जीवन कहानी से भी बढ़कर अजूबा होता है। 'नागफाँस' बस इसी कोटि की कहानी है, जो जीवन के अजूबे को पकड़ना चाहती है।

²¹ विष्णु प्रभाकर, सं. विश्वनाथ मिश्र/ डॉ. कृष्ण चन्द्र गुप्त, पृ. 378

अपनी कहानियों में विष्णु प्रभाकर बार-बार इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि दुनिया के किसी भी कोने में दुर्घटना या त्रासदी हो, चाहे वह किसी भी वजह से हो, उसका सबसे ज्यादा असर नारी एवं बच्चों पर पड़ता है। उस त्रासदी—जन्य समस्याओं का बोझ नारी पर पड़ता ही पड़ता है। पुरुष—वर्ग उस पर अत्याचार करता है। फिर भी वह उसी से मुक्ति का रास्ता पूछ बैठती है। इसमें विडम्बना यह है कि जो भक्षक है नारी उसी से रक्षा की याचना करने की दयनीय स्थिति में होती है।

विष्णु प्रभाकर ने समाज में स्त्री का अवमूल्यन होते हुए देखा था। सामन्ती व्यवस्था के परिणामस्वरूप देवी का वेश्या रूप भी हमें देखने को मिलता है। वेश्या—जीवन के प्रामाणिक लेखक सआदत हसन मंटो से विष्णु प्रभाकर की तुलना करते हुए गोपाल राय कहते हैं कि विष्णु जी की 'नफरत केवल नफरत' और 'मैं उन्हें क्या कहूँ?' वेश्या—जीवन पर आधारित कहानियाँ हैं, जिनमें मंटो—जैसी अनुभव की प्रामाणिकता और दर्द की टीस तो शायद नहीं है, पर जो वेश्याओं के प्रति गहरी मानवीय संवेदना से युक्त हैं।²²

विष्णु प्रभाकर की कथा—नायिकाएँ इस समाज की प्रेरणा—शक्ति हैं। वे मात्र देहयष्टि नहीं हैं। वे शरीर—दान से ऊपर उठकर पुरुष के कंधे से कंधे मिलाकर प्रगति—पथ पर आगे बढ़ने की हिम्मत रखती हैं। 'शरीर से परे' की रश्मि समाज की स्थापित मान्यताओं और मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगाती हुई कहती हैं, "मैं तुम्हें चाहती हूँ शरीर को नहीं। शरीर तुम नहीं हो।"²³ 'आश्रिता' की नायिका सोना के सम्मुख अजित विवाह का प्रस्ताव रखता है तो इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए वह कहती है, "क्या प्रेम का अंत प्रेयसी की वासना में ही है? दुनिया ने माना है—विवाह की इच्छा के बिना विधवा युवती कभी किसी के साथ रह नहीं सकती . .।"²⁴ सन् 1937 में लिखी गई इस कहानी में जो सवाल पूछा गया था वही सन् 1955 में प्रकाशित उपन्यास 'निशिकान्त' में भी दोहराया गया। यह इस बात का

²² 'समीक्षा' (अप्रैल—जून 2009) अंक 1, सं. गोपाल राय, नई दिल्ली (वर्ष : 42)

²³ मैं नारी हूँ (खण्ड—1), विष्णु प्रभाकर, पृ. 178

²⁴ 'धरती अब भी घूम रही है', विष्णु प्रभाकर—पृ. 106

प्रमाण है कि स्वतंत्रता पूर्व से लेकर आज तक भारतीय समाज में नारी की, खासकर विधवा की, दशा तथा उसके प्रति समाज के दृष्टिकोण में कुछ खास परिवर्तन नहीं आए। आजादी ने दलितों और स्त्रियों को कुछ भी नहीं दिया। उनकी परिस्थिति दिन-पर-दिन दयनीय होती गयी। 'बच्चा माँ का है', 'दूसरा वट', 'निःशंक' जैसी कहानियाँ इस विषय को केन्द्रस्थ करके लिखी गयी हैं।

विष्णु जी की अनेक कहानियों में स्त्री-पात्र इतने सशक्त और साहसी दिखाये गये हैं, कि वे पुरुष वर्ग को चुनौती देते हैं। 'आश्रिता' कहानी की नायिका सोना के साहस से अजित एकदम विचलित हो उठता है और सोचने लगता है कि आवरण के नीचे सब नंगे हैं, लेकिन आवरण को ही उठाकर फेंकने का साहस शायद ही किसी ने किया होगा।²⁵ ऐसी कहानियों के नारी-पात्र पुरुष को उसके परिभाषित रूप से भी आगे सोचने के लिए प्रेरित करते हैं।

कुछ अपवादों को छोड़ दें तो कहा जा सकता है कि मध्य वर्गीय स्त्री पात्रों का चित्रण करने में विष्णु प्रभाकर ने अपने जीवन में नज़दीक से देखे हुए लोगों के चरित्र का सहारा लिया। विष्णु प्रभाकर की सर्जन-श्रृंखला में तरह-तरह की स्त्रियाँ पाठकों को मिलती हैं। उनमें पढ़ी-लिखी, कामकाजी महिलाएँ हैं जो भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य प्रभाव में संतुलन बनाए रखने की कोशिश करती हुई नजर आती हैं। भंगी-चमार की बहू-बेटियाँ भी मिल जाती हैं जो यथार्थ-जीवन का सहज आलिंगन कर लेती हैं। कहीं-कहीं उन स्त्रियों की जुबान में मुच्छड़पन भी देखने को मिलता है।

अज्ञेय, जैनेन्द्र, यशपाल जैसे मनोवैज्ञानिक कथाकारों का प्रभाव इनकी कृतियों में मिलता है। उनकी कहानियों में पात्रों की मानसिकता एवं व्यवहार युगानुकूल हैं। दो भिन्न युगों के संध्याकाल का असर उनके पात्रों के चित्रण में दिखाई देता है। समाज में दोयम दर्जे की ज़िन्दगी जीनेवाली नारी समाजार्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कारणों से द्वन्द्वात्मक जीवन बिताती है। पुराने एवं नए मूल्यों का संघर्ष उसको विचलित करता है। विष्णु प्रभाकर की कहानियों में

²⁵ 'धरती अब भी घूम रही है' विष्णु प्रभाकर, पृ. 110

मूल्य-संघर्ष की स्थिति से संबंधित विविध स्वर सुनाई देते हैं। ये स्वर कहीं पीड़ाजनित हैं, कहीं परिवर्तन पोषक हैं, कहीं विघटन समर्थक हैं और कहीं विद्रोहात्मक हैं।²⁶ 'गृहस्थी' कहानी की नायिका वीणा अपने पति को छोड़कर जाना चाहती, लेकिन उसकी स्त्रियोचित बुद्धि उसे ऐसा करने नहीं देती। स्वार्थ और अर्थ आधारित समाज में नैतिक मूल्यों और धन के लालच के बीच संघर्ष होता है। यह अर्थ-आधारित समाज पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की देन है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी भारतीय समाज धीरे-धीरे मूल्य भ्रष्ट होता जा रहा है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरन्त बाद देश की आर्थिक स्थिति चिन्ताजनक थी। बेरोजगार युवा-पीढ़ी के मन में घोर निराशा की भावना पैदा हो चुकी थी। युवा-पीढ़ी के सामने कोई आदर्श नहीं रहा। पथभ्रष्ट नेता से उसका मोहभंग होने लगा। पति-पत्नी के संबंध को पवित्र मानने वाले समाज में नैतिकता की धज्जियाँ उड़ने लगी थीं। 'ठेका' कहानी इस बात का प्रमाण है कि विष्णु प्रभाकर ने लेखकीय स्तर पर युग-बोध किस कदर परखी हैं। आर्थिक विषमता पारिवारिक विघटन का सबसे बड़ा कारण बनी। 'खिलौने और बेटे' इसका उदाहरण है जिसमें दिखाया गया है कि परिवार की खुशी और कल्याण के लिए माँ-बाप को लगातार त्याग और आत्म-समर्पण करना पड़ता है। वेश्या कही जानेवाली नारियों के प्रति कहानीकार विष्णु प्रभाकर ने हार्दिक सहानुभूति प्रकट की है। उन नारियों के मन में छिपी वेदना, दुःख एवं ग्लानि को उन्होंने मानवीयता की कसौटी पर कसा है। वेश्या-कर्म वांछित नहीं अपितु विवशता है। इसी विवशता के कारण 'आकाश की छाया में' कहानी की नायिका अपने परिवार के आर्थिक संकट को दूर करने के लिए अपने अंधे पति से पूछ उठती है, 'मुझे शरीर का सौदा करने की आज्ञा दो। बोलो, दोगे...?'²⁷

जहाँ तक स्त्री-पुरुष के संबंध का सवाल है विष्णु प्रभाकर का विचार ऐसा है कि वे एक-दूसरे के प्याले तो भरें, लेकिन एक-दूसरे के प्याले से न पिएँ।

²⁶ 'विष्णु प्रभाकर', सं. डॉ. विश्वनाथ मिश्र/डॉ. कृष्णचंद्र गुप्त, पृ. 385

²⁷ 'विष्णु प्रभाकर', सं. डॉ. विश्वनाथ मिश्र/डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त, पृ. 384

उनके अनुसार स्त्री-पुरुष का संबंध एक-दूसरे के व्यक्तित्व का परिपूरक हो। स्त्री-पुरुष प्रेम-संबंध के वर्णन में विष्णु प्रभाकर ने कोमलता का सहारा लिया है। स्त्री-पुरुष संबंधी कहानियों में वे 'नारी और पुरुष दोनों के मुक्त व्यवहार को तरजी देते हैं लेकिन किसी भी कहानी में यह मुक्त-व्यवहार अराजकता की सीमा नहीं छूता।' ²⁸ 'मारिया' मुक्त व्यवहार को प्रेम-व्यापार का आमन्त्रण समझने की भूल करने वाले एक बुद्धिजीवी की कहानी है। बुद्धिजीवी एवं अहंकारी पुरुष को किस तरह से नारी की सहजता एवं सरलता के सम्मुख शर्मिन्दा होकर झुकना पड़ता है, इसका सहज एवं यथार्थ चित्रण विष्णुजी ने किया है। बुद्धिजीवी की मूर्खता की ओर संकेत करती हुई विदेशी महिला मारिया उसके द्वारा भेंट किए गए सारे प्रेमोपहारों को वापस लौटा देती है तथा साथ में एक चित्र भी भेजती है जिसमें लिखा रहता है, 'मुक्त व्यवहार वासना के कारण नहीं, वासना के अभाव के कारण हो पाता है।' ²⁹ उन्होंने 'शरीर से परे' कहानी में भी इसी संदेश को पाठक तक पहुँचाने का प्रयास किया है।

नारी-मनोविज्ञान विष्णु प्रभाकर की कथात्मकता का विषय क्षेत्र रहा है। उनका मानना है कि जब तक नारी पुरुष के आधिपत्य एवं आकर्षण से मुक्त नहीं होती तब तक वह नारी मुक्ति की अधिकारिणी नहीं हो सकती। अतः उसको पुरुष की ज्यादातियाँ और अत्याचारों को सहना बन्द करना पड़ेगा। सामान्यता उनकी कहानियों के स्त्री पात्र सहज एवं स्नेहिल के रूप में चित्रित किए जाते हैं। परन्तु कुछ कहानियों की नायिकाएँ तो पाठक की चिन्तन-शक्ति की सीमाओं को तोड़ देने वाले प्रश्न पूछ बैठती हैं, कहीं-कहीं यथार्थ दिखनेवाली मानसिकता का प्रदर्शन भी करती हैं। विष्णु प्रभाकर का मन्तव्य इस प्रकार है कि मनुष्य जो दिखता है, वह मात्र उतना ही नहीं होता। हिम खंड की तरह उसके व्यक्तित्व के और ज्यादातर हिस्से ओझल रहते हैं।

²⁸ 'विष्णु प्रभाकर', सं. डॉ. विश्वनाथ मिश्र/डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त, पृ. 369

²⁹ वही, पृ. 369

वैसे भी मन के सारे कार्य—कलाप सीधे ढंग से जानना अब भी संभव नहीं हो पाया है। मनुष्य कभी—कभी अकारण ही कुछ काम कर बैठता है। ऐसे ही जब सहज प्रेम अति मोह में बदल जाता है तो रूग्ण मानसिकता का व्यक्ति अत्यंत असंगत हरकतें करता हुआ दिखाई देता है। 'नागफाँस' की माँ अपने बेटे को हमेशा के लिए अपने पास रखने के लिए उसको बीमार रखना चाहती है। वह अपने बेटे का प्यार और उसका सहारा पाने के धुन में इतनी अंधी हो जाती है कि बेटे की जान की भी चिन्ता नहीं कर पाती।

सन् 1936 में विष्णु प्रभाकर ने 'संघर्ष के बाद' कहानी लिखी इसमें अन्तरजातीय विवाह के कारण बेटे को माँ से बिछुड़कर अलग रहना पड़ता है। इसमें सास, बहू और बेटे के अन्तरमन के द्वन्द्व का चित्रण हुआ है। सास—बहू के मानसिक द्वन्द्व को प्रमुखता दी गयी है। यह इस बात का प्रमाण है कि पुरुष—प्रधान समाज ने नारी—जीवन में पराधीनता का ज़हर उंडेल रखा है जिससे वह गर्भ से लेकर कब्र तक पुरुष की छाया में रहना ही श्रेयस्कर समझती है और उसकी आदी हो जाती है।

विष्णु प्रभाकर की कहानियों में एक ओर परम्परागत रूढ़िग्रस्त विचार से संक्रमित नारी हमें 'कैसी हो मारियम्मा', 'जिन्दगी एक रिहर्सल', 'एक और कुंती', 'आश्रिता', 'नागफाँस', 'गृहस्थी' जैसी कहानियों में मिलती है तो दूसरी ओर 'शरीर से परे', 'मारिया', 'मैं नारी हूँ', 'रजिम्मा' जैसी कहानियों में पुरुष—प्रधान समाज का मुकाबला करने वाली स्त्री—पात्र भी हैं। यह लेखक के चिन्तन की गतिमयता का सूचक है। विष्णु प्रभाकर के स्त्री—पात्रों में आधुनिकता—बोध है, और समकालीनता का अंश भी मौजूद है। 'गृहस्थी' की नायिका वीणा 'शरीर से परे' रश्मि की तरह देह—मुक्ति की बात सोच नहीं सकती। वह साधारण निम्न मध्यवर्ग की नारी है जिसका पति हेमेन्द्र निठल्ला एवं फालतू बुद्धिजीवी है। जब हाथ—मुँह के फासले को ही वह कम नहीं कर पाती तब क्रान्ति तो उसके लिए दूर की बात है। फिर भी उसके पात्र की गरिमा तब उभरकर आती है जब वह अपने पति को छोड़ न पाने की अपनी असमर्थता पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। 'हतभागिनी—सी वह

वहीं अपनी गठरियों, अपने दो बेखबर सोते हुए बच्चों के पास फर्श पर गिर पड़ी और फफक-फफककर रो उठी “ओह! मैं इतनी कायर क्यों हुई? क्यों.....क्यों?”¹ क्यों?”¹

इस “क्यों” का जवाब नारी सदियों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ढूँढती आ रही है। इस ‘क्यों’ के पीछे जो सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों की कृत्रिम गाँठ है वह सुलझनेवाली नहीं दिख रही है। पुरुष-प्रधान समाज ने व्यक्तगत स्वतंत्रता का गला घोटकर इन सामाजिक-सांस्कृतिक रीति-रिवाजों एवं नियमों का किला खड़ा कर दिया। विष्णु प्रभाकर के नारी-पात्र इस किले में छिद्र करके उन छिद्रों में से नए लोक की प्रकाशमयी किरणों को हमारे तमाच्छादित समाज में लाने की कोशिश करते हैं।

समाजोन्मुखी यथार्थपरक कहानी लिखने में विष्णु प्रभाकर की अपनी अलग किस्म की अहमियत है।

इस संदर्भ में ‘धरती अब भी घूम रही है’ उल्लेखनीय है। स्मरणीय बात यह है कि जहाँ ‘उसने कहा था’ कहानी अपनी शैली के लिए विशिष्ट मानी जाती है वहाँ ‘धरती अब भी घूम रही है’ अपनी कथ्यात्मक विशेषता के लिए प्रसिद्ध है। विष्णु प्रभाकर की कहानियों के कथ्य में अपने समय के प्रति जागरूकता दिखाई देती है। 1944 के बाद रोमानी और घटनाप्रधान कथाओं से यथार्थपरक कहानी की ओर हिन्दी के औसत पाठकों की रुचि मोड़ने का काम विष्णु प्रभाकर ने किया।² इस कहानी में समाज में घुस आए भ्रष्टाचार का नग्न रूप चित्रित किया गया है। इसमें मातृ विहीन दो बच्चों की करुण कहानी से पाठकों का दिल पसीज जाता है। वह बच्चा कमल कहता है, “मेरी जीजी खूबसूरत है और आप खूबसूरत लड़कियों को लेकर काम कर देते हैं.....।”³ इस बच्चे का कथन भ्रष्टाचार के घोर चंगुल में फँसकर छिन्न-भिन्न हुए समाज के अवशेषों का प्रलयकारी रूप है। 1952 के आम चुनाव में कांग्रेस की जीत के तत्पश्चात् की

¹ ‘धरती अब भी घूम रही है’, विष्णु प्रभाकर, पृ. 44

² ‘समीक्षा’, सं. गोपाल राय, (अप्रैल-जून 2009) अंक-1, (वर्ष : 42), पृ. 195

³ विष्णु प्रभाकर की प्रतिनिधि रचनाएँ, डॉ. कमलकिशोर गोयनका, पृ. 266

राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति की विषमता के साथ-साथ नेताओं, प्रशासन-विभाग के अफसरों, जमींदारों एवं पूंजीपतियों के गठबन्धन ने आम आदमी को लूट लिया। असहाय जनता ठगी हुई रह गई। भ्रष्टाचार पनपने लगा। मध्यवर्ग में नैतिक मूल्यहीनता बढ़ने लगी। उच्च वर्ग और मध्यवर्ग 'नैतिक मूल्यहीनता' की रेस में आपाधापी करने लगे। मध्यवर्गीय जीवन उनका अपना अनुभव क्षेत्र रहा। इसलिए उन्होंने मध्यवर्गीय जीवन-दशाओं और मानसिकता को सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि में लेखकीय ईमानदारी के साथ चित्रित किया। 'धरती अब भी घूम रही है (1959) जैसे कहानी-संग्रह स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पैदा हुए मोहभंग का चित्रण हैं।

इस संदर्भ में 'सुराज' कहानी उल्लेखनीय है।¹ अपनी इस राय के द्वारा गोपाल राय यह सिद्ध करना चाहते हैं कि विष्णु प्रभाकर में अपने समय के प्रति गहरी प्रतिबद्धता और अनुभव की प्रामाणिकता है।

भौतिक लालच में पड़कर मानव-मूल्यों का परिहास करने वाले लोगों पर यह कहानी माने तमाचा मारती है। इसी लीक में आती है 'एक मौत समुन्दर किनारे' जिसमें बागची का एक कथन विष्णु प्रभाकर की सामाजिक-राजनीतिक चेतना पर प्रकाश डालता है। वह कहता है, "काला धन बोरियों में ही बन्द रहता है। वहीं से उसका एक भाग विलासिता पर खर्च होता है। दूसरा भाग राजनैतिक पार्टियों को जाता है। सत्ता सेवा से नहीं काले धन से प्राप्त की जाती है, और फिर सत्ता से काला धन अर्जित किया जाता है। 20वीं सदी के अर्थशास्त्र का यही मूल सिद्धान्त है।"²

राष्ट्रचेतना से संबंधित कहानियाँ 'मेरा वतन' में संग्रहित हैं। इन कहानियों में विष्णु प्रभाकर का देश के प्रति आंतरिक लगाव निखर आता है। स्वतंत्रता-संग्राम में प्रत्यक्ष रूप में भाग न ले पाने की अपनी अधूरी इच्छा की पूर्ति मानो उन्होंने इन कहानियों के ज़रिए किया। 'रहमान का बेटा' में अंग्रेजों की

¹ विष्णु प्रभाकर की प्रतिनिधि रचनाएँ, डॉ. कमलकिशोर गोयनका, पृ. 6

² मैं नारी हूँ (खंड 1) विष्णु प्रभाकर, पृ. 117

शोषण-प्रवृत्ति के खिलाफ कमर कसनेवाली शिक्षित युवा पीढ़ी की मानसिकता का सक्षम चित्रण हुआ है। 'एक और कुंती' संग्रह में देशभक्ति के साथ-साथ साम्प्रदायिकता संबंधी कहानियाँ भी संग्रहीत हैं। 'धरती अब भी घूम रही है' संग्रह को ग्रामजीवन की कहानियों की कोटि में रखते हुए विवेकी राय कहते हैं, 'ग्रामजीवन एक विशेष मनोदशा है, एक सहज वृत्ति है और भारतीय जीवन का शाश्वत रागबोध है। वह अकृत्रिम तलवर्ती संस्पर्श है। इसे गाँव में ही नहीं, शहर के जीवन में भी जीते हुए अगणित सुख-दुःख की मूरतों में उतारा गया है। ... कहानियों को हम ग्रामकथा की स्परिट में लेंगे।'¹

हिन्दू मुसलमान-सिख की अंधी धार्मिकता के बहाने हमारा देश खंडित होता जा रहा है। इससे दुःखी विष्णु प्रभाकर अपनी कहानियों के द्वारा लिंग, जाति, भाषा, धर्म से निरपेक्ष आधुनिक चेतना लाने की कोशिश करते हैं। बस, कभी हिन्दू-मुसलमान-सिख कभी ब्राह्मण-अछूत न जाने कितने और कैसे-कैसे मुखौटे लगाकर उस हिंसक पशु को पुचकारते रहते हैं।² प्रेमचंद, जैनेन्द्र कुमार, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ अशक जैसे अपने समकालीन रचनाकारों से सूत्र लेते हुए उन्होंने व्यक्ति एवं समाज के यथार्थ को सहजता से अपनी कहानियों में अंकित किया है। विभाजन की त्रासदी जैसे 'एक और कुंती', 'मेरा वतन', 'अहम् अथाह' जैसी कहानियों में प्रमुख वस्तु बनी वैसे 'तांगेवाला', 'सफर के साथी', 'मुरब्बी', 'अधूरी कहानी' जैसी कहानियों में आदमी के सेकुलर होने पर जोर दिया गया। विष्णु प्रभाकर का मन्तव्य था कि हैवानियत से बढ़कर इन्सानियत समाज-कल्याण कर सकती है। आदमी के मानस में परिवर्तन होना चाहिए जिससे जातिगत, साम्प्रदायिक भेदभाव मिट जाए। अन्यथा—"आदमी के भीतर सोया राक्षस इसी प्रकार निरंतर जागता रहेगा अपनी भूख मिटाने को,

¹ स्वतंत्रोत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम जीवन, विवेकी राय, पृ. 48

² आखिर क्यों', विष्णु प्रभाकर, पृ. 109

नए-नए मुखौटे लगाकर।'¹ विभाजन के समय लिखी गई थी कहानियाँ आज के संदर्भ में भी संगत हैं।

विष्णु प्रभाकर के लगभग 30 कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें करीब 300 कहानियाँ संकलित हैं। उनके कहानी-संग्रहों में जो संग्रह विशेष महत्व रखते हैं उनमें 'धरती अब भी घूम रही है', 'मेरी लोकप्रिय कहानियाँ', 'चर्चित कहानियाँ', 'मैं नारी हूँ (दो खण्ड)', 'मेरा वतन', 'एक और कुंती' उल्लेखनीय हैं। खासकर 'मैं नारी हूँ' दोनों खण्डों को नारी-चेतना का प्रामाणिक दस्तावेज माना जा सकता है।

पहले खण्ड में हमारे समाज में सन् 1947 से 2000 के बीच के नारी-जीवन के प्रगति-पथ का चित्रण हुआ है। दूसरे खण्ड में सन् 1936 से सन् 1968 के मध्य के नारी-जीवन के संघर्ष का सत्यान्वेषण हुआ है। यहाँ अपेक्षाकृत अतीत की नारी देश के साथ अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती दिखाई गई है। वह संस्कारों का गुलाम है मगर मुक्ति की राह पर बढ़ना चाहती है। आधुनिक नारी अपनी प्रगति एवं सशक्तिकरण के लिए आवाज देती है। दोनों खंडों में विद्रोहात्मक स्वर है। इन संग्रहों में नारी के अनेक प्रकार मिलते हैं, लेकिन भूमंडलीकरण एवं उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित स्त्री-पात्र बहुत कम मिलते हैं।

हम पाते हैं कि विष्णु प्रभाकर कहानी में कंटेंट के प्रति समर्पित कथाकार थे।² डॉ. राजकुमार सैनी विष्णु प्रभाकर की लोकतांत्रिक जीवन पद्धति और लोकतांत्रिक संस्कृति की सराहना करते हुए आगे कहते हैं कि विष्णु प्रभाकर प्रेमचंद की भांति आदर्शवादी दृष्टि रखते थे और तत्कालीन समाज की आलोचना करते थे। उनकी दृष्टि आदर्शवादी होते हुए भी यथार्थोन्मुखी हैं; भाववादी होते हुए भी द्वंद्वात्मक है तथा स्वच्छन्दतावादी होते हुए भी मर्यादित और अनुशासित है।³

¹ वही, पृ. 67

² आजकल, डॉ० सीमा ओझा, जुलाई 2009, (लेख- 'मानवीय प्रेम के पैरोकाट 'प्रेम संबंध'), महेश दर्पण, पृ. 28

³ वही, (राजकुमार सैनी का लेख- 'लोकतांत्रिक संस्कृति के संवाहक') पृ. 33

‘नयी कहानी’ के संदर्भ में उषा प्रियंवदा की ‘वापसी’ और निर्मल वर्मा की कहानी ‘परिंदे’ का नाम लिया गया और ‘धरती अब भी घूम रही है’ की कड़ी आलोचना की गयी। साहित्यकारों की विचारधारा की तथा साहित्यिक गुटबन्दी की राजनीति करने वाले आलोचक “विष्णु प्रभाकर यथार्थ का सफल अतिक्रमण नहीं कर पाए।” जैसा लांछन लगाते हैं। दरअसल विष्णु प्रभाकर तीसरे दशक के कहानीकार होते हुए भी युगानुरूप अपनी दृष्टि को गतिमयता देते हुए रचनाकर्म करते आए हैं। तथाकथित ‘यथार्थवादी अतिक्रमण’ करके पाठकों को चौंकाना उनका लक्ष्य नहीं था, बल्कि उनका सार्थक लेखन में गहरा विश्वास था।

2. 2 उपन्यासकार

विष्णु प्रभाकर कहानीकार और नाटककार के रूप में जितने जाने जाते थे संभवतः उपन्यासकार के रूप में उससे कम। इसका कारण चाहे और कुछ भी हो, लेकिन ‘अर्द्धनारीश्वर’ के लिए जब उनको साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला तो उनके उपन्यासकार के अवतार ने अचानक हिन्दी आलोचकों का ध्यान उनके इस रूप की ओर आकर्षित किया। उन्होंने कुल सात उपन्यास लिखे हैं। उनका पहला उपन्यास ‘ढलती रात’ था। ‘ढलती रात’ का प्रकाशन सन् 1951 में हैदराबाद के ‘चेतना प्रकाशन’ से हुआ। बाद में सन् 1955 में विष्णु प्रभाकर ने उसमें पर्याप्त मात्रा में संशोधन करके प्रकाशित किया। आज ‘ढलती रात’ अप्राप्य है। उनके आखिरी उपन्यास ‘संकल्प’ में ‘स्वप्नमयी’, दर्पण का व्यक्ति’ एक जिल्द में संकलन किये गये हैं।

‘निशिकान्त’ एक ऐसा उपन्यास है जिसमें विष्णु प्रभाकर आर्य समाज एवं गाँधी-विचार से प्रभावित दिखाई देते हैं। लगता है इस उपन्यास की रचना लेखक ने अपने व्यक्तित्व-विकास में उस मोड़ पर पहुँचकर किया जब उसके मन में आर्य समाज के प्रति आस्था कम होने लगी थी और गाँधीवाद के प्रति लगाव बढ़ने लगा था। आर्य समाज से मोहभंग का व्यापक रूप ‘निशिकान्त’ में उजागर है। विष्णु प्रभाकर पर पड़े आर्य समाज और गाँधीजी के प्रभाव का साक्षी है

‘निशिकान्त’।¹ जब आर्य समाज में मानवता-पक्ष ढीला होते पाया तब विष्णु प्रभाकर को मानो गाँधीजी की मानवता से बल मिला।

दरअसल यहाँ विष्णु प्रभाकर के जीवन का संघर्ष काल देखा जा सकता है जब उन्हें सरकारी नौकर बनकर अपने स्वाभिमान और अहम् को, अपनी आशाओं, आकाँक्षाओं एवं अरमानों को कुचलना पड़ा था। ऐसे मानसिक दबाव के समय को उन्होंने अपने जीवन के पशोपेश, ग्लानि, निराशा, विरक्ति एवं न जाने और कितनी भावनाओं को शब्दबद्ध कर उपन्यास के विस्तृत कैनवास में उभारना चाहा। ‘निशिकान्त’ इसका पुख्ता उत्पाद बना अर्थात् निशिकान्त कथानायक में स्वयं विष्णु प्रभाकर ने परकाय प्रवेश किया है। निशिकान्त का चरित्र विष्णु प्रभाकर के ही चरित्र के नजदीक है। ऐसे चरित्र का विश्लेषण करते हुए राजेन्द्र यादव उसके व्यक्तित्व से चिढ़ जाते हैं। निशिकान्त अन्याय का खुलकर प्रतिरोध नहीं कर पाता है। वह फड़फड़ाकर रह जाता है। ‘यह कान्त कुछ अजीब मरियल, निराश और मुरझाया व्यक्ति है।’² आलोचकों ने निशिकान्त को कायर कहा, लेकिन विष्णु प्रभाकर पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि कार्य से अधिक मूलभूत कारण पर ध्यान दें। कथाकार के लिए महत्व निशिकान्त की कायरता से ज्यादा उन परिस्थितियों से संघर्ष करने और उन्हें जीतने का है, जो उसे कायर बना रही हैं।³ विष्णु प्रभाकर की नारियाँ बड़ी सीधी और स्वाभाविक हैं। ‘निशिकान्त’ में कमला का चरित्र-चित्रण उन्होंने इस ढंग से किया कि उससे आर्य समाज और उसकी नारी-मुक्ति-संबंधी विचारों पर भी प्रकाश पड़े। वह यह स्पष्ट करना चाहते थे कि ‘आर्य समाज ने नारी को सीमित मुक्ति तो दी पर उसकी गतिविधियों पर अंकुश भी लगाए।’⁴ इसी कारण कमला के चरित्र-चित्रण में लेखकीय अधिकार से छूटकर वह चरित्र (कमला) स्वयं निर्मित होती है। डॉ. नामवर सिंह का कथन इस बात को स्पष्ट करता है कि निशिकान्त के चरित्र से

¹ ‘विष्णु प्रभाकर की प्रतिनिधि रचनाएँ’, डॉ. कमल किशोर गोयनका, पृ. 296

² ‘अठारह उपन्यास’, राजेन्द्र यादव, पृ. 961

³ ‘निशिकान्त’, विष्णु प्रभाकर, भूमिका

⁴ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण साक्षात्कार, पृ. 45

कई गुना ज्यादा शक्तिशाली पात्र है कमला। इसलिए उपन्यास का शीर्षक 'कमला' रखना ज्यादा उपयुक्त एवं सार्थक होगा। आलोचक और विवेचक की बातें अपनी-अपनी जगह, परन्तु सच तो यह है कि विष्णु प्रभाकर को यह उपन्यास लिखकर अपने को मुक्त करने का आनन्द जरूर प्राप्त हुआ होगा। जैसे उनके कहानी एवं नाटकों में मानवता का व्यापक रूप देखने को मिलता है वैसे ही उपन्यासों में भी वे मानवता की खुली वकालत करते हैं। यथा निशिकान्त कहता है, "हर कहीं हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, पर मनुष्य आज कहीं नहीं है।"⁵

सन् 1955 में उनका तीसरा उपन्यास 'तट के बंधन' प्रकाशित हुआ। इसमें सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं से जूझते मध्यवर्गीय परिवारों की कहानी बड़े ही यथार्थपरक दृष्टि से कही गयी है। डाकुओं के द्वारा युवती को उठाया जाना और बलात्कार का शिकार होना, बाद में जीवन-पथ के चौराहे पर किंकर्तव्य विमूढ़ खड़े होने के बावजूद अपने भविष्य का निर्णय न कर पाना—ये सब बातें एक मध्यवर्गीय परिवार के लिए दुःस्वप्न से भी भयंकर हैं। इस उपन्यास की राजनीतिक पृष्ठभूमि में विभाजन की त्रासदी वाला सभ्य है। सामाजिक परिस्थितियाँ ऐसी कि घर की बहू-बेटियों के साथ बलात्कार होने पर या तो उन्हें घर से बाहर भेज दें या एकाध संदर्भों में भोगे हुए अपमान को दफनाकर मुर्दों की तरह सारा जीवन बिताते रहें। विष्णु प्रभाकर इसका यथार्थपरक चित्रण करते हैं, लेकिन वे यहाँ रुकते नहीं। बलात्कार की शिकार नारी उस अपमान से ऊपर उठकर आगे कदम बढ़ाती है। विष्णु प्रभाकर उस स्त्री के संघर्ष में गहरी आस्था रखते हैं और यह संघर्ष कथा-धारा को जीवन्त रखता और उसे आगे बढ़ाता है। नारी और नारी-अस्मिता-संबंधी समाज के विचार एक ओर हैं इसी ओर नारी की स्वयं के प्रति सोच है। मानो ये दो तटों की तरह उसके जीवन-प्रवाह के बंधन बनकर रह जाते हैं। इस उपन्यास में जितनी भी पीड़ित नारियाँ हैं वे अपने आंतरिक बल के सहारे वास्तविकता की कठोर भूमि पर खड़ी होकर व्यवस्था से लड़ती-भिड़ती हैं। समाज को आत्म विश्वास के साथ चुनौती देती हैं। कथानायक

⁵ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण साक्षात्कार, पृ. 07

‘गोपाल’ नीलम का पत्र पढ़कर कहता है, “क्या कोई कल्पना कर सकता था कि वह छुईमुई नीलम एक दिन इतनी शक्ति पा लेगी? आदमी के अंदर ही सब कुछ है, केवल उसे इस तथ्य को जानना है। तब उससे शक्तिशाली इस संसार में कोई नहीं, विधाता भी नहीं।”⁶

‘स्वप्नमयी’ विष्णु प्रभाकर का चौथा उपन्यास है। इसमें वे अपने स्वप्न और आदर्श को साकार रूप प्रदान करते हैं। ‘स्वप्नमयी’ रूढ़िग्रस्त संस्कारों को तोड़कर एक आदर्श समाज की स्थापना करने के लिए प्रयासरत है। यहाँ वाचिका (अलका) का चरित्रांकन इस ढंग से किया गया है मानो विष्णु प्रभाकर की कल्पना के परो में ताजी ऊर्जा भर आयी हो। उनको भली-भांति मालूम था कि पंछी जितना भी ऊपर उड़े फिर भी उसे दाना चुगना ज़मीन पर ही है। वास्तविक जीवन के कठोर से कठोरतम सत्य मनुष्य की आदर्शवादिता पर अंकुश लगाते हैं। अलका यद्यपि कोमल है तथापि अपने दृढ़ निश्चय से पीछे हटना नहीं जानती। अपने उसूलों के लिए जान की कुरबानी तक देती है। एक ढंग से देखें तो यह सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन लाने में उसकी असमर्थता का द्योतक लग सकता है। परिवेश और परिस्थितियाँ सदा उसके प्रतिकूल होती हैं। हालाँकि उसका पति उसका साथ देने का प्रयास करता है, फिर भी अलका प्राणों से हाथ धो बैठती है। समाज में उसकी इकाइयों के पारस्परिक संबंध, सह-अस्तित्व एवं समझौते के अभाव में अलका जैसी विशिष्ट इकाई मिट जाती है। ‘स्वप्नमयी’ की अलका में चाहे चिंगारी का ताप नहीं हो, फिर भी बरसात की पहली बूँद से उपजी मिट्टी की सोंधी खूशबू का सुखद आभास जरूर मिलता है। ‘समर्थ’ साहित्यकार इस प्रकार प्रश्नचिन्ह लगा सकता है कि समाधान का स्पष्ट संकेत रचना में स्वतः ही उभर आये। यह लेखक की क्षमता और समझ पर निर्भर है।⁷ विष्णु प्रभाकर की ‘कोई तो’ जैसे उपन्यास इस कथन को सही साबित करती है। नैतिकता के चक्रव्यूह में फँसकर मध्यवर्ग दिशाहीन होता रहा है। लेकिन उसमें आत्म-निरीक्षण, आलोचना

⁶ ‘तट के बंधन’, विष्णु प्रभाकर, पृ. 189

⁷ विष्णु प्रभाकर : प्रतिनिधि रचनाएँ, डॉ. कमलकिशोर गोयनका, पृ. 300

और आत्म-चिंतन करने की क्षमता है जिसके फलस्वरूप स्वनिर्मित तकदीर का मालिक बन जाता है। वस्तुतः यही 'कोई तो' का बीज कथ्य है। 'निशिकान्त' में कही गई कुछ बातों को विष्णु प्रभाकर ने 'कोई तो' में भी प्रस्तुत किया है।

'अनाचार पाप है, पर आचार को जाने बिना उसके नियमों का पालन करना अनाचार से भी बुरा है।'⁸ विष्णु प्रभाकर स्त्री-जीवन के कुशल चितेरे हैं। डॉ० गोपाल राय का कहना है कि विष्णु प्रभाकर ने नारी नियति की बहुआयामी त्रासदी को अपने उपन्यासों का केन्द्रीय कथ्य बनाया है।⁹ 'कोई तो' में इसका गंभीर रूप चित्रित है। 'निशिकान्त', 'तट के बंधन' के स्त्री पात्र सहज, स्वाभाविक ढंग से समस्या से ऊपर उठ पाते हैं। उन उपन्यासों में चुनौती, दर्शन इत्यादि गंभीर बातों का अभाव रहा है। लेकिन 'कोई तो' में एक चुनौती है, तनाव है जिससे घटना प्रधान होकर कहानी रफतार पकड़ती है और चरित्र स्वयं लेखकीय प्रयास के बिना ही विकसित होते जाते। घटना प्रधान होने के कारण इसमें संवेदनशीलता की कमी महसूस होती है। नारी-मुक्ति मात्र देह-मुक्ति नहीं, अपितु नारी की सोच की मुक्ति है। विष्णु प्रभाकर ऐसे अकेले बड़े, बुजुर्ग लेखक नज़र आते हैं जिन्होंने सन् 1980 में ही नारी की सच्ची मुक्ति की ओर संकेत किया। यह उनके विचार की प्रगतिशीलता का द्योतक है। वह सड़ते तालाब की तरह नहीं वरन् मुक्त नदी की तरह है। मध्यवर्ग खुद शोषित है मगर वह अपने ही वर्ग के तथा निम्नवर्ग के लोगों का शोषण करता है। मध्यवर्गीय पढ़ी-लिखी लड़की परम्परागत नारी-संहिता को चुनौती देती है। बलात्कार की शिकार स्त्रियों की समस्या इसमें भी उठायी गयी है।

'दर्पण का व्यक्ति' में संस्कार की दासी बनी हुई एक नारी की करुण कहानी है। यह रचना सन् 1968 में प्रकाशित हुई थी पर बाद में 1993 में 'संस्कार' शीर्षक से छपी। इसी तरह 'स्वप्नमयी' भी दूसरे नाम 'स्वप्न' से पुनः प्रकाशित हुई। 'संकल्प' 1993 ई० पुस्तक 'संस्कार', 'स्वप्न' और 'संकल्प' शीर्षक

⁸ 'निशिकान्त', विष्णु प्रभाकर, पृ. 146

⁹ 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास', गोपाल राय, पृ. 234

उपन्यासिका में विधवा युवती की बहुआयामी समस्याओं का अंकन हुआ है। 'अर्द्धनारीश्वर' 1993 ई० में प्रकाशित हुआ था।

पत्र शैली में लिखा गया उपन्यास 'दर्पण का व्यक्ति' 1968 हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार राहुल सांकृत्यायन के जीवन से प्रेरित लगता है।¹⁰ इसका नायक एक मशहूर लेखक है और नायिका उसकी परित्यक्ता पत्नी। नायक की प्रसिद्धि उनके व्यक्तिगत जीवन से एकदम अलग है। अपने व्यक्तिगत जीवन में वह किस स्तर तक गिर सकता है इसका चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। इस उपन्यास में पुरुष-प्रधान समाज में नारी की निम्नतर स्थिति, विधवा-विवाह, सुहाग की विडम्बना, विवाह-विच्छेद आदि कई वर्तमान सामाजिक समस्याओं पर भी विचार किया गया है और उनके विरोधाभासों को स्पष्ट किया है।¹¹ खुद इस उपन्यास में एक ओर तीखा व्यंग्य है तो दूसरी ओर करुण भावुकता है जिससे नायिका का चरित्र बनता है। नायिका पुरुष प्रधान समाज की अतियों पर सवाल करने की हिम्मत करती है। उसकी करुणार्द्र अंतिम प्रार्थना में नारी वर्ग की कमजोरी मिलती है। वह उसके चरित्र को विश्वसनीय तो बनाती है मगर उसे बलहीन भी कर देती है, हालाँकि इस बलहीनता का कारण वह खुद नहीं समाज ही है। इसलिए तो वह कह उठती है, "मुझसे उन्होंने दूसरा विवाह कर लेने का प्रस्ताव किया था। मैं ही साहस न कर सकी।

मैं से मेरा अर्थ केवल मुझसे ही नहीं, इसमें मेरा परिवार, मेरी जाति और सबसे ऊपर संसार बोध सम्मिलित है।¹²

'अर्द्धनारीश्वर' विष्णु प्रभाकर की नारी-विषयक संवेदना और चिन्तन का मूर्त रूप है।¹³ इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों को अर्द्धनारीश्वर रूप में दिखाने की कोशिश की गई है। कथाकार चाहता है कि पति-पत्नी का सह-अस्तित्व ऐसा हो कि इस सह-अस्तित्व में भी पुरुष और स्त्री अपने व्यक्तित्व, अपनी

¹⁰ 'संकल्प', विष्णु प्रभाकर, भूमिका

¹¹ 'विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य', डॉ. महीप सिंह पृ. 115

¹² 'दर्पण का व्यक्ति', विष्णु प्रभाकर, पृ. 86

¹³ 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास', गोपाल राय, पृ. 235

अस्मिता को अलग-अलग कायम रखें। इस प्रकार वे एक दूसरे के परिपूरक बने रहें। इसी तत्व का प्रतिपादन 'अर्द्धनारीश्वर' में हुआ है। इसमें पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण अधिक महत्वपूर्ण है। 'कोई तो' में बलात्कार की समस्या प्रासंगिक रूप में आयी थी जिसे 'अर्द्धनारीश्वर' में विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। मानो वर्तिका की कहानी ही सुमिता की कहानी के रूप में पल्लवित हुई।¹⁴

'अर्द्धनारीश्वर' के मिथक को पात्रों के संदर्भ में यहाँ भले ही बेशक न खोला गया हो मगर आज के स्त्री-पुरुष संबंधों के संदर्भ में इसे 'डी-कोड' करने की यह पहल तो है ही।¹⁵

विष्णु प्रभाकर के नारी-पात्र साहसी, तर्कशील, आत्मनिर्भर और स्वयंभू हैं। यत्र-तत्र उनके व्यक्तित्व में विरोधाभास की भी झलक स्वाभाविक रूप से मिलती है। यह पात्र के विवेकशील व्यक्तित्व का हिस्सा बनकर आता है तथा उपन्यास की चरम-सीमा तक आते-आते अपना रूप परिवर्तन कर लेता है। भले ही विष्णु प्रभाकर के नारी पात्र झाँसी की रानी न हों, परन्तु वे कम साहसी भी नहीं हैं। उनमें स्त्रियोचित कमियाँ और कमजोरियाँ अवश्य हैं लेकिन उन कमजोरियों ने आगे बढ़कर, वास्तविकता से जूझकर उभरने का आंतरिक बल और धीरज भी प्रदान किये हैं जो उनके व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग प्रतीत होते हैं।

'निशिकान्त' से लेकर 'अर्द्धनारीश्वर' और 'संकल्प' तक की यात्रा विष्णु प्रभाकर के लिए गहनता, संवेदनात्मकता एवं मार्मिकता की ऊँचाइयों तक पहुँचने की यात्रा कही जा सकती है। इस रचना-यात्रा में कहीं अत्यन्त संवेदनशील थोड़े-से पुरुष पात्र हैं तो कहीं वे पुरुष-प्रधान पात्रों में 'अहं' की भावना है जो स्त्री के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने से उन्हें रोक देती है। नारी की अवहेलना करने लगे पुरुष पात्र भी यहाँ मिलते हैं। पुरुष जिस नारी को अबला समझता है वह अपने मानसिक बल से पुरुष वर्ग के लिए चुनौती बनकर उसे हैरान कर देती है। ऐसा लगता है कि विष्णु प्रभाकर अपनी स्त्री पात्रों को अपना चरित्र का

¹⁴ 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास', गोपाल राय, पृ. 235

¹⁵ 'साहित्य अमृत', जून 2009, वर्ष 14, अंक 11, सं. त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी, पृ. 85,

विकास स्वयं करने की छूट दे देते हैं, अर्थात् विष्णु प्रभाकर की स्त्रियाँ लेखक की लेखनी से अपने आपको मुक्त कर लेने का निजी बल रखती हैं। विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों की बड़ी खासियत उनके स्त्री पात्र के सहज चित्रण की है।

विष्णु प्रभाकर का नाम हिन्दी साहित्य में अपनी परदुःखकातरता एवं उदारता के लिए जाना जाता रहा है। वे ऐसी विभूति थे कि दूसरों को छोटे होते सह नहीं पाते थे, जिनकी कथनी और करनी में सामंजस्य था। गाँधीजी के कथनानुसार उन्होंने सभ्यता की चरम सीमा छुई। उन्होंने स्वेच्छा से अपनी आवश्यकताओं को कम कर लिया था। आकर्षक नौकरियाँ छोड़कर मसिजीवी बने रहे। विभिन्नवादों से प्रभावित होने के बावजूद 'मानवतावाद' में उनकी आस्था बनी रही और गाँधी की अँगुली नहीं छोड़ी। वे काफी हादसे के केन्द्राकर्षण थे। प्रतिष्ठित लेखकों और नव लेखकों के बीच प्रेम का पुल बाँधने में माहिर थे। तीसरे दशक के कहानीकार थे, परन्तु उसके बाद और 5-6 दशक तक निन्तर लिखते रहे। उपन्यास के विशाल कैनवास पर अपनी अनुभूति-सिक्त रंग-बिरंगे चित्र बनाये। उन्होंने उत्तर-दक्षिण के भेदभाव के बिना भगतसिंह से लेकर काका कालेलकर, शरतचन्द्र जैसे महारथियों की जीवनियाँ लिखीं।

उन्होंने नारी के उत्तम गुणों, उसकी कमजोरियों, पुरुष-प्रधान समाज की 'अहंवादिता', सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं आदि का यथार्थपरक चित्रण अपनी कहानियों में किया है। नारी के विभिन्न रूपों का मार्मिक विवेचन-विश्लेषण इनके साहित्य की विशेषता है। मानव-मनोविज्ञान की गहराइयों में जाकर अपने कथ्य को विश्वसनीय बनाना इनका प्रिय शगल रहा। एकांकियों में सामाजिक, ऐतिहासिक विषयों की ओर विष्णु प्रभाकर का झुकाव अपेक्षाकृत अधिक है। हास्य-व्यंग्य इनकी शैली की दूसरी खास बात है जिसका उन्होंने यथोचित उपयोग किया है। उनकी एकांकियों में नाटकीय तत्व काफी मात्रा में है।

अपने निबंधों में उन्होंने मानो अपने जीवनानुभवों का रस निचोड़ रखा है। शायद ही ऐसा विषय होगा जिसे उनकी कलम ने छुआ न हो। उनके निबन्धों के विषय कितने गंभीर होते हैं उतनी ही उनकी भाषा सरल और सहज है। आर्य

समाज, गाँधीजी, जवाहरलाल नेहरू, शरत्चन्द्र, लेनिन, संस्कृति, समाज, राजनीति, प्रजातंत्र ऐसे बहुत सारे मुख्य बिन्दुओं पर उनका ध्यान केन्द्रित रहा। उनके समाज संस्कृति संबंधी निबन्धों में दार्शनिकता का फुट है जो उनकी गहनता को बढ़ावा देता है।

नारी केन्द्रित उपन्यास लेखन में विष्णु प्रभाकर की अपनी विशिष्टता है। शोषण के विरोध करने की उनकी प्रवृत्ति रचनाओं में नारी-उत्थान के रूप में परिणत हुई है। अन्याय का प्रतिकार, सहज मानवता की स्थापना, नारी की मानसिकता के समाजार्थिक-सांस्कृतिक कारणों को ढूँढना एवं तथाकथित नैतिकता-अनैतिकता के भ्रम से मुक्त होना चाहिए।

उनके रचना-कर्म की अपनी विशेषता है। नारी-मुक्ति और मानवतावाद को उन्होंने अपने साहित्य की विविध विधाओं में गूँथकर पेश किया है।

लम्बे लेखन कार्य के कारण उनकी एकाध कहानियों और उपन्यासों का कथ्य एक जैसे मिल सकता है। कुछ विवेचक उसे 'पुनरावृत्ति दोष' मानते हैं, जबकि कुछ और विश्लेषक उसे 'पुनरावृत्ति प्रकाश' की संज्ञा देते हैं। 'जिन्दगी एक रिहर्सल' कहानी उनके 'अर्द्धनारीश्वर' उपन्यास में केरल की महिला श्यामल की कहानी बनकर आती है। 'शरीर से परे' की रश्मि का चरित्र 'स्वप्नमयी' की अलका से मिलती-जुलती है। 'कोई तो' की वर्तिका का मानों विकसित एवं परिवर्धित रूप है सुमिता। यहाँ तक 'कोई तो' और 'अर्द्धनारीश्वर' के कथ्य और मर्म में भी समानता है। यद्यपि किंचित संदर्भों में पुनरावृत्ति 'दोष' पाया जाता है तथापि कुछ एक संदर्भों में पात्रों की विकासशीलता के कारण पुनरावृत्ति 'प्रकाश' रचना में गहनता एवं व्यापकता लाकर संप्रेषणीय बनाने का काम करता है।

विष्णु प्रभाकर का साहित्य और जीवन एक-दूसरे के परिपूरक रहे। जीवन और लेखन उनके लिए एक ही सिक्के के दो पहलू रहे।¹⁶ आजीवन उन्होंने बुरे में अच्छाई ढूँढने का मसिहाई काम किया। इसके लिए ही कलम पकड़ी और उस काम को निरन्तर आगे बढ़ाते गये। विष्णु प्रभाकर का जीवन ऐसा रहा कि उनको

¹⁶ 'नया ज्ञानोदय', अंक 75, मई 2009, सं. रवीन्द्र कालिया, पृ. 11,

अपने लेखन में भी निरंतर संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते रहना प्रिय था। अक्सर इस संघर्षमय यात्रा में वे अकेले रहे, फिर भी अपनी रचनाधर्मिता एवं दायित्वों से मुँह न मोड़ा। वे अकेले चलते रहे। 'जोदि तोर डाक सुने केऊ न आशे, तोबे एकला चलो रे; एकला चलो रे'।

2.3 जीवनीकार

विष्णु प्रभाकर के अच्छे कहानीकार होने के कारण उनके द्वारा लिखित जीवनी भी कथात्मक प्रवाह लेकर आती है। उन्होंने अनेक जीवनी और संस्मरण लिखे, लेकिन उनमें सबसे महत्वपूर्ण और सबसे प्रसिद्ध जीवनी है 'आवारा मसीहा'। बल्कि, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि विष्णु प्रभाकर के जीवनीकार रूप ने 'आवारा मसीहा' की अतिप्रसिद्धि के द्वारा उनके कथाकार और नाटककार रूपों को लगभग फीका बना दिया।

डॉ. जानसन ने कहा कि वही व्यक्ति किसी की जीवनी लिख सकता है जो उसके साथ खाता—पीता, बैठता—उठता और बोलता बतियाता रहा हो।¹⁷ लेकिन डॉ. जानसन के कथन को विष्णु प्रभाकर ने झूठा साबित कर दिया। नाथूराम 'प्रेमी' ने बार—बार विष्णु प्रभाकर को यह जीवनी लिखने के लिए आग्रह किया था और विष्णु प्रभाकर को यह जीवनी लिखने के लिए आग्रह किया था और विष्णु प्रभाकर ने स्वीकार कर लिया था। शरत् के जीवन से संबंधित सामग्री संकलन करना बड़ा दुष्कर काम रहा। 'आवारा मसीहा' की सर्जना में विष्णु प्रभाकर के अथक परिश्रम के विविध आयाम ध्यान देने योग्य हैं। इनकी जानकारी के बिना उनके जीवनीकार रूप को आँकना अपूर्ण रह जाएगा। शरत् के बारे में जहाँ कहीं भी पूछने गए वहाँ विष्णु प्रभाकर को हतोत्साहित करने वाली बातें सुनने को मिलीं। बंगाल के एक सम्मानित सज्जन ने जीवनी लिखने की बात सुनी तो कह डाला कि—“क्यों इतने परेशान होते हों, दो—चार गुण्डों का जीवन देख लो,

¹⁷ 'आवारा मसीहा', विष्णु प्रभाकर, पृ. 41—42

शरत्चन्द्र की जीवनी तैयार हो जायेगी।¹⁸ न बंगाल में, न बरमा में शरत् को भद्र समाज में गिना गया। इसलिए शरत् के जीवन से संबंधित सामग्री—संकलन करने के लिए विष्णु प्रभाकर उन सभी जगहों पर गए जहाँ शरत् रहे या कभी गये थे। इसके लिए रचनाधर्मी, मसीजीवी विष्णु प्रभाकर को आर्थिक, शारीरिक रूप से भी बहुत कुछ सहना पड़ा, लेकिन सत्य तक पहुँचने की प्रक्रिया के बारे में उन्होंने लिखा है—“कला के लिए सत्य भले ही आदर्श न हो, परन्तु जीवन—चरित्र लिखना इस दृष्टि से विज्ञान के अधिक पास है और उसका आदर्श सत्य ही है, पर.... घटना तो सत्य नहीं है। उसके जीवन में महत्व है, लेकिन उससे अधिक महत्व है घटना के पीछे की प्रेरणा का। वही प्रेरणा सत्य है। मैंने इतना समय इसलिए लगाया कि मैं भ्रांत और अभ्रांत घटनाओं के पीछे के सत्य को पहचान सकूँ, जिससे घटनाओं से परे जो वास्तविक शरत्चन्द्र है उसका रूप पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जा सके; यह सब कैसे और किस प्रकार हुआ, यह मैं नहीं बता सकूँगा। जिसे ‘सिक्स्थ सेंस’ कहते हैं, शायद यही मेरी सहायक रही।¹⁹

‘आवारा मसीहा’ में शरत् के चरित्र—निर्माण के तत्वों को जाँचते—परखते हुए विष्णु प्रभाकर उनके बचपन से उसकी डोर पकड़ते हैं। शरत् का बचपन एवं किशोरावस्था अभावग्रस्त रहा था। उनकी माँ भुवनमोहिनी और दोस्त राजू के प्यार और सहानुभूति से उसको आश्वासन मिला। उनकी माँ मात्र उनकी जाया नहीं थी अपितु सब बच्चों की माँ थीं जो अपने ही नहीं दूसरों के बच्चों के प्रति वात्सल्य भाव व्यक्त करती थीं। उनके अदम्य प्रेम एवं स्नेह के कारण ही, अपनी सारी कमियों के बावजूद, शरत् अपनी पढ़ाई में ध्यान देने लगा। विष्णु प्रभाकर आगे जाकर शरत् के चरित्र की पर्त पर पर्त खोलते हुए पाठक के सम्मुख और एक मार्मिक प्रसंग प्रस्तुत करते हैं। शरत् की माँ ने उनसे एक दिन कहा, “शरत्,

¹⁸ ‘आवारा मसीहा’ भूमिका, विष्णु प्रभाकर, पृ. 7

¹⁹ ‘आवारा मसीहा’ भूमिका, विष्णु प्रभाकर, पृ. 11

मेरे बच्चे! मैं जानती हूँ कि अपनी सारी शरारतों के बावजूद तू एक अच्छा लड़का है। तू मन लगाकर पढ़ता रह, मैं तेरी सहायता करूँगी।²⁰

शरत् की माँ अत्यन्त स्नेहमयी थीं। रॉबिनहुड को म्लान कर देनेवाला चरित्र था उनके अभिन्न दोस्त राजू का। उन्होंने राजू से असीम स्नेह, दुःसाहस एवं परदुःख निवारण की विद्या पायी। जीवन की विषम परिस्थितियों ने उस शांत स्वभावी, प्यार के लिए तड़पनेवाले बच्चे को बढ़ते-बढ़ते एक आवारा, गुण्डागर्दी करनेवाले बदचलन युवक का रूप दिया। विष्णु प्रभाकर विविध घटनाओं एवं उक्तियों के द्वारा यह स्पष्ट कहते हैं कि अनुभव अनुभूति का स्थूल रूप है। शरत् के जीवनानुभवों ने उनको कहाँ से कहाँ ले जाकर छोड़ दिया। बाद में शरत् बंगाल के अपराजेय कथाशिल्पी बने, यह तो ज्ञात है। लेकिन उनकी इस कुख्याति और प्रख्याति के अंतराल में शरत् ने जो अनुभव प्राप्त किये वह उनके साहित्य-यात्रा की नींव बने।

शरत्चन्द्र के साहित्य में व्याप्त करुण-भावना का मूल स्रोत वे खुद थे। विषम परिस्थितियों से आक्रांत शरत् की जीवनी-लेखन का जोखिम भरा काम विष्णु प्रभाकर ने शायद इसलिए उठाया होगा कि शरत् ने लिखा है 'मैंने अनीति का प्रसार करने के लिए कलम नहीं पकड़ी। मैंने तो मनुष्य के अंतर में छिपी मनुष्यता को, उस नारी को जिसे सब नहीं देख पाते, नाना रूपों में अंकित करने का प्रयत्न किया है।' ²¹ शरत् के प्रति विष्णु प्रभाकर के मन में सहानुभूति थी, लेकिन उसी सहानुभूति को पाठकों के मन में उभारने की उन्होंने जानबूझकर कोशिश नहीं की। वे कहते हैं, 'अनजाने ही अपने 'सब्जेक्ट' के प्रति पाठकों की करुणा अथवा सहानुभूति उभारने का काम मैंने किया भले ही हो, लेकिन ऐसा चाहा कभी नहीं। वह मेरी असमर्थता हो सकती है, उद्देश्य नहीं।' ²² विष्णु प्रभाकर ने शरत् की गैर-जिम्मेदारी, दूसरों के बारे में प्रवाद प्रचलित कर देने की बीरबली प्रवृत्ति, उच्छृंखलता आदि का भी वर्णन किया है। यह इस बात का प्रमाण है कि

²⁰ 'आवारा मसीहा' भूमिका, विष्णु प्रभाकर, पृ. 60

²¹ वही, पृ. 131

²² विष्णु प्रभाकर- 'संपूर्ण साक्षात्कार', डॉ. रणवीर रांग्रा से बातचीत, पृ. 51

विष्णु प्रभाकर पक्षपातहीन थे। वे पूरी रचना में तथ्यात्मकता के साथ चले। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि हरेक मनुष्य के व्यक्तित्व—निर्माण करनेवाले तत्वों की सीमाओं का निर्धारण परिवेश करता है। परन्तु जो इन बाह्य तत्वों के निर्णय से ऊपर उठने की अन्तःशक्ति रखता हो वही महान व्यक्ति माना जा सकता है।

‘आवारा मसीहा’ की और एक विशेषता यह है कि उस युग के बंगाल के दो कीर्तिस्तम्भों के पारस्परिक संबंध, उनके विचार—विनिमय का अंकन इसमें किया गया है। शरत् कविवर रवीन्द्रनाथ को श्रद्धेय तथा गुरु—तुल्य समझते थे। नवयुग के सूत्रधारी कविगुरु शरत् के उपन्यासों की माटी की गंध से प्रभावित थे। विष्णु प्रभाकर ऐसे प्रसंगों का भी उल्लेख इसमें किया है जहाँ रवीन्द्रनाथ शरत् के उपन्यासों की कटु आलोचना करते नज़र आते। ‘साधारणमेये’ कविता के द्वारा कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर शरत्चन्द्र के स्वभाव के बारे में लिखते हैं। साधारण नारी की दृष्टि में शरत्चन्द्र नारी—जाति की मनोवेदना को प्रकट करनेवाले लेखक हैं। वह समझती थी कि यदि शरत्बाबू उसकी कथा लिख देंगे तो उसका उद्धार हो जायेगा। इसीलिए वह ‘साधारण लड़की’ उनसे विनती करती है—

“पायेपड़ि तोमार, एकटा गल्प लेखो तूमि शरत्बाबू नितान्त साधारण।
गुरुदेव शरत् की प्रतिभा से मुग्ध थे।²³ इन बातों के बावजूद शरत्चन्द्र बीच—बीच में गुरुवर को चुनौती देते थे। रवीन्द्र के ‘घरे बाइरे’ को ‘गृहदाह’ द्वारा शरत् ने चुनौती दी। इन सारे प्रसंगों से ऐसा लगता है मानो विष्णु प्रभाकर बार—बार यह कहना चाहते हैं कि इस ‘नितान्त साधारण’ व्यक्ति उनको चौदह वर्ष की श्रम—साधना का प्रेरणा—स्त्रोत रहा हो।

विष्णु प्रभाकर को कतई मनुष्य से बाहर विश्वास नहीं रहा। इसीलिए उन्होंने हमेशा मनुष्य को समझने के लिए उसकी जीवन—परिस्थितियों का सहारा लिया। इसी वजह से उन्होंने दिशाहारा को मसीहाई रूप में देखा। अपनी कालजयी कृति ‘आवारा मसीहा’ के द्वारा पाठकों को यह संदेश देते हैं कि दूसरों

²³ ‘आवारा मसीहा’, विष्णु प्रभाकर, पृ. 313

के चरित्र का विचार—विमर्श आदि कभी करना पड़े तो सहानुभूति, संवेदनशीलता एवं मानवीयता के मानदंड पर करें।

से. रा. यात्री का मन्तव्य है कि संभवतः बंगलाभाषी किसी जीवन लेखक ने भी शरत्बाबू की इतनी प्रामाणिक और साहित्यिक जीवनी, नहीं लिखी होगी।²⁴ उनका यह वक्तव्य स्मरणीय इसलिए है कि 'आवारा मसीहा' का बांग्ला अनुवाद बड़ा लोकप्रिय हुआ। विष्णु प्रभाकर ने शरत्चन्द्र के जीवन के बहुमुखी पहलुओं को पाठक के सम्मुख बड़ी ईमानदारी से प्रस्तुत किया। बंगाल में विष्णु प्रभाकर का इस मुक्तक के लिए सम्मान किया गया। शरत्चन्द्र की तथाकथित कमियों को मानवता की दृष्टि से परखकर उनका मार्मिक चित्रण किया है। यह चित्रण पाठकों को यह सोचने के लिए विवश कर देता है कि आखिर शरत् का दोष इसमें क्या/कहाँ/कितना है? विष्णु प्रभाकर ने इस जीवनी में शरत्चन्द्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को ऐसा पिरोकर दिया है कि दोनों एक दूसरे के परिपूरक प्रतीत होते हैं। 'चरित्रहीन', 'बड़ी दीदी', 'श्रीकान्त', जैसी शरत् की कृतियों के पीछे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में छिपे शरत् के व्यक्तित्व को ढूँढ़ निकालकर उभारने में विष्णु प्रभाकर की सफलता विशेष रूप से सराहनीय है।

पर—निन्दा में रुचि लेनेवाले तथाकथित शिष्ट एवं भद्र समाज पर यह किताब एक जोरदार टिप्पणी है। प्रेमचंद, निराला जैसे साहित्यकारों की जीवनी—लेखन आसान प्रतीत होते क्योंकि उनके सामाजिक जीवन में अधिकांशतः संप्रेषणीयता थी। शरत्चन्द्र जैसे बदनामी, अपवादग्रस्त, लांछित एवं निंदित व्यक्ति की जीवनी लिखना मुश्किल काम है।²⁵ विष्णु प्रभाकर ने इस असाध्य को साध्य बनाया।

इस कृति में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो पाठकों के मन को छूकर आँखों को नम कर देते हैं। उदाहरण के लिए एक प्रसंग कुछ इस प्रकार है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शरत् से अनुरोध किया था—'शरत्, तुम अपनी आत्मकथा लिखो।

²⁴ 'विष्णु प्रभाकर के संपूर्ण साक्षात्कार', से.रा. यात्री से बातचीत, पृ. 152

²⁵ 'विष्णु प्रभाकर', सं. विश्वनाथ मिश्र/डॉ. कृष्णचंद्र गुप्त, पृ. 3

जिसका उन्होंने उत्तर दिया था कि गुरुदेव, यदि मैं जानता कि मैं इतना बड़ा आदमी बनूँगा तो किसी और ही प्रकार का जीवन जीता।²⁶ 'आवारा मसीहा' पढ़ते-पढ़ते पहाड़ एवं जंगलों से होती हुई अनायास बहती नदी के निष्कलंक, प्राकृतिक सौन्दर्य में शरत्चन्द्र की छवि झलकती नजर आती है। नदी का हितकारी गुण शरत् के साहित्य में भी विद्यमान है। उसमें समाज-कल्याण के तत्व निहित हैं। डॉ. रंजन त्रिवेदी ने 'आवारा मसीहा' को संतुलित, प्रामाणिक एवं हिन्दी के मार्ग को प्रशस्त करने वाली रचना माना है।²⁷

विष्णु प्रभाकर ने अपनी कला का पूर्ण प्रयोग इस रचना में किया है। शरत् के मित्रों के साथ बातचीत के प्रसंगों में संस्मरण विद्या उभरती है, वाद-संवादों में नाटकीयता, शरत् एवं शरत् के जीवन से संबंधित व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण में औपन्यासिक तत्व, छोटे-मोटे प्रसंगों के संदर्भ में कहानी के अंश पाये जाते हैं। ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा कि 'आवारा मसीहा' साहित्य की बहु विधात्मक विलक्षण रचना बन गयी है। इसमें जीवन-दर्शन की बातें रचना की गहराई को बढ़ाती हैं और साथ ही जीवन के प्रति नई दिशा संकेत भी करती हैं।

'आवारा मसीहा' की विशिष्टता के बारे में कथाकार, संपादक पंकज बिष्ट का मन्तव्य द्रष्टव्य है। 'आवारा मसीहा' लिखकर विष्णु जी ने हिन्दी साहित्य में नई जमीन तोड़ी है। यह हिन्दी की बहुचर्चित तीन जीवनियों में से है, पर यह कई मायनों में सबसे अलग है।.....यह एकमात्र ऐसी जीवनी है जो किसी भी तरह की क्षेत्रीयता या पारिवारिक संबंधों के दबाव से मुक्त है।²⁸ इस अद्भुत रचना का अनुवाद बांग्ला भाषा में किया गया तो बड़े पैमाने पर स्वीकारा गया। 'आवारा मसीहा' तो समकालीन हिन्दी साहित्य की एकमात्र ऐसी कृति है जिसका अनुवाद बांग्ला भाषा में हुआ है।²⁹ इस पुस्तक में विष्णु प्रभाकर ने अभूतपूर्व लेखकीय ईमानदारी का परिचय दिया है। उनका कथन है—“जीवनी साहित्य के लेखन में

²⁶ 'आवारा मसीहा', विष्णु प्रभाकर, पृ. 81

²⁷ 'विष्णु प्रभाकर', सं. विश्वनाथ मिश्र/डॉ. कृष्णचंद्र गुप्त, पृ. 198

²⁸ 'आजकल', सं. सीमा ओझा, जुलाई 2009, पृ. 9

²⁹ 'पाखी' सितम्बर, सं. अपूर्व जोशी, 2008, पृ. 110

विष्णु जी अपनी ही पीढ़ी के नहीं बल्कि आगे-पीछे की पीढ़ियों के साहित्यकारों से भी कहीं आगे निकल गए हैं।³⁰

2.4 निबन्धकार

अपने निबंधकार होने का श्रेय विष्णुजी 'आकाशवाणी' को ही देते हैं। विष्णु प्रभाकर सन् 1955 से सन् 1957 तक 'आकाशवाणी' में कार्यरत थे। इसी दौरान उन्होंने देशभक्तों एवं देश-संस्कृति से संबंधित बहुत सारे कार्यक्रम तैयार किए जो बाद में 'निबन्ध' के रूप में प्रकाशित हुए। विष्णु प्रभाकर ने विषय परक एवं व्यक्ति परक निबन्ध भी लिखे हैं। उनके विषय-परक निबन्ध, धर्म, समाज, संस्कृति, शिक्षा, प्रेम, आर्य समाज, भाषा, साहित्य आदि को लेकर हैं। व्यक्तिपरक निबन्धों में उन्होंने गाँधीजी, लेनिन, जवाहरलाल नेहरू, टॉल्स्टाय, शरत्चन्द्र के व्यक्तित्व के विविध आयामों को दर्शाया है। 'आकाश वाणी' के लिए जो भी लिखी गयीं उनके मूलस्रोत में देशभक्ति और देश की संस्कृति-सम्पन्नता है।

उनके निबन्धों में सामाजिक परिवर्तन की माँग की गई है। मूल्यों की बात करते हुए वे मानते हैं कि पुराने मूल्य नष्ट हो रहे हैं और नए मूल्यों का निर्माण नहीं हो रहा है। मूल्यहीनता की स्थिति में युवा पीढ़ी पर मानसिक दबाव बढ़ता जा रहा है। यह स्थिति देश के भविष्य के लिए खतरनाक है। इसको सुलझाने के लिए विनोबा भावे के सुझावों को अपनाने की सलाह देते हैं।

विष्णु प्रभाकर इस संदर्भ में ग्राम-शक्ति और आचार्य-शक्ति को पहचानना और जुटाना उचित समझते हैं।³¹ विष्णु प्रभाकर का अटूट विश्वास था कि आचार्यों के मार्गदर्शन के कारण ही यह देश संपन्न रहा है। आचार्य-शक्ति विचार-परिवर्तन, तथा यथास्थिति में बदलाव, हृदय-परिवर्तन ला सकती है।

मनुष्य के अन्दर छिपी अच्छाइयों को बाहर लाने का प्रयास अपनी लेखनी से निरन्तर करते रहना विष्णु प्रभाकर का मकसद रहा है। हिप्पियों द्वारा नशीले

³⁰ 'सब लोग', सं. किशन कालजयी, मई 2009, दिल्ली, पृ. 63

³¹ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबंध, भाग-1, पृ. 18

पदार्थों के सेवन तथा परम्परा के प्रति तीव्र विद्रोह को भी वे इसी दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार संस्कृति की जड़ता को तोड़ने में साहित्य कामयाब होता आया है। संस्कृति भौगोलिक मानचित्र की रेखाओं से भी बड़ी है। देश-विदेशों की संकीर्णता को खत्म करके अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक तथा मानवीय पहचान बनाने में साहित्य का महत्वपूर्ण हाथ होता है। विष्णु प्रभाकर का 'संस्कृति' से संबंधित निबन्ध पढ़कर निःसंदेह ऐसा लगता है कि संस्कृति से मानव-कल्याण और मानव-विकास होता है। उनके अनुसार संस्कृति वह चीज़ है जो अभिन्नता और समन्वयात्मकता लाती है। उनकी यह बात अर्थ रखती है कि संस्कार आभ्यन्तर जगत् की वस्तु है। बाहरी आचरण उसे शक्ति दे सकते हैं, उसका सृजन नहीं कर सकते।³² विष्णु प्रभाकर अपने निबंधों में अपनी मान्यताओं को प्रस्तुत करने के साथ-साथ महान् लोगों के मन्तव्यों का उल्लेख भी करते रहे हैं जिनमें गाँधीजी से लेकर प्रसिद्ध वैज्ञानिक आलबर्ट आइन्स्टाइन तक के कथन स्मरणीय हैं। उदाहरण के लिए महात्मा गाँधी ने कहा था, "गरीब हिन्दुस्तान स्वतंत्र हो सकता है लेकिन चरित्र खोकर धनी बने हुए हिन्दुस्तान का स्वतंत्र होना मुश्किल है। चरित्र, संस्कार, को जीतना यही संस्कृति है।"³³

हालाँकि उनके निबंधों में गाँधीजी के सिद्धान्त विरल हैं किन्तु गाँधीजी के सिद्धान्तों की सर्वव्यापक-शक्ति उनके गद्य साहित्य एवं नाट्य-साहित्य में घुली-मिली है। विष्णु प्रभाकर को गाँधी की अहिंसा और शरत्चन्द्र के प्रेम का सामंजस्य भाता है। वे लिखते हैं कि गाँधीजी ने स्वाधीनता से ज्यादा महत्व सत्य, प्रेम एवं अहिंसा को दिया। गाँधीजी किस हद तक सत्य के पुजारी रहे, इसका विवरण पाठक को जब-तब देते हैं। सत्यात्मकता, तथ्यात्मकता एवं सरलता इनके निबन्धों को रोचक बनाती हैं। आत्मालोचना से बढ़कर अपनों की आलोचना करना मुश्किल काम है। अपने से जूझकर यह काम गाँधीजी ने कह ही दिया। गाँधीजी ने कहा था, "हम अपनी खिड़कियाँ खुली रखें, जिससे बाहरी हवा अन्दर आये,

³² 'विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबंध, पृ. 44

³³ वही, भाग-1, पृ. 29

लेकिन यह भी हमें देखना है कि वह हवा आँधी का रूप न ले ले, जिससे हमारे पैर अपनी ही धरती से न उखड़ जायें।”³⁴ उन्होंने मानव-मूल्यों को जिन महत्वपूर्ण समझा वे मूल्य दुर्भाग्य से आज के भारत में उतना महत्व नहीं रखते। विष्णु प्रभाकर के साहित्य में यह बात स्पष्ट नजर आती है कि आधुनिकता के सहज पक्ष को यथार्थ के दर्जे में उन्होंने रखा है, लेकिन आधुनिकता के नाम पर विदेशी प्रभावों से युक्त असमीचीन विषयों को वे मानते नहीं। ऐसी अस्वाभाविक बातें हमारी संस्कृति और हमारे समाज को क्षति पहुँचा सकती हैं। स्वराज्य, औद्योगीकरण, खदर की महानता, अहिंसा इत्यादि से संबंधित गाँधीजी के विचारों पर प्रकाश डाला गया है। औद्योगीकरण के मानवीय आयाम पर गाँधीजी के मन्तव्य का विश्लेषण करते हुए विष्णु प्रभाकर अपने पाठकों को गाँधी-विचार के औचित्य का एहसास कराते हैं। गाँधीजी के सिद्धान्तों ने विष्णु प्रभाकर पर गहरा असर छोड़ा था। गाँधीजी ने माना था कि मनुष्य अपनी आजीविका की ज़रूरत से ज्यादा अगर एक रूपया भी अर्जित करता है तो वह चोरी है, विष्णुजी ने सादा जीवन को अपनाया था। इसीलिए सन् 1957 के बाद आजीवन मसिजीवी ही बने रहे।

गाँधीवादी विचारों की विवेचना करते हुए महान व्यक्तियों के विचारों का प्रासंगिक उल्लेख करने में विष्णु प्रभाकर कुशल हैं। उन्होंने अहिंसा को ‘सार्वभौम प्रेम’ की नई परिभाषा दी है। इस सन्दर्भ में विष्णु प्रभाकर की तर्क-शक्ति सराहनीय है। अपने निबन्धों में वाद-विवाद को वे इतनी सरलता से प्रस्तुत करते हैं कि पाठक की चिन्तनशक्ति स्वयं जाग्रत हो जाती है। वे सूक्ति की भाँति कहते हैं कि सत्य का संपूर्ण दर्शन अहिंसा के बिना असम्भव है।³⁵ फिर अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं कि सत्य-साधक को अतिशयोक्ति, झूठ इत्यादि संकटों से बचने के लिए अल्पभाषी होना आवश्यक है।³⁶ अहिंसा तो सार्वभौम प्रेम है लेकिन कटु, तीखी भाषा का प्रयोग करने वाला कभी प्रेम नहीं कर सकता। यद्यपि विष्णु

³⁴ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबंध, भाग-3, पृ. 12

³⁵ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध भाग-3, पृ. 35

³⁶ वही, पृ. 39

प्रभाकर गाँधीवादी नहीं थे तथापि उन्होंने गाँधी में महानता देखी और उन्हें 'सच्चे वैष्णव जन' की संज्ञा दी। महात्मा की महत्ता को उभारते हुए कहते हैं कि अहंभावहीन एवं परोपकार के अभिमान से मुक्त रहना सबसे बड़ी साधना है, जो सिर्फ गाँधीजी जैसे वैष्णव जन से साध्य है।³⁷ उन्होंने गाँधी-विचार के जिन पक्षों का समर्थन किया उनको जिया भी। गाँधीजी ने कहा था, "यदि गाँधीवाद है, तो उसका एकमात्र अनुयायी मैं हूँ। मेरे बाद मेरा वादा नहीं रहता। रहता हूँ तो मैं रहता हूँ और मेरी पूजा है मेरी आधारभूत मानवीयता को जीना।"³⁸ इस मायने में विष्णु प्रभाकर ने गाँधी की 'पूजा' की।

जैसे वे कथा-साहित्य में मानवतावाद की वकालत करते आए हैं वैसे ही अपने निबंधों में भी मानवतावाद के मूल्य की स्थापना करते हैं। ज्ञातव्य है कि मानवतावाद काल-देश, रंग-रूप, जाति-धर्म, लिंग-भेद के बन्धनों से सर्वोपरि है। वह सभी मनुष्यों को अपने सार्वभौम प्रेम की छत्रच्छाया में आश्रय देता है। अतएव, वह हर युग में अद्वितीय रहेगा।

उन्होंने गाँधी विचारों के व्यावहारिक और सैद्धान्तिक पक्षों का निष्पक्ष एवं वस्तुपरक प्रस्तुतीकरण किया है। 15 जनवरी 1934 को बिहार में आये भयंकर भूचाल के बारे में गाँधीजी ने कहा कि वह लोगों के पापों का दण्ड है। मुख्यतया अस्पृश्यता का दण्ड।³⁹ इसकी प्रतिक्रिया में रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे लोगों ने इस कथन पर आपत्ति उठायी। इस प्रसंग का उल्लेख विष्णु प्रभाकर ने 'गाँधीजी की ऐतिहासिक हरिजन यात्रा' शीर्षक के अंदर किया है। यह इस बात का प्रमाण है कि विष्णु प्रभाकर गाँधीजी के सभी सिद्धान्तों का अन्धानुकरण नहीं करते हैं।

विष्णु प्रभाकर ने गाँधीजी को 'वैष्णव जन' के रूप में, 'परदुःख कातर' के रूप में, 'युगपुरुष' के रूप में देखा है। उन पर 'सत्य का मार्ग', 'अन्तर की आवाज', 'गुरुदेव और बापू', 'गाँधीजी की ऐतिहासिक हरिजन यात्रा', 'गाँधीजी साहित्यकार के रूप में' आदि शीर्षकों पर निबन्ध लिखे।

³⁷ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध भाग-3, पृ. 48

³⁸ वही, पृ. 68

³⁹ वही, भाग-3, पृ. 12

विष्णु प्रभाकर ने लेनिन की मानवीय संवेदना से भी बहुत प्रभावित होकर निबंध लिखा 'मैं लेनिन को क्यों प्यार करता हूँ' सोवियत संघ के इस अद्भुत नेता लेनिन के बारे में विष्णु प्रभाकर लिखते हैं, 'लेनिन तानाशाही न थे। वे मानवीय संवेदनाओं से भरपूर थे और सर्वहारा तथा दलित वर्ग के लिए उन्होंने जो कुछ किया वह अनुपमेय ही है। पूँजीवाद और नौकरशाही के विरुद्ध उन्होंने संघर्ष किया।⁴⁰ समाजवाद की स्थापना के लिए लेनिन द्वारा अपनाया गया हिंसक साधन विष्णुजी को भले ही पसन्द न आया हो फिर भी लक्ष्य की उदात्तता को वे महसूस करते थे। विष्णु प्रभाकर ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गाँधीजी, लेनिन और गाँधीजी, जवाहरलाल नेहरू और गाँधीजी के व्यक्तित्वों और विचारों को तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। ध्यान योग्य बात है कि इन सभी चर्चाओं में गाँधीजी ही उनके केन्द्र बिन्दु रहे हैं। इन्होंने गाँधीजी और लेनिन की तुलना करते हुए विन्स्टन चर्चिल की भतीजी क्लेयर शेरीडेन के शब्दों को उद्धृत किया है। क्लेयर लिखती हैं, "दोनों ने संसार को कभी न नष्ट होनेवाला सन्देश दिया। यह ऐसा संदेश है जो तिरस्कृतों और पददलितों को साहस प्रदान करता है। यह वह सन्देश है जिसने झुके हुएों को सिर ऊँचा करने का सामर्थ्य दिया और इस दुनिया में अपने स्थान का परिचय दिया।"⁴¹

लेनिन के प्रति विष्णु प्रभाकर के मन में अपार श्रद्धा थी। शायद वह इसलिए कि सत्य का सामना करने की क्षमता लेनिन में थी और विष्णु प्रभाकर भी सत्यान्वेषी थे।

विष्णु प्रभाकर के व्यक्तिपरक निबन्धों की श्रृंखला में प्रेमचन्द पर लिखा गया निबन्ध भी उल्लेखनीय है। साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द को विष्णु प्रभाकर गुरुतुल्य मानते थे, लेकिन उनके साहित्य की विवेचना भी वे निष्पक्ष होकर करते हैं। प्रेमचन्द के गाँव-संबंधी परिवेश और उसकी समझ की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, लेकिन साथ ही यह कहना न भूलते कि प्रेमचन्द की अपनी सीमाएँ थीं और

⁴⁰ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध भाग-3, पृ. 132-133

⁴¹ वही, पृ. 133

प्रेमचन्द के साहित्य का मूल्यांकन उनकी सीमाओं को स्वीकार करके ही किया जा सकता है।⁴² प्रेमचन्द समष्टि की जीवन-गाथा के स्रष्टा हैं। महात्मा गाँधी ने कहा कि भारत की आत्मा गाँवों में बसी है। उस आत्मा की खोज में प्रेमचन्द्र ने यथार्थपरक ग्रामीण परिवेश वाले कथा-साहित्य की रचना की। विष्णु प्रभाकर प्रेमचन्द को पुनर्जागरण-युग का सर्वश्रेष्ठ कथाकार मानते हैं। उनका निबन्ध तब और भी निखरता है जब वे प्रेमचन्द के साहित्य की कुछ दुर्बलताओं की ओर पाठक का ध्यान खींचते हुए कहते हैं, प्रेमचन्द का बचाव करने की हमारी तनिक भी इच्छा नहीं। उनकी दुर्बलताएँ स्पष्ट हैं। नैतिकता के प्रति प्रचारक का सा मोह, नगरों के प्रति उपेक्षा, मध्य वर्ग के प्रति सहानुभूति का अभाव, मानव के अन्तर्तम में पैठकर उसकी बाह्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण न कर पाना आदि-आदि।⁴³ अपने इस निबन्ध में विष्णु प्रभाकर कहीं प्रेमचन्द की प्रशंसा करते हुए दिखाई देते हैं तो कहीं उनकी कमियों की ओर संकेत करते हैं। उनकी आलोचना-दृष्टि की जिस द्वन्द्वात्मकता का आभास मिलता है यह विष्णु प्रभाकर के सत्यान्वेषण का ही एक सोपान है।

प्रेमचन्द पर निबन्ध उनके लिए स्वाभाविक ही था। प्रेमचन्द श्रेष्ठ कथाकार थे। विष्णु प्रभाकर और प्रेमचन्द की मनोवृत्ति में भी कहीं-कहीं समानता थी। इसलिए प्रेमचन्द पर लिखने में वे सत्य से दूर नहीं होते। विष्णु प्रभाकर की मनोवृत्ति 'आहुति' कहानी की पात्रा की जैसी है। उनका तर्क था कि कोई चीज़ स्वदेशी है सिर्फ़ इसीलिए किसी भी तरह की बुराई को स्वीकार करना ठीक नहीं है। व्यक्तिपरक निबंधों में भी विष्णु प्रभाकर की वस्तुपरक लेखनी ने व्यक्ति विशेष के बल और दुर्बलताओं को स्पष्ट रूपाकार दे दिया है। अपने 'काछेर मानुष' (आत्मीय) शरत्चन्द्र की दुर्बलताओं का उल्लेख करना भी वे नहीं भूलते, लेकिन उन तथाकथित दुर्बलताओं के दूसरे आयामों को मद्देनजर रखते हुए उन्होंने शरत्चन्द्र को 'आवारा मसीहा' माना। शरत्चन्द्र पर लिखा गया उनका एक

⁴² विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध, भाग-3, पृ. 248

⁴³ वही, पृ. 255

निबन्ध है। 'शरत्चन्द्र और उनका सुधारवाद'। इस निबन्ध को पढ़ने के बाद संशय होता है कि स्वयं विष्णु प्रभाकर ने शरत्चन्द्र के साहित्य और सिद्धान्त से प्रेरित होकर ही जैसे नारी संबंधी रचनाएँ की हों। अपने प्रिय लेखक की शैली में विष्णु प्रभाकर ने अधिकांश रचनाओं में स्त्री-समस्याओं और स्त्री-विमर्श का मुद्दा उठाया, लेकिन कलात्मकता के लिहाज से उनका उचित निदान नहीं बतलाया। कथाशिल्पी शरत्चन्द्र की साहित्य-कुशलता की पहचान करने के लिए उन्होंने श्री अरविन्द महर्षि के उस कथन को अपने निबंध में जोड़ दिया, जिसमें उनका कुछ इस प्रकार से कहना था कि शरत् अद्भुत शैली और गहरी भावात्मक शक्ति से युक्त महान और Perfect (संपूर्ण) सृजनात्मक कलाकार थे।⁴⁴

स्मरणीय बात यह भी है कि शरत् और विष्णु प्रभाकर दोनों के विवाह-संबंधी विचार मिलते-जुलते हैं। शरत् मानते थे कि नारी-जीवन में विवाह एक घटनामात्र बनकर रह गया है जबकि विष्णु प्रभाकर कहते हैं कि पुरुष के आधिपत्य आकर्षण से मुक्ति ही नारी-मुक्ति का पहला सोपान है। विष्णु प्रभाकर का अभिप्राय माँ की वाणी का अनुगुंजन जैसा है।

'श्रीकान्त' की अभया के चरित्र का विश्लेषण करते हुए विष्णु प्रभाकर उसमें आत्मा की स्वाधीनता और सहजता के पारस्परिक संबंध की लीक पकड़ते हैं। यह आत्मा की स्वाधीनता एवं सहजता का मिश्रण विष्णु प्रभाकर के पात्रों-खासकर स्त्री-पात्रों में खूब पाया जाता है। विष्णु प्रभाकर का संपूर्ण साक्षात्कार तो उनके द्वारा रचित साहित्य के साथ-साथ उनके सीधे-सादे जीवन और व्यक्तित्व से ही किया जा सकता है।

विष्णु प्रभाकर का निबन्ध साहित्य इस बात का प्रमाण है कि वे बहुश्रुत ही नहीं, बहुपठित विद्वान् चिन्तक भी थे।

संस्कृति से संबंधित निबन्धों में विष्णु प्रभाकर ने जिस प्रकार अपनी विवेचन-विश्लेषण की शक्ति का परिचय दिया है। वैसे ही समाज-व्यवस्था और

⁴⁴ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध (भाग 3), पृ. 275

"Wonderful style and a great and perfect creation Artist with profound emotional power." -Maharshi. Arvind

राजनीति से संबंधित निबन्ध-लेखन में भी उनकी धारदार कलम बड़ी पैनी नज़र आती है। उनका मन्तव्य था कि 'हिन्दू धर्म में कोई धर्म नहीं है, बल्कि एक सामाजिक व्यवस्था है।' ⁴⁵ वे मानते थे कि धर्म मूलतः व्यक्तिगत चीज़ है जबकि संस्कृति अपने स्वरूप में सामाजिक होती है। वे आगे कहते हैं कि हिन्दू धर्म में नयी बातों को स्वागत करने की हिम्मत है लेकिन पुरानी बातों को बदलने देने की सहिष्णुता नहीं है। धर्म के नाम पर पाखंडपूर्ण आचरणों से लोगों को ठगनेवालों के प्रति विष्णु प्रभाकर बहुत सतर्क रहे। भक्त रामशरणदास जी का 'स्वयंभू कलियुगी अवतारों से सावधान' शीर्षक लेख पढ़कर विष्णु प्रभाकर ने श्री विश्वंभर सहाय प्रेमी से कहा था, "इस लेख से धर्म के नाम पर पाखंड फैलानेवाले स्वयंभू अवतारों का भंडाफोड़ होता है। आर्य समाज की पत्र-पत्रिकाओं में भी इस लेख को प्रकाशित किया जाना चाहिए।" ⁴⁶ देश की मानसिक, समाजार्थिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता के लिए जनता को और एक नये संग्राम की आवश्यकता है। पहले महात्मा बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, रामानंद, कबीर, नानक जैसे महान लोगों ने 'धर्म' में सुधार लाने की कोशिश की। समाज ने या तो सुधारवादियों की खिल्ली उड़ायी या जब तक ये महानलोग जीवित रहे तब तक उनकी बातें मानता आया मगर उनकी महासमाधि के बाद उनके सिद्धान्तों को भुला बैठा। धार्मिक सुधार लाने में आर्य समाज, ब्रह्म समाज इत्यादि का भी कम महत्व नहीं रहा। ब्रिटिश राज को भी 'शारदा एक्ट' जैसे कानूनी तरीके से समस्या का निदान करने की कोशिश करनी पड़ी थी। इन सारी बातों को समेटते हुए विष्णु प्रभाकर कहते हैं कि परिवर्तन बाहर से ज्यादा अन्दर का महत्वपूर्ण होता है। वे मानसिक परिवर्तन (जिसे अंग्रेजी में 'Attitudinal Change' कहते हैं) पर जोर देते हैं। इस मूल्य-बोध का कथा में अंकन उनके रचनाकर्म की नींव माना जा सकता है। उनका एक और निबंध 'आत्म सम्मान' पर लिखा

⁴⁵ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध, भाग-12, पृ. 55

⁴⁶ 'साहित्य अमृत', सं. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, अंक 11, जून 2009, पृ. 86

गया है जिसके मानवीय मूल्य का सारांश तुलसी के इस दोहे के ज़रिए बताया जा सकता है—

‘तुलसी इस संसार में, सबसे मिलिये धाय ।

ना जाने किस वेष में, नारायण मिल जाय ।।’

विष्णु प्रभाकर अपने निबन्धों में शब्दों के अर्थ नहीं तलाशते अपितु वे सही अर्थ के लिए समुचित शब्द ढूँढते हैं। उनके जीवनानुभव में जितनी व्यापकता है उतनी ही विविधता भी। उनका मन्तव्य है कि कुछ अनुभव ऐसे होते हैं जो शब्दबद्ध ही नहीं किए जा सकते।

विष्णु प्रभाकर ‘आधुनिकता’ के बारे में क्या सोचते हैं? ‘आधुनिकता’ की उनकी अवधारणा के अनुसार, ‘निरन्तर नये के प्रति सजग होना ही किसी को आधुनिक बनाता है, किसी पूर्वी या पश्चिमी सभ्यता से, किसी सिद्धान्त-विशेष से जुड़ना नहीं।’¹

वे मानते हैं कि ‘सभी प्रकार की अतियों से बचते हुए जिज्ञासा को जीवित रखना ही आधुनिकता को पहचानने का मार्ग है।’²

विष्णु प्रभाकर घुमक्कड़ प्रवृत्ति के थे। उन्होंने दूर-दूर के प्रदेशों और देशों का भ्रमण किया। उन्होंने श्रीलंका, थाईलैंड, बर्मा, सोवियत रशिया इत्यादि देशों का भ्रमण किया है। उन देशों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को खूब आँका है। अपने उन यात्रा अनुभवों का सजीव वर्णन अपने निबन्धों में किया है। उदाहरणार्थ ‘दक्षिण-पूर्व में नारी’। इस निबन्ध में विष्णु प्रभाकर ने वर्मा, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, वियतनाम, मलाया, इण्डोशिया, सिंगापुर और चीन देश की नारियों की चर्चा उनके शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर की है। वे मानते हैं कि उन देशों में प्रचलित अधिकार और कर्तव्य का अद्भुत सन्तुलन एवं समन्वयात्मकता अनुकरणीय है।³ इन देशों के लोगों की वेशभूषा का खास वर्णन मिलता है। बर्मा के मातृमूलक

¹ ‘विष्णु प्रभाकर’, सं. विश्वनाथ मिश्र/डॉ. कृष्णचंद्र गुप्त, पृ. 353

² विष्णु प्रभाकर : ‘क्या खोया क्या पाया’, विष्णु प्रभाकर, पृ. 83

³ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध, भाग-2, पृ. 77

समाज की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि वहाँ की नारी हर क्षेत्र, हर विषय में आगे रहती है, फिर भी वह पुरुष का आदर करती है। विष्णु प्रभाकर के अनुमान में इसके तीन कारण हो सकते हैं।

एक, पुरुष घर का बड़ा होता है। दो, नारी का अधिकार सुरक्षित है। तीन, बर्मी समाज पर बौद्ध धर्म का प्रभाव। बौद्ध धर्म में यह माना जाता है कि नया बुद्ध पुरुष है।¹ लेखक का यह कथन पाठकों में प्रश्नाकुलता पैदा कर देता है। सवाल कुछ ऐसा है कि बर्मी समाज में संपूर्ण स्वतंत्रता पाकर भी नारी क्या स्वेच्छा से पुरुष का आदर करती है? क्या वहाँ भी धर्म की आड़ में स्त्री-जाति पर दबाव पड़ता है?

माँ जिस बच्चे को प्यार करती है उसमें वह स्वयं रहती है। उसी प्रकार विष्णु प्रभाकर की रचनाओं में हम उनको पा सकते हैं। उन्होंने राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लिया, लेकिन राजनीतिक गतिविधियों से बखूबी वाकिफ़ थे। उनके राजनीति संबंधी चिन्तन ध्यान देने योग्य हैं। मनुष्य अपने बड़े स्वार्थ के लिए छोटे स्वार्थों से समझौता करता है। इस बड़े स्वार्थ की तुष्टि के लिए उसने समाज का निर्माण किया। लेकिन मनुष्योचित सत्व, रज और तम गुणों की असमानता के कारण समाज में असन्तुलन पैदा हुआ। समाज व्यवस्था के सन्तुलन को बनाए रखने के लिए पहले तो धर्म के नाम पर फिर बाद में सत्ता के नाम से जनता में डर पैदा किया गया। सत्ता कानून, नियम, न्यायालय, दण्ड इत्यादि अनेकों बाह्य साधनों से समाज में एकता और शांति बनाए रखने का बहुतेरा प्रयास करती है। परन्तु आज तक समाज का, समरसता स्थापन का, मूलभूत उद्देश्य अपूर्ण ही रह गया। विष्णु प्रभाकर के अनुसार समाज-नीति आत्मा है और राजनीति उसका शरीर ये दोनों सह-अस्तित्व के अभाव में क्षीण हो जाते हैं।² ये दोनों एक-दूसरे के परिपूरक हैं। इस बात को प्रामाणिक रूप से स्थापित करने के लिए उन्होंने विश्व-इतिहास से उदाहरण लिये हैं। समाज की आत्मा को

¹ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध, भाग-2, पृ. 74

² विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध, भाग-2, पृ. 62

जगाकर समाज-शक्ति का संचयन करके विश्व में अनेकानेक देशों ने स्वतंत्रता प्राप्ति की और भौतिक, आत्मिक प्रगति के लिए विशेष कार्य किए।

राजनीति के खिलाड़ी अर्थात् राजनीति में दूरदर्शिता की कमी बड़ी हानिकारक हो सकती है। कांग्रेस नेता मि. डब्ल्यू०सी० बनर्जी ने नारी-स्वतंत्रता के संदर्भ में नैतिकता एवं अनैतिकता पर मनमाने और काल्पनिक ढंग से निराधार शंकाएँ प्रकट की थीं। इस बात को निषेध्य कहकर विष्णु प्रभाकर ने उसका तीव्र विरोध किया।

उनके अनुसार सच्चा राजनीतिज्ञ स्वार्थ की सीमा तोड़कर मानव-कल्याण की भावना रखता है। मानव-प्रेम से प्रेरित समाज-सुधार कुंजी है जो रामराज्य में प्रवेश पाने के लिए आवश्यक है। 'रामराज्य' से विष्णु जी का मतलब निःस्वार्थ प्रेम के आधार पर लोक कल्याण के लिए चलनेवाला राज्य। उन्होंने व्यक्ति स्वातंत्र्य को राजनीतिक स्वतंत्रता से बड़ा मूल्य माना है।¹ उनका अभिप्राय था कि राजनीति संस्कृति के विविध रूपों को अपने अधिकार के दायरे में रखती है अर्थात् राजनीतिज्ञ संस्कृति को अपने निहित स्वार्थ के लिए संरक्षण देने का नाटक करता है, परन्तु स्वयं सांस्कृतिक मूल्यों से कुछ सीखता नहीं।

विष्णु जी हिन्दी भाषा की विशेषता पर भी प्रकाश डालते हैं। उनके अनुसार इस देश में हिन्दी ऐसी भाषा है जो राष्ट्रीय एकता लाने का सामर्थ्य रखती है। सामान्यतः दक्षिण के लोग हिन्दी-विरोधी मान लिये जाते हैं, लेकिन विष्णु प्रभाकर की दृष्टि में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में बंगाल, मलमाली, तमिल, तेलुगु एवं कन्नड़ लोगों का योगदान महत्वपूर्ण है।

विष्णु प्रभाकर के निबंधों में एक का दूसरे विषय से और दूसरे का तीसरे से तीसरे का चौथे से अंतःसंबंध होने के कारण उनमें व्यापकता, समग्रता एवं गहनता मिलती है। उनकी भाषा एवं शैली उनके अभिव्यक्ति-कौशल को प्रामाणिक बनाती है। उनके निबन्ध पाठक को व्यापक अन्तर्दृष्टि देते हैं।

¹ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण साक्षात्कार, पृ. 66

भाषा व्यक्ति के चरित्र को बताती है।¹ विष्णु प्रभाकर की भाषा उनकी मानवीयता, करुणा, विनोदप्रियता एवं गंभीरता का पुख्ता सबूत है। उनकी भाषा में कठिन शब्दों का प्रयोग बहुत कम हुआ है, अतः उसमें प्रवाह और जीवन है। भाषा विषयानुकूल और उचित रूप में प्रयुक्त हुई है। उनकी भाषा थोपी-हुई नहीं अपितु अंतर्मन के चिंतन-मनन का शब्द-रूप है। वह सरल और सहज है। सहज इसलिए है कि उन्होंने किसी नैतिकता का मुखौटा पहनकर नहीं लिखा। 'यथासत्य, यथातथ्य साक्षात्करणीयम्' तत्व का मूर्तवत रूप है। उनकी भाषा में पंजाबी, उर्दू, अंग्रेजी, फारसी एवं तेलुगु के शब्दों का प्रयोग भी यथोचित रूप से हुआ है।

विष्णु प्रभाकर की शैली नितांत सरल और सीधी-सादी तथा पारदर्शी है। उनके निबन्धों में विभिन्न शैलियों-गवेषणात्मक, विवेचना-प्रधान, भावनात्मक, विवरणात्मक, चित्रात्मक, हास्य-व्यंग्य-प्रधान का निदर्शन हुआ है।² हालाँकि प्रायः आलोचकों या विवेचकों ने विष्णु प्रभाकर की हास्य-व्यंग्य-प्रियता पर समुचित ध्यान नहीं दिया है। उनकी हास्य-व्यंग्य परक भावनाओं की अभिव्यक्ति में एक प्रकार का औदात्य रहता है। विष्णु प्रभाकर की शैली एक ऐसे लेखक की है जो विनोदपूर्ण किस्सा बिना हँसे, गंभीर मुख-मुद्रा के साथ सुनाता है तो और श्रोता या पाठक के होठों पर हँसी खेलती रहती है। अन्ततः पाठक को शिष्टता की मर्यादा में रहकर अपनी हँसी दबाना असंभव हो जाता है और वह लोटपोट हो जाता। थाईलैण्ड के पुलिसकर्मियों से संबंधित किस्सा उदाहरण के लिए लिया जा सकता है। थाईलैण्ड के दौरे में विष्णु प्रभाकर को यह पता चला कि वहाँ के पुलिसकर्मी 'शांतिपाल' के नाम से जाने जाते हैं यानि 'शांति के पालक'। तुरन्त उनकी तुलना भारत की पुलिस से करते हुए कहते हैं कि थाईलैण्ड की पुलिस तो 'शांतिपाल' हैं और उनको देखने से सामान्य नागरिक का हौसला बढ़ता है।

¹ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध, भाग-2, पृ. 27

² 'विष्णु प्रभाकर', सं. विश्वनाथ मिश्र/डॉ. कृष्णचंद्र गुप्त, पृ. 355

जबकि भारत की पुलिस 'शांतिपाल' क्या 'अशांतिपाल' है, उसको देखने मात्र से आदमी के होशो-हवास उड़ जाते हैं।¹

2.5 एकांकीकार

'मुझे कहानी लिखना आसान लगता है, नाटक कठिन विधा है। उसमें मंच, संगीत, अभिनय आदि के अपने-अपने तकाजे होते हैं।' इस वक्तव्य के लेखक विष्णु प्रभाकर ने रंगमंच और रेडियों के लिए श्रेष्ठ नाट्य-लेखन खूब किया है। हाँ, यह अवश्य है कि पूर्ण-नाटकों की अपेक्षा उन्होंने एकांकी नाटक अधिक लिखे हैं।²

समयानुकूल अपनी रचनाधर्मिता को मोड़ देना विष्णु प्रभाकर की स्वाभाविक शैली है। उन्होंने बहुत सारे एकांकी लिखे जिनका विषय/कथ्य की दृष्टि से सामान्य वर्गीकरण डॉ० मो०के० गाडगील ने इस प्रकार किया है।

1. सामाजिक-समस्या मूलक एकांकी
2. राजनैतिक एकांकी
3. मनोवैज्ञानिक
4. प्रहसन
5. ऐतिहासिक-पौराणिक
6. प्रचारात्मक रेडियो एकांकी
7. बाल एकांकी

मोटे तौर पर इनके विषय अस्पृश्योद्धार, साम्प्रदायिक संघर्ष, वेश्या-व्यवसाय, विवाह-तलाक, परिवार-नियोजन आदि हैं। अपने सामाजिक एकांकियों में वे यथार्थ के धरातल पर खड़े रहकर आदर्श की ओर संकेत करते हैं। ऐसे एकांकियों में वे शुद्ध मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाते दिखाई देते हैं।

¹ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण निबन्ध भाग-2 पृ.

² 'शब्दयोग', सं. सुभाष पंत, अंक 8, वर्ष-2, दिसम्बर 2007, पृ. 15

‘बन्धन—मुक्त’, ‘पिकनिक’, ‘नया समाज’, ‘साँप और सीढ़ी’ तथा ‘नये—पुराने’ उत्कृष्ट हैं।¹

उनके राजनीतिक एकांकियों पर गाँधीवाद की अमिट छाप है। जिनमें ‘रक्त—चन्दन’, ‘वीर—पूजा’, ‘बाज और कबूतर’ आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। मनोवैज्ञानिक कहानी हो या एकांकी वे उनकी रुचिकर और प्रिय विधाएँ हैं। मानव—मन की अनचीन्हीं परतों को भेदकर उसमें अंतर्निहित असलियत को बाहर लाना अपने—आप में एक बड़ी कला है। विष्णु जी इस कला के कुशल चितरे हैं। ‘ममता का विष’, ‘संस्कार और भावना’, ‘क्या वह दोषी था?’ आदि उनकी कुशलता के नमूने हैं।

त्याग और आत्म—समर्पण की भावनाएँ इनके ऐतिहासिक एवं देशभक्ति—प्रधान एकांकियों में प्रमुख हैं। ‘झाँसी की रानी’, ‘अतीला का अंत’, ‘अशोक’, ‘पूर्णाहुति’, ‘कलंकमुक्ति’, ‘देवताओं का प्यारा’, ‘राखी और कंगन’ आदि ऐसे ही विषयों पर केन्द्रित हैं। उन्होंने आर्थिक पक्ष पर ‘पैसा’, धर्मिक—सांस्कृतिक पक्षों पर ‘पिकनिक’, ‘पहेली’, ‘शुआन चुआड़’, ‘सब समान हैं’ जैसे एकांकी लिखे।

सामाजिक और पारिवारिक पक्षों को लेकर उन्होंने बहुत सारे एकांकी लिखे हैं जिनमें ‘दो राहा’, ‘दूर और पास’, ‘उसकी याद’, ‘दस बजे रात’, ‘ममता का विष’, ‘माँ’, ‘सबेरा’, ‘नये—पुराने’, और ‘वह न जा सकी’, ‘रसोई घर में प्रजातंत्र’, ‘उपचेतना का छल’, ‘संस्कार और भावना’ विशेष महत्व रखते हैं।

बच्चों के लिए एकांकी—लेखन में उन्हें मानो अतिरिक्त आनन्द मिलता था। उन्होंने इस देश की आगामी पीढ़ी को लगभग 12 एकांकी—संग्रह, 4 पूर्ण नाटक, 3 जीवनी—साहित्य और 14 कहानी—संग्रह दिये। अकसर विष्णु प्रभाकर के साहित्यकार रूप के विभिन्न पक्षों के विवेचन—विश्लेषण के क्रम में उनके बाल—साहित्य की चर्चा बहुत कम होती है। बाल—साहित्य के क्षेत्र में इनकी प्रबुद्धता की पुष्टिकरण करते हुए डॉ० हरिकृष्ण देवसरे कहते हैं, “विष्णु जी ‘नव

¹ ‘हिंदी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति’, डॉ. म. के. गाडगील, पृ. 19

बाल-साहित्य के दिशा-दर्शक' हैं तथा इस विधा को 'आधुनिक जीवन-मूल्यों और परिवेश' के संबद्ध करने वाले अकेले वरिष्ठ हिन्दी लेखक हैं।¹

गाँधीवादी विचारों, खासकर अहिंसा और मानवतावाद की अहमियत की ओर इशारा करता है 'अशोक'। कलिंगयुद्ध के कारण अस्तव्यस्त सामाजिक जीवन का चित्रण है। अशोक की नीति की भर्त्सना करते हुए एक पात्र कहता है, "खोपड़ियाँ टुकराने के लिए तो गीदड़ भी शमशान में घूमा करते हैं, लेकिन वह मनुष्यों का मार्ग नहीं है।"² एकांकी की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक होने पर भी उसमें निहित मानवतावादी पक्ष की ओर आज के पाठकों का ध्यान खींचा गया है। युद्ध के संबंध में बौद्ध भिक्षु उपगुप्त अशोक को समझाते हुए कहते हैं, "किसी को पराजित करने की भावना ही मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है।"³ इस एकांकी में समकालीनता की मात्रा बहुत अधिक है। आज भी प्रजातंत्री भारत में राजनीतिज्ञ पद और पैसे के लिए गुण्डागीरी करते-कराते तथा सामान्य जनता के प्राणों के साथ खिलवाड़ करते हैं, निहित स्वार्थ की पूर्ति के लिए देशभक्तों के नाम पर अपनी तिजोरी भर लेते हैं। सम्राट अशोक की प्रशंसा करते हुए महामात्य कहता है, "सम्राट! दिग्विजय में शरीर दास बनता है पर मन शत्रु हो जाता है। धर्म-विजय में शरीर स्वतंत्र रहता है पर मन मित्र बन जाता है। विजित प्रदेश आपके अधीन होते, पर आपसे प्रेम न करते।"⁴

इस एकांकी द्वारा विष्णु प्रभाकर ने साम्राज्यवादियों की कूटनीति को हेय ठहराकर अहिंसा एवं प्यार के मार्ग को श्रेयस्कर बताया है। गाँधी-नीति जहाँ एक तरफ़ स्वाधीनता का प्रमुख कारण बनी, वहीं दूसरी तरफ़ स्वतंत्र भारत में उसको व्यावहारिक असफलता का मुँह देखना पड़ा, जिस पर प्रकाश डालता है। 'बाज और कबूतर' साम्प्रदायिक सद्भावना से परिपूर्ण विष्णु प्रभाकर के रचनाकर्म का और एक प्रिय पहलू है। 'रक्त-चन्दन' एकांकी का पात्र गुल कहता है कि आदमी

¹ 'विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य', सं. महीप सिंह, पृ.

² 'अशोक तथा अन्य एकांकी संग्रह', विष्णु प्रभाकर, पृ. 12

³ वही, पृ. 24

⁴ 'मेरे प्रिय एकांकी संग्रह', विष्णु प्रभाकर, पृ. 44

हैवान से डरता नहीं, परन्तु जब इन्सान हैवान बन जाता है तो उससे डर ही जाता है।¹ उन्होंने अपने एकांकियों में धार्मिक एवं साम्प्रदायिक कट्टरता का तीव्र विरोध किया है।

विभाजन के समय हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष में जो अनगिनत, अमानवीय घटनाएँ घटीं उनका चित्रण विष्णु प्रभाकर ने 'वीर पूजा' में किया। उस भीषण संघर्ष में अनेक प्राणों की बलि चढ़ायी गई, नारियों की अस्मत् लूटी गई, बार-बार उनके साथ बलात्कार किये गये। इतिहास अपने-आप को दोहराता है। आदिकाल से ही शत्रुता निपटाने के लिए नारी को शिकार बनाना रणनीति रही है। वही आज के तथाकथित 'सभ्य समाज' की भी नीति है। 'वीरपूजा' में बलात्कार की शिकार हुई नारियों की करुणामय स्थिति का वर्णन मर्मभेदी है। विवाहिताएँ घर से बाहर कर दी गई, कन्याएँ कलंक का बोझ ढोकर जीवन के हर कदम में प्रश्नचिन्हों का सामना करती हुई नज़र आतीं। कुछ नारियाँ बलात्कार के परिणाम-स्वरूप अनचाहे माँ बनने का अभिशाप भुगतती हैं।

इन्हीं परिस्थितियों से मिल-जुल कर बनी कहानी है 'एक और कुंती' जहाँ साम्प्रदायिक कट्टरता और उसके अवांछनीय परिणामों का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। विभाजन एवं स्वाधीनता के संक्रमण काल में इस देश में और एक झुंड अपने भविष्य को लेकर अनेक प्रश्नचिन्हों के साथ खड़ा हुआ। वह था बलात्कार से पैदा हुई नाजायज़ संतानों का झुंड। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिवर्तन देश के लगभग सभी निवासियों पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालता रहता है। पूरी व्यवस्था में उथल-पुथल से सामाजिक जीवन में विश्रृंखलता आ जाती है। धार्मिक और साम्प्रदायिक दंगे मुख्यतः स्त्रियों और बच्चों के लिए विनाशकारी बनते हैं। इन समस्याओं का गहनतम चित्रण करके विष्णु प्रभाकर ने अपनी रचना-धर्मिता का निर्वाह किया है। इन एकांकियों में विष्णु प्रभाकर ने अपनी मुख्य कार्यसूची (एजेन्डा) में साम्प्रदायिक सद्भावना के साथ नारी संबंधित समस्याओं को शामिल कर उन पर गहन संवेदनशीलता से एवं सहानुभूतिपूर्वक

¹ 'बारह एकांकी संग्रह', विष्णु प्रभाकर, पृ. 42

विचार किया है। इस संदर्भ में उनकी मान्यता कुछ इस प्रकार थी—“मेरे साहित्य का मूल स्वर नारी की मुक्ति तथा धार्मिक शोषण का विरोध है। मैं सामाजिक और आर्थिक समानता का पक्षधर हूँ।¹ यद्यपि सामान्यता उनके एकांकी देश के विभाजन एवं स्वाधीनता—प्राप्ति के पश्चात् हुए भीषण नरमेध और स्वयं कांग्रेसी नेताओं के बीच गाँधीवाद की असहायता के चित्रण के लिए उल्लेखनीय हैं तथापि नारी—जीवन का सामाजिक—मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थवादी चित्रण अनायास ही पाठक के ध्यान को आकर्षित करता है।

ज्ञातव्य है कि विष्णु प्रभाकर के बचपन के अनुभव आजीवन उनकी रचनाओं में अनुगुंजित होते रहे। ‘सब हैं समान’ एकांकी में छूआछूत की समस्या का शहरीकृत दृश्य देखने को मिलता है। छूआछूत से संदर्भित दृश्य में होटल का मालिक पंडित से तर्क करता है, “तब धोने से शुद्धि हो जाती है तो मैंने आवर्णों को धोने का प्रबन्ध कर दिया है। जब धोने से मेज, कुर्सी, दीवारें तक शुद्ध हो जाती हैं तो इन्सान क्यों नहीं हो सकता? गंगाजल भी है। बचपन में जब कभी हम भंगी—चमार से छू जाते थे तो हमारी माँ सोने की अंगूठी पानी में डालकर और उसके छींटे देकर हमें शुद्ध कर लेती थी।”² वैष्णव परिवार में जन्में, पले विष्णु प्रभाकर ने जातिगत भेदभाव की माया से अपने आपको मुक्त करा लिया था। लेकिन अनुभव की सीख में इतनी गहनता थी कि उसे वे भुला न पाये।

पारिवारिक विषयों पर उन्होंने काफी मात्रा में एकांकी लिखे। ‘पिकनिक’ में उन्मुक्त प्रेम की समस्या को प्रधान विषय बनाया। इस एकांकी द्वारा हमें विष्णु प्रभाकर के प्रेम—संबंधी विचारों की जानकारी प्राप्त होती है। गौर करने योग्य बात यह है कि उन्होंने अपने साहित्य के द्वारा किसी प्रकार का अनाचार फैलाने का ओछा काम नहीं किया, परन्तु प्रेम और सेक्स संबंध जैसे नाजुक विषयों को लेकर अपनी भावना प्रस्तुत करने के लिए शैली में वे पर्याप्त कोमलता एवं विचार में अपेक्षित दृढ़ता एक ही साथ ले आते हैं। उनकी धारणा है कि व्यभिचार मात्र

¹ ‘विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य’, सं. महीप सिंह, पृ. 63

² ‘बारह एकांकी’, विष्णु प्रभाकर—, पृ. 247

दैहिक नहीं है। मन से भ्रष्ट होना भी व्यभिचार है। प्रेम में मानसिक मिलन का होना ही मुख्य है, जबकि शारीरिक मिलन गौण है। जहाँ शारीरिक मिलन प्रधानता पाता है वहीं प्रेम उपेक्षित होता है तथा विलास और व्यभिचार पनपता है। सफल पारिवारिक जीवन का मूलमंत्र प्रेम ही है। 'नए-पुराने', 'पैसा', 'दूर और पास', 'और वह न जा सकी' जैसे एकांकी पारिवारिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को लेकर किये गये सफल नाट्य-प्रयोग हैं।

हिन्दी में पारिवारिक जीवन पर सर्वाधिक सफल एकांकी लिखने वालों में विष्णु प्रभाकर, उपेन्द्रनाथ 'अशक', विनोद रस्तोगी, रामकुमार वर्मा विशेष उल्लेखनीय हैं।¹

विष्णु प्रभाकर का और एक एकांकी का विषय उनकी कहानी के कथ्य से मिलता-जुलता है। 'और वह न जा सकी' एकांकी और 'गृहस्थी' का विषय एक ही है। निम्न मध्य वर्ग के खोखले, निठल्ले बुद्धिजीवी और उसकी असहाय पत्नी और परिवार। यहाँ पुनरुक्ति दोष का आरोप नहीं लगाया जा सकता क्योंकि माध्यम और शैली, उसकी नाटकीयता पुनरुक्ति दोष से मुक्ति दिलाते हैं। जीवन की वास्तविकता हवामहलों को तोड़ने की ताकत रखती है। 'और वह न जा सकी' एकांकी इसी तथ्य का पुष्टिकरण करता है। जिन्होंने विष्णु प्रभाकर की आत्मकथा पढ़ी है और उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को लेकर विचार-विमर्श करते रहे हैं यह एकांकी लेखक की आपबीती का रूपान्तरण जैसा लग सकता है।

विष्णु प्रभाकर ने अपने एकांकियों में विविध विषयों को छुआ है लेकिन हरेक की नारी पात्र अपनी-अपनी विशिष्टता रखती है और लेखक के आदर्शवादोचित विचारों के संदेशवाहक भी बनती हैं। 'गीत के बोल' एकांकी में विष्णु प्रभाकर आज की युवा-पीढ़ी के आचरण और व्यवहार को विषय बनाकर पोशाक, खान-पान, गाने-बजाने, हँसने-बोलने जैसे तौर-तरीकों पर फिल्मी दुनिया के गहरे प्रभाव को दर्शाए हैं।

¹ हिंदी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, डॉ. म.के. गाडगील, पृ. 276

उसी एकांकी में नारी-सशक्तिकरण की बात स्पष्टतः कहलायी गयी है। नायिका उमा के पिताजी कहते हैं, “यह प्रगति का युग है। नारी घर के अन्दर बन्द नहीं रह सकती। वह पुरुष की तरह शासन करेगी।”¹ ‘माता-पिता’, ‘पहेली’, जैसे एकांकी इसी विचार को आगे ले जाते हैं। अपने रेडियो नाटकों अथवा ध्वनि-नाटकों में भी उन्होंने नारी जाति को प्रमुखता दी है। ‘कूपे’, ‘सड़क’, ‘उपचेतना का छल’, ‘साँप और सीढ़ी’, ‘डॉक्टर’, ‘गान्धार की भिक्षुणी’ जैसे ध्वनि-नाटकों में उन्होंने स्त्री-पात्र को प्रधानता दी है। उनके द्वारा रचित ध्वनि नाटकों या ध्वनि रूपकों ने स्वयं इस विधा को ही प्रतिष्ठित करने में बड़ा योगदान दिया है।² नारी की कोमलता को दुर्बलता मानकर उसे वासना का शिकार बनाने वाले पुरुषों पर मीरा की बातें तमाचे की तरह लगती हैं।

मनोवैज्ञानिक एकांकी के लेखन में विष्णु प्रभाकर की विशेष रुचि रही है। पात्रों के मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व का सूक्ष्मतम वर्णन करना उनको खूब रास आता है। पात्रों के चारित्रिक बारीकियों का ध्यानपूर्वक अंकन करके उनमें वैविध्य लाने की सफल कोशिश उन्होंने की हैं। कथा साहित्य एवं नाट्य साहित्य दोनों में ही विष्णु प्रभाकर ने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी शैली अपनायी। रेडियो के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक एकांकियों की रचना भी विष्णु जी की निजी देन है।³

मूल्य-संघर्षों के दर्म्यान जो तनाव जीवन में उपस्थित होता रहता है, वही विष्णु प्रभाकर के चित्रांकन का मुख्य बिन्दु रहा है। मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर पात्रों का गठन हुआ है जिससे नाटकीयता में विविधता आ जाती है। अपने रेडियो नाटककार के अवतार में उन्हें खूब सफलता भी मिली है। वे पहले कहानीकार थे, बाद में नाटककार बने। कथाकार की भूमिका में होने से रेडियो नाटककार बनना उनके लिए आसान साबित हुआ। एकपात्रीय नाटक और एकालाप (मोनोलोग) के क्षेत्र में उनका अद्वितीय स्थान है।⁴ अपने एकांकियों द्वारा वे अपने समय और

¹ ‘क्या वह दोषी था?’ संग्रह, विष्णु प्रभाकर पृ. 111

² ‘विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य’, सं. महीप सिंह, पृ. 180-182

³ ‘विष्णु प्रभाकर’, सं. विश्वनाथ मिश्र/डॉ. कृष्णचंद्र गुप्त, पृ. 263

⁴ संपूर्ण नाटक, भाग-2, विष्णु प्रभाकर, पृ. 80

समाज में राजनैतिक एवं सामाजिक मूल्यों की ह्रास पर व्यंग्य कसते हैं। पुराने मूल्यों की जड़ता और नए फैशन की अराजकता—उच्छृंखलता एक ही समान खटकती है। वर्तमान की साँसों की रक्षा के लिए बीते जीवन की धड़कनों को सुनना, उसके अनुभवों से सीख लेना ज़रूरी है। समाज तथाकथित प्रगति और सभ्यता के नाम पर तिकड़मबाजी करता है, ऐसी सभ्यता का पोषण करता है जो दृष्टिविहीन है। विष्णु प्रभाकर के पात्र ऐसे चश्मे की खोज में हैं जो उनको सही दृष्टि दे सकें। तथाकथित सभ्यता के तीव्र प्रकाश ने उनकी दृष्टि को नष्ट कर दिया है।¹

विष्णु प्रभाकर का व्यंग्य जातिगत भेदभाव, नारी की दयनीय स्थिति, दिशाहीन युवा पीढ़ी की मानसिकता, खोखली सभ्यता आदि सामाजिक विकृतियों पर चोट करता है। राजनीति के क्षेत्र में झूठे नेताओं, नकली आदर्शवादियों एवं सत्ता का दुरुपयोग करने वालों की उन्होंने खिल्ली उड़ायी है। उनके व्यंग्यात्मक एकांकियों में समाज एवं राजनीति के क्षेत्रों में पलते अत्याचार, अन्याय, मूल्यहीनता, अमानवीय व्यवहार आदि विषयों के प्रति गहरी चिन्ता है। वर्गहीन मानव समाज की स्थापना ही उनका आदर्श है। उनके अधिकाधिक एकांकियों में इन बातों की चर्चा बार—बार की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कारण कहीं—कहीं कथ्य पर उपदेशात्मकता एवं आदर्शवादिता का रंग भी चढ़ गया है।

‘साँप और सीढ़ी’, ‘उपचेतना का छल’, ‘क्या वह दोषी था?’, ‘संस्कार और भावना’, उनके प्रमुख मनोवैज्ञानिक ध्वनि एकांकी हैं।

‘प्रतिशोध’, ‘पाप’, ‘साहस’, ‘बन्धन मुक्त’, ‘इन्सान’, ‘वीरपूजा’, ‘रक्त चन्दन’, ‘देवताओं की घाटी’, ‘चन्द्रकिरण’, ‘बँटवारा’, ‘भाई’, ‘विभाजन’, ‘भगवान’ जैसे एकांकी सामाजिक हैं। उनमें हिन्दू—मुस्लिम की एकता, साम्प्रदायिक दंगे, अछूतोद्धार, गरीबी और वेश्यावृत्ति, शरणार्थियों की समस्या, कश्मीर (युद्ध और कश्मीर की) समस्या, समाज में पनपते अनैतिक संबंधों आदि का चित्रण हुआ है।

¹ ‘हिन्दी एकांकी और एकांकीकार’, डॉ. रमा सूद— पृ. 107

राजनीतिक विषय को लेकर उन्होंने 'हमारा स्वाधीनता संग्राम', 'हत्या के बाद', 'बीमार', 'कांग्रेस मैन बनो', 'क्रान्ति' जैसे अनेक एकांकी लिखे। उनमें स्वाधीनता संग्राम, पूँजीवाद का विरोध, 1942 की क्रान्ति का वर्णन, नकली स्वार्थपरक राजनीतिज्ञों (नेताओं) पर व्यंग्य, नवजागरण इत्यादि केन्द्रीय विषय हैं। उनके पौराणिक/ऐतिहासिक एकांकियों में 'कंस-मर्दन', 'जन्माष्टमी', 'शिवरात्रि', 'अशोक', 'अतीला का अंत', 'परिवेदन' प्रमुख उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार कोई भी देख सकता है कि, समाज तथा राजनीति की विद्रूपताओं तथा मिथ्याचारों पर अपने हास्य-व्यंग्यपूर्ण शैली में एकांकी लिखे हैं।¹ प्रहसनों में उनकी हास्य-व्यंग्य विनोद प्रियता की झलक मिल जाती है। क्लर्की जीवन की विडम्बना 'सरकारी नौकरी' आजकल के विद्यार्थियों की अध्ययन-शैली पर 'पुस्तक कीट', सिनेमा के अश्लील गानों के प्रचार में परिवार का हाथ 'गीत के बोल', मंत्रियों पर व्यंग्य 'कार्यक्रम', मसिजीवियों का शोषण तथा संपादकों की मिथ्या प्रशंसा का चित्रण 'कला का मूल्य', तथा प्रतीकात्मक सामाजिक व्यंग्य 'दृष्टि की खोज' उनके प्रहसनों में महत्वपूर्ण हैं।

उनके प्रचारात्मक रेडियो एकांकी 'नया कश्मीर', 'सर्वोदय', 'सहिष्णुता', 'नारी', 'यू0एन0ओ0 और युनैस्को', 'पंचायत', 'राष्ट्रीय चरित्र' इत्यादि स्मरणीय हैं। अन्य रेडियो एकांकी 'समाज के स्तम्भ', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'काबुलीवाला', 'सूरदास' भी इसी कोटि के हैं।

विष्णु प्रभाकर के एकांकी भाव और भाषा की सरलता अपनी विशिष्टता रखते हैं। भाषा-शैली तथा शिल्पगत विवेचन करें तो ये एकांकी एकदम सरल, सीधे और सामान्य लगेंगे। इनकी भाषा सदैव पात्रोचित है। खड़ीबोली, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू-जैसी भाषाओं के शब्दों की बहुलता है। शब्द-चयन चरित्रों के मिजाज के अनुकूल है। उसमें गहनता, तार्किकता, व्यंग्यात्मकता जैसे गुण अनायास ही उभरकर आते हैं। उदाहरण के लिए 'सुनन्दा' और 'दरारों के द्वीप'

¹ 'हिन्दी एकांकी और एकांकीकार', डॉ. रमा सूद— पृ. 109

के तथाकथित छोटी जातिवालों के कथन लिये जा सकते हैं। उनमें सदियों से दबे हुए आक्रोश, गुस्सा, व्यंग्य, आदि भावनाएँ व्यंजित हैं:

1. “हिम्मत बड़ी जात की बपौती नहीं है, माँ जी।”¹
2. ‘अभिमान और छोटी जातिवालों को! अभिमान तो आप बड़ी जातिवालों की हड्डियों को चिंचोड़ रहा है।’²
3. “काला बाजार : तब हम कांग्रेस में प्रवेश करके अपने को बचा सकते थे। ये सफेद कपड़े हमारे लिए कवच प्रमाणित हुए।”³

उनके जो एकांकी नारी में निहित ज्ञान और तर्कशक्ति के गुणों का साक्षात्कार कराते उनमें विशेष स्मरणीय हैं ‘अर्द्धनारीश्वर’ और ‘कुम्हार की बेटी’ के स्त्री-पात्रों की तर्कसम्मत धारणाएँ। स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर लक्ष्मी देवी विष्णु से सवाल करती हैं तो विष्णु कहते हैं कि अर्द्धनारीश्वर ही उनके सवाल का जवाब है। तब लक्ष्मी कहती हैं, “पूर्ण मानव! तो स्त्री और पुरुष अपने में अधूरे हैं, देव! उस अधूरेपन को दूर करने में ही उनका सम्बन्ध बनता है।”⁴ मोल्ला कहती है, “जाति का कुम्हार होने से क्या होता है। मनुष्य में गुण प्रधान है। अबला हूँ तो क्या हुआ। अवसर मिलने पर नारी-पुरुष से पीछे नहीं रह सकती।”⁵

रेडियो एकांकी-लेखन में शब्दों के द्वारा ध्वनि के माध्यम से संपूर्ण वातावरण का चित्रण किया जाता है। अतः वहाँ सरल एवं सुगम भाषा का प्रयोग हुआ है। इससे उनकी संप्रेषणीयता बढ़ी है। शैलीगत या शिल्पगत आडम्बर के अभाव में सामान्य पाठक एवं श्रोता तक उनके एकांकी की पहुँच सुलभ हो गयी। बच्चों के लिए लिखे एकांकियों में तो पारदर्शी भाषा प्रयुक्त हुई है। अभिनयात्मकता इनके एकांकियों की अन्यतम विशेषता है। उन्होंने समसामयिक समस्याओं को

¹ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण नाटक, भाग-2, पृ. 183

² वही, भाग-3, पृ. 341

³ वही, भाग-1, पृ. 239

⁴ विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण नाटक, भाग-3, पृ. 23

⁵ वही, भाग-3, पृ. 53

विषय का रूप देने की सफल कोशिश की। उनकी दृष्टि व्यापक, गहरी एवं समग्र है।¹

शिल्प की दृष्टि से देखें तो एकांकी लिखने में विष्णु प्रभाकर ने पूर्वदीप्ति (फलैश बैक) पद्धति, एकालाप (मोनोलोग), प्रतीकात्मक शैली इत्यादि का प्रयोग किया है।

विष्णु प्रभाकर ने बच्चों से लेकर बड़ों तक, सब तरह के लोगों के लिए एकांकी लिखे। उनके एकांकी सरलता, नाटकीयता, बोधगम्यता एवं दृष्टि की उदारता और व्यापकता के कारण लोकप्रिय सिद्ध हुए हैं। इस संदर्भ में डॉ० नगेन्द्र का यह कथन ध्यातव्य है कि 'वे हिन्दी के उन लेखकों में हैं जिनके लिए साहित्य—सृजन सेवा या विनोद न होकर एक साधना है। उनकी साधना एक निष्ठ है। उनमें समाज की दाम्भिक चेतना या विनोद का हल्कापन नहीं है। उनके साहित्य की मूल आत्मा उसका सहज मानवीय गुण है। उनकी चेतना और विचारधारा पर आज के युग—दर्शन गाँधीवाद का गहरा प्रभाव है।²

¹ 'विष्णु प्रभाकर', सं. विश्वनाथ मिश्र/कृष्णचंद्र गुप्त, पृ. 271

² 'हिन्दी एकांकी और एकांकीकार', डॉ. रमा सूद, पृ. 111

तृतीय अध्याय

विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों का कथ्य और शिल्प

3.1 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों का कथ्य

कथ्य मूलतः रचना की मूल वस्तु है जो रचनाकार के उद्देश्यों का संवाहक है। इसके माध्यम से रचनाकार अपने अनुभवों को पाठक के सामने प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही रचना-प्रक्रिया में शिल्प का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी रचना की सफलता केवल कथ्य पर ही निर्भर नहीं करती अपितु शिल्प पर भी निर्भर करती है। शिल्प कथा के लिए एक तरह से वातावरण तैयार करता है जिससे कथ्य में जीवंतता आती है। यही जीवन्तता रचना और रचनाकार को कालजयी बनाती है। साहित्य का मूल्यांकन करते समय पाठकों और आलोचकों ने कभी उसके भाव और कला को तो कभी अनुभूति और अभिव्यक्ति को महत्व दिया। कथ्य पर हमारे प्राचीन विद्वानों ने विशेष प्रकाश डालने की कोशिश नहीं की। भामह ने इसकी व्यापकता को रेखांकित करते हुए कहा है कि “ऐसा न कोई शब्द है, न अर्थ, न न्याय, न कला, जो काव्य का अंग न बन सके।”¹ भामह ने अपनी स्थापना काव्य संदर्भ में दी है, इसी तरह राजशेखर भी कथ्य के बाह्य आवरण पर विचार केवल काव्य के संदर्भ में करते हैं।

¹ काव्यालंकार, भामह. पृ. 54

आधुनिक विद्वानों ने कथ्य की चर्चा करते समय रचना के मूल स्रोतों की पड़ताल की है। इस संदर्भ जयशंकर प्रसाद ने लिखा है कि “साहित्यकार अपने विशाल अनुभव से जगत में से चुनकर जो कुछ किसी रचना में प्रस्तुत करता है दूसरे में जिसमें कथनीय समता है वही कथ्य है। साहित्य के कथ्य की सीमा बहुत व्यापक है। रचनात्मक साहित्य की वस्तु के अंतर्गत भाव, विभाव, चरित्र, विचार, इतिवृत्त, प्रकृति, आदि सब समाविष्ट हो सकता है, जो कलात्मक रूप ग्रहण करने के लिए साहित्य की सूक्ष्म या स्थूल सामग्री बन सकती है।”¹ हिंदी शब्द कोश में कथ्य को “कहने योग्य या कथनीय”² माना गया है। प्रभाकर जी अपने उपन्यासों में कथ्य के साथ न्यायसंगत व्यवहार किया। इन्होंने अपने उपन्यासों के कथ्य को आलंकारिकता से प्रायः मुक्त ही रखा है।

विष्णु प्रभाकर हिंदी साहित्य के उन महान लेखकों में हैं जिनको लेखन के लिए निरी कल्पना की आवश्यकता नहीं पड़ी। इनका समूचा रचना कर्म समाज से गहरा सम्बन्ध रखता है। इन्होंने अपनी बात सीधे एवं सरल तौर पर रख दी है, किसी बात को कहने के लिए अनायास विद्वत्ता का प्रदर्शन नहीं किया है। अपनी इसी सरलता एवं सहजता के कारण पाठकों और आलोचकों के प्रिय रहे। विष्णु प्रभाकर जी की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वे किसी बात को बिना लाग लपेट के कहने में किसी प्रकार का संकोच

¹ वस्तु और कला, जयशंकर प्रसाद, पृ. 5

² संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, सं. राम चन्द्र वर्मा, पृ.

नहीं करते हैं | इस बात को इनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है | विष्णु प्रभाकर ने अपने प्रथम उपन्यास 'निशिकांत' की भूमिका में लिखा है कि "समीक्षकों ने भी इसका स्वागत जैसा कि होता है वैसा ही किया | किसी ने निकृष्ट कहा तो किसी ने सर्वश्रेष्ठ | और भी बहुत सी अनर्गल बातें इसके बारे में कही गईं | . . . प्रकाशक महोदय संभवतः अपने प्रभाव के कारण इसे पंजाब विश्वविद्यालय में लगवाने में सफल हो गये | पंजाब आर्य समाज का गढ़ रहा है | उसे इस उपन्यास की विषय-वस्तु उसके सिद्धांतों के विरुद्ध लगी | इसीलिए पाठ्यपुस्तक में रहना उनके नेताओं को स्वीकार्य नहीं हो सकता था, नहीं हुआ | उन्होंने इसके विरुद्ध आन्दोलन छेड़ दिया |"¹ विष्णु प्रभाकर की रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में मानना है कि "सृजन के पीछे एक दृष्टि होती है जो एक विशेष सामाजिक परिस्थिति और परिवेश की देन होती है उसको समझे बिना उस सृजन विशेष को भी नहीं समझा जा सकता | मानव संबंधों को उसके युग और परिवेश से अलग करके नहीं देखना चाहिए | शाश्वत में वर्तमान का दावा उपेक्षणीय किसी भी तरह नहीं है | जब हम युग के वर्तमान से जुड़ते हैं तो सामयिक समस्याओं के सृजन में ओतप्रोत रहना अनिवार्य है | किसी भी स्तर पर कट्टर सिद्धांतवादी होने से कला का हास होता है | दृष्टि जितनी गहरी होनी

¹ निशिकांत, विष्णु प्रभाकर, भूमिका पृ. 5

चाहिए उतनी व्यापक भी | और सम्पूर्ण भी ! तभी जटिलता से मुक्ति मिल सकती है, यानी सहज हुआ जा सकता है |”¹

‘निशिकांत’ उपन्यास के केंद्र में कई विषय हैं जिसमें धर्म, राजनीति, स्त्री आदि प्रमुख हैं | निशिकांत सरकारी दफ्तर में काम करने वाला देशभक्त युवक है | वह चाहता नहीं है कि नौकरी करे पर घर की आर्थिक स्थिति ऐसी है कि बिना नौकरी किये रह भी नहीं सकता | यही स्थिति विष्णु प्रभाकर की भी थी | दूसरे शब्दों में कहें तो हम कह सकते हैं कि निशिकांत कोई और नहीं अपितु विष्णु प्रभाकर जी हैं | निशिकांत धर्मगत रूढियों का घोर विरोधी है | उसका मानना है कि मनुष्य मात्र मनुष्य है न हिन्दू है न मुसलमान | धर्म मनुष्य को अलग नहीं करता अपितु जोड़ता है, फिर ऐसा जयघोष किस लिए ? सांप्रदायिक दंगे में मोहन के मरने के बाद लोगों का प्यार देखते बनता है | यह सब देखकर कान्त कहता है कि “हाँ, उन्होंने ही उसे मार डाला | वह हिन्दू था | हर कहीं हिन्दू हैं, मुसलमान हैं; पर मनुष्य आज कहीं नहीं है |”² निशिकांत जिस मनुष्य की बात कर रहा है उस मनुष्य का निर्माण साम्प्रदायिक सदभाव से ही संभव है |

निशिकांत मूलतः पक्का आर्य समाजी है पर अंध विश्वासी नहीं है | उसकी सक्रिय भागीदारी की वजह से कई बार राज भक्ति के विरुद्ध द्रोह करने के मामले में नेताओं की वजह से बच जाता है | इन सब लोभों से परे

¹ शब्दयोग, सं. सुभाष पन्त, पृ.19, दिसम्बर 2007

² निशिकांत, विष्णु प्रभाकर, पृ. 15

निशिकांत का अपना एक आत्म सम्मान था; वह आर्य समाज में बढ़ रही रूढ़िवादिता का घोर विरोध करता है | आर्य समाज के मंत्री महोदय कम्पाउंडर की पत्नी और धर्मपाल का धर्म-परिवर्तन करवाते हैं एवं भोजन के समय बहाना बनाकर चले जाते हैं | इससे उसका विश्वास आर्यसमाजियों से उठ जाता है | फिर भी वह धर्म को अनुचित न मानकर उसके मानने वालों के दोहरे चरित्र को अनुचित मानता है | वह धर्म को समाप्त करने और उसके नाम पर अपना उल्लू सीधा करने वाले लोगों के विषय में रियाज और कुमार से बातचीत के दौरान कहता है कि “देखिये हम कुछ गलत रास्ते पर चल पड़े हैं | धर्म को मिटाने की बात व्यर्थ है | वास्तव में कौन धार्मिक है यह कहना बड़ा कठिन है परन्तु ‘धर्म खतरे में है’ यह पुकार लगाने वाले अनेक हैं | वह धर्म को प्यार करते हैं, ऐसी बात नहीं है, परन्तु ऐसा कहने से उनके स्वार्थ की सिद्धि होती है, यह निश्चित है |”¹

जिस आज़ादी की बात करते आज हम थकते नहीं उस आज़ादी के लिए क्या कीमत हमें चुकानी पड़ी थी इस बात से हम अनजान नहीं हैं | भारत-विभाजन की त्रासदी विष्णु प्रभाकर ने अपनी आँखों से देखी थी | इस विभाजन की त्रासदी के पीछे सबसे ज्यादा जिम्मेदार हमारे राजनेता हैं, जिन्होंने सत्ता की लालच में विभाजन के बाद होने वाली त्रासदी के विषय में तनिक भी सोचने का प्रयास नहीं किया | आज़ादी के दौरान कुछ नेता और समाज सुधारक ऐसे भी थे जो भारत-विभाजन नहीं चाहते थे, उनका

¹ निशिकांत, विष्णु प्रभाकर, पृ. 100

मानना था कि धर्मगत विभेद का फ़ायदा उठाकर अंग्रेज भी हमारे ऊपर शासन कर रहे हैं | इस विभेद को मिटाकर आपस में एक साथ मिलकर आज़ादी के लिए लड़ने की ज़रूरत है लेकिन संख्या कम होने की वजह से उनकी आवाज को दबा दिया गया | इस बात को निम्नलिखित संवादों में देखा जा सकता है-

“ जगदीश बोला, “यह तो विनाश का कारण है | पाकिस्तान का प्रश्न इसी को आगे लेकर आ रहा है |”

शर्मा ने जबाब दिया, “आ नहीं रहा, आयेगा | आप उन्हें जितना दबायेंगे, वे आपसे उतना ही दूर हटेंगे | मुझे डर है कि पाकिस्तान जल्द ही दस करोड़ मुसलमानों की माँग पर बन जाएगा |” ...

रियाज़ ने कहा, “मुझे यहाँ आने की खुशी है | मैं धर्म-वर्म नहीं जानता परन्तु जातियों का सवाल ज़रूर गौर करने लायक है | हिन्दू-मुसलमानों में एकता ज़रूरी है | अंग्रेज़ उन्हीं की फूट का फ़ायदा उठाकर राज्य कर रहे हैं | हमें मुस्लिम जनता में जाकर काम करना चाहिए और आज़ादी का युद्ध छेड़ देना चाहिए |”¹ उसी दौरान गाँधी नेहरू इस मामले से अन्जान बने रहे और अंग्रेजों के हाँ में हाँ मिलते रहे | गांधी जी ने संत बने रहने का ढोंग करते हुए भारत-विभाजन होने दिया | गांधी जी का नेहरू जी के प्रति अतिरिक्त मोह भारत-विभाजन की त्रासदी का मूल कारण था | इस विभाजन की वजह से जितने लोग मारे गए शायद ही अंग्रेजों और भारतीय राजाओं

¹ निशिकांत, विष्णु प्रभाकर, पृ. 101

के मध्य हुए युद्ध में एक साथ इतना बड़ा नरसंहार हुआ हो। गाँधी जी इस प्रकार के गलत निर्णय करने से अच्छा होता कि हिंसा का ही रास्ता अपनाते तो इतनी बड़ी मात्रा में देश की बरबादी नहीं होती। अंग्रेज़ धर्म और जाति के नाम पर देशवासियों में आपसी कलह पैदा करा रहे थे इस बात को गाँधी और नेहरू नज़र अंदाज़ कर रहे थे। इस संदर्भ में विष्णु प्रभाकर एक पात्र के माध्यम से कहते कि “सच कहता हूँ। अभी तो जाति-जाति में झगड़ा है, जल्दी ही गोत्रों और कुटुम्बों में इसी तरह के झगड़े उठा करेंगे। और अब क्या नहीं उठाते ! हाय रे कम्बख्त हिन्दुस्तानियों ! एक अंग्रेज का बच्चा इनको बन्दर की तरह नाच नचाता है। और ये गाँधी-नेहरू ‘हाँ हज़ूर; हाँ हज़ूर’ करते रहते हैं।”¹ निशिकांत धर्म और जातिगत रूढ़ियों एवं संस्कारों से मुक्त समाज चाहता है इसीलिए वह अपने विवाह के सम्बन्ध में अपना मंतव्य कमला के सामने करते हुए कहता है कि “आप ठीक कहते हैं संस्कार की गुलामी ऐसी होती है, पर आप तो उससे मुक्ति पाने के लिए विशेष आतुर हैं।”

“तुमने कैसे जाना?”

“माँ कह रही थी।”

“माँ कह रही थी कि मैं विवाह नहीं कर रहा हूँ”

“तो तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते?”

“विवाह करना क्या ज़रूरी है?”

¹ निशिकांत, विष्णु प्रभाकर, पृ. 156

“सभी करते हैं |”

“तो मैं भी कर लूँ ? मैं भी औरों की तरह संस्कारों को चुपचाप स्वीकार कर लूँ ?” देखो कमला | मैं विवाह करने से मना नहीं करता पर ऐसा विवाह करना चाहता हूँ जैसा आज तक न हुआ हो |”

“अर्थात् मैं मुसलमान लड़की से विवाह करना चाहता हूँ | कम से कम वह अछूत जाति की अवश्य हो |”

कमला ने एक बार कान्त को देख फिर बोली “इतना साहस है आपमें ? माँ से लड़ सकेंगे |”¹

निशिकांत देश के प्रति आस्थावान होने की वजह से नौकरी छोड़ देता है और स्वतंत्रता की राह का चुनाव करता है |

कोई तो

‘कोई तो’ उपन्यास की रचना स्त्री, राजनीति और धर्म आदि मुद्दों को लेकर की गयी है | इस उपन्यास की नायिका वर्तिका मध्यवर्गीय परिवार की लड़की है | वर्तिका का नाम ‘वर्तिका’ कैसे पड़ा इसके पीछे बचपन में घटी वह घटना है जिसके लिए वह तनिक भी ज़िम्मेदार नहीं थी | सुविधा जिसकी उम्र सत्रह साल नौ महीने है, उसे इंटरमीडिएट का फार्म भरना था | वह अकेली ग्वालियर जाना चाहती है उसी दौरान उसके पिता के साथ काम करने वाले शेख जान मुहम्मद का बेटा असद किसी काम से मसूरी आया था | सुविधा की बुआ ने उसकी सुरक्षा का ध्यान रखकर असद के साथ यह

¹ निशिकांत, विष्णु प्रभाकर, पृ. 108

कहते हुए भेजती है कि “इसका ध्यान रखना, बेटे ! इधर-उधर न भटक जाए । दिल्ली तो जंगल है । भीड़-सी-भीड़ ही होती है वहाँ ! ना बाबा, तू तो मरद बच्चा है, यह ठहरी औरत जात . . .”¹ इसके बाद वह उसे लेकर चला जाता है । सुविधा अपने चंचल स्वभाव के कारण बस में बोलती-हँसती है । यह देख बस में बैठे हिन्दू धर्म और संस्कृति के रक्षक सोचते हैं कि यह मुसलमान लड़के के साथ भाग रही है, अतः दिल्ली में दोनों को अलग कर देते हैं और सुविधा को अंत में पुलिस के हवाले कर दिया जाता है । उस दौरान उसकी जमानत देने के लिए कई हिन्दू धर्म और संस्कृति के रक्षक आते हैं । उनका उद्देश्य मात्र इतना रहता कि सुविधा को भोग सके । सुविधा के दूर के मामा काफी मस्कत करने के बाद उसे छुड़ाते हैं । प्रभाकर जी सुविधा का परिचय देते हुए लिखते हैं कि-

“वह सुविधा नहीं है । उसका नाम सुविधा है ।

वह नारी नहीं है । उसका शरीर नारी है ।

वह वयस्क नहीं है । उसकी आयु सत्रह वर्ष नौ महीने है ।

अर्थात् तीन महीने कम है ।

अर्थात् वह तीन महीने कुछ भी करने के लिए स्वतन्त्र नहीं है ।

यही उसके जीवन की त्रासदी है । उसने करणीय और अकरणीय की सीमा-रेखा को अस्वीकार कर दिया । वह सोच नहीं पायी कि ईसा की बीसवीं

¹ कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 9

सदी के आठवें दशक में भी उसके लिए वह कुछ अकरणीय है जो उसने किया ।”¹

किशोरावस्था में घटी यह घटना उसका जीवन भर पीछा नहीं छोड़ती। सुविधा ने इन घटनाओं के बाद अपना नाम बदलकर ‘वर्तिका’ रखा लिया । वर्तिका समाज सेवा को अपना मूल उद्देश्य बना लेती है । इसी उपन्यास में प्रभाकर जी ने दो उच्चवर्गीय महिलाओं से पाठक का परिचय करवाया है जिनके लिए समाज उतना ही महत्व रखता है जितना उनको ज़रूरत है । पल्लवी को इस उपन्यास की सह नायिका कह सकते हैं । पल्लवी उच्चवर्गीय परिवार से सम्बन्ध रखती है उसके लिए स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता के कोई महत्व नहीं है । वह जानती है कि अजीत केडिया शादी शुदा है फिर भी उसके साथ सह-सम्बन्ध रखती है । पल्लवी यह सम्बन्ध इसलिए रखती है कि अजीत केडिया के पास बहुत पैसा है जिससे उसकी सारी इच्छाएँ आराम से पूरी हो सकती हैं । वहीं अजीत केडिया की भतीजी समाज सेवा का बहाना बनाकर राकेश के संपर्क में आती है और उसका मंत्री पद छीन जाने के बाद उसको छोड़कर राजेंद्र से शादी कर लेती है । विष्णु प्रभाकर जी समाज में देह बनती स्त्री का क्या मनोविज्ञान होता है ? किस तरह से हर गलत फैसले को सही साबित कर देती हैं, इस बात से पाठकों को परिचित कराने का प्रयास किया गया है ।

¹ कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 7

प्रभाकर जी इन सब प्रेम कहानियों के साथ-साथ अंतरजातीय प्रेम संबंधों की दशा और दिशा से परिचित कराया है। उच्च जातियों में जहाँ निम्न जातियों को लेकर तिरस्कार है वहीं निम्न जातियों में सदियों की दुर्दशा को लेकर घृणा है। चन्दा का भाई नहीं चाहता कि उसकी बहन उच्च जाति के हरिराम से विवाह करे। “चन्दा के भाई ने कितना मारा उसे, नीला पड़ गये बदन पर। मरते रहे, कहते रहे,” जो हजारों वर्षों से हमें दुरदुराते रहे, नफ़रत करते रहे, हमारी छाँव से गन्दे होते रहे, उन्हीं से प्यार करेगी तू, हरामजादी . . .।”¹ जाति-पाँति को लेकर चन्दा के मन में अनेक सवाल उठते हैं जैसे-“क्यों है यह ऊँच-नीच? आदमी तो हर कहीं वही है, वैसे ही बैठता-उठता, खाता-पीता, प्यार और नफ़रत करता है।”² चन्दा से शादी कर लेने के बाद हरी उसे अपने गाँव ले जाता है वहाँ उससे हरी को अलग करके चन्दा को इतना सताया जाता है कि वह न्यायालय में मान लेती है कि उसने हरी से शादी नहीं की।

वर्तिका से कई पुरुषों ने प्रणय निवेदन किया, उसका प्रेमी तुषार अपनी माँ के कहने पर शादी नहीं करता है। अन्त में बिना सप्तपदी पढ़े अनाथ अज्ञात कुल के नारायण के साथ रहने लगती है। इस वजह से उसके पिता भी सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं।

¹ कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 47

² वही, पृ. 46

तट के बंधन

‘तट के बंधन’ मध्यवर्गीय नारी की समस्याओं को लेकर लिखा गया उपन्यास है। “इस उपन्यास के माध्यम से इस वर्ग की नारी की समस्याओं को चित्रित कर वस्तुस्थिति से केवल अवगत ही नहीं कराया है अपितु मध्यवर्गीय नारी को समय के साथ आगे बढ़ने की तथा समाज का सामना करने की शक्ति प्रदान की है। विष्णु प्रभाकर जी का विश्वास है कि अपने अस्तित्व एवं प्रतिष्ठा की यह लड़ाई नारी को स्वयं लड़नी पड़ेगी, उसे साहस पूर्वक आगे आकर परिस्थितियों से संघर्ष करना होगा। इसके लिए स्वावलम्बन एवं आर्थिक स्वाधीनता आवश्यक है।”¹ मालती के पिता उसका विवाह इसलिए नहीं कर पाते क्योंकि वह अधिक सुंदर भी नहीं है और उनके पास दहेज़ के नाम पर देने के लिए भी कुछ नहीं है। उसकी माँ हर आने वाले लड़के में अपने भावी दामाद की कल्पना करने लगाती है। शीला के ठेकेदार पिता खूब सारा दहेज़ देकर वकील बुधवार के बेटे नरेश से विवाह करते हैं। यह सब देखकर पण्डित गणेशदत्त लाला रविशंकर से कहता है कि “जी में आता है कि अपनी लड़कियों का गला घोट दूँ।”² नरेश के पिता इतना सब मिलने के बाद भी खुश नहीं होते और बार-बार यही कहते हैं कि

¹ विष्णु प्रभाकर, डॉ. विश्वनाथ मिश्र / डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त, पृ. 232

² तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 29

“मैं ठगा गया।”¹ नरेश भी अपेक्षा से अधिक दहेज़ नहीं मिल पाने की वजह से शीला की हत्या कर देता है।

प्रभाकर जी ने भारत विभाजन के बाद स्त्रियों की क्या दशा हुई इस पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया है। अनीला, जो कि गोपाल की प्रेमिका थी, भारत-विभाजन के समय पाकिस्तान में छूट जाती है। वहाँ अनीला कई पुरुषों के हाथों बेची जाती है। अन्त में उसके मृत सखी का मंगेतर अजीत अनीला को खरीद लेता है। दोनों अपना-अपना नाम बदलकर अमजद और अस्मत के नाम से पाकिस्तान में रहने लगते हैं। कुछ दिन बाद सच्चाई का पता चलने के बाद संवैधानिक कारणों से भारत भेज दिए जाते हैं।

जुलेखा से बनी जमुना विभाजन के दौरान भारत छोड़कर नहीं जा पाती और रतिराम के भाई की रखैल बन जाती है, न चाहते हुए भी उसे पाकिस्तान भेज दिया जाता है। आज़ादी के विषय में जमुना नीलम से कहती है कि “जानती हैं कितनी बुलबुलें हमारी आज़ादी की नींव में दफ़नायी गई हैं . . . जब नया मकान बनाते हैं, तब उसकी नींव में कोई बेशकीमती चीज रखते हैं। आज़ादी के महल की नींव में उसी हिसाब से शहीदों के खून के साथ हमारी अस्मत भी रखी गयी है . . . फर्क सिर्फ़ इतना है कि खून आज़ादी के दुश्मनों ने बहाया था। अस्मत आज़ादी पाने वालों ने लूटी थी।”²

¹ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 65

² तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 80

शशि इस उपन्यास में एक ऐसी पात्र है जो अपने निर्णय स्वयं लेती है। वह परम्परा-निर्वाह में विश्वास नहीं रखती। मालती शशि के विवाह के संदर्भ में बात करते हुए कहती है कि “समाज से विद्रोह करना ही होगा और समाज उन्हीं को पूजता है जो विद्रोह करते हैं, जो समाज की पूजा करते हैं सदा दुःखी रहते हैं।”¹ इस बात से समाज में हुई प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में गोपाल कहता है कि “जब प्रचलित रीति रिवाज पर चोट की जाती है तो समाज में हलचल मचना स्वाभाविक है।”² प्रभाकर जी ने नारी को पारम्परिक ढाँचे से निकालकर वह अपने लिए खुद कुछ कर सके इस बात के लिए प्रेरित करने का प्रयास किया है।

संस्कार

‘संस्कार’ उपन्यास की रचना पत्रात्मक शैली में की गयी है। इसमें एक ऐसी स्त्री की कहानी है जिसका विवाह बचपन में हो जाता है। उसका पति एक दिन घर छोड़कर भाग जाता है। रामो का पति विद्वान है और उसको देश-विदेश में उसकी विद्वत्ता के लिए जाना जाता है। उसके पति ने भ्रमण के दौरान अपने जीवन में तीन शादियाँ कीं। रामो ऐसे पति की सलामती के लिए व्रत रखती है और भगवान से उसकी सलामती के लिए प्रार्थना करती है। रामो अपने पति के होने मात्र से गर्व महसूस करते हुए लिखती है कि “मेरे सुहाग पर कभी संकट नहीं आया। भले ही मेरा हाथ काँपा हो, लेकिन

¹ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 43

² वही, पृ. 41

माँग में सिन्दूर भरने का मेरा अधिकार आज तक कोई नहीं छीन सका । यह दूसरी बात है कि जिसके लिए सिंदूर भरती हूँ वह हमेशा मेरे लिए दर्पण का व्यक्ति बना रहा, आँखों का नहीं बन पाया।”¹

रामो से शादी के पच्चीस वर्ष बाद एक बार पति से कुछ क्षण के लिए मुलाकात होती है, उसका पति जब रामो को देखता है तो उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं और उसकी जेब में जो कुछ पैसा रहता है रामो के आँचल में डाल देता है । उसके साथ हुआ यह व्यवहार अपमान जनक लगता है, वह पति से पैसे या अन्य सुविधाओं की आशा नहीं करती है । उसका मानना है कि पति-पत्नी के संबंधों के बीच में अर्थ का विशेष महत्व नहीं है। इस विषय में लिखती है कि “मैं समझ नहीं पा रही थी कि तुमने मेरा अपमान किया था या सचमुच ही तुमको मुझपर दया आई थी । लेकिन क्या उस स्थिति में दया और अपमान दोनों का एक ही अर्थ नहीं था । पत्नी क्या पति से पैसे की ही आशा करती है ? विवाह क्या इसीलिए होता है ? मैं तुम्ही से इसका उत्तर पूछती हूँ, तुमने यह सब क्यों किया ? तुम्हारे लिए नारी का मूल्य क्या केवल इतना ही है ?”² इसके बाद आजीवन इंतजार करती है । वह फिर कभी लौटकर नहीं आता ।

¹ संस्कार, विष्णु प्रभाकर, पृ. 15

² संस्कार, विष्णु प्रभाकर, पृ. 39

स्वप्न

‘स्वप्न’, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि गुजर गयी घटना या गुजरे पल की कथा है। विष्णु प्रभाकर ने इस उपन्यास की रचना फ्लैश बैक शैली में की है। इस उपन्यास की प्रधान नायिका अलका है, सारी कहानी उसी के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। अलका एक प्रयोगशील स्त्री है वह सब कुछ अपने अनुभवों से ही सीखना चाहती है। वह समाज के उन हिस्सों में भी जाती है जहाँ जन सामान्य पूँजीपति वर्ग और सरकार की वजह से दुर्दशा झेल रहा है। उसके खुले स्वभाव की वजह से उसका पति भी शंका करने लगता है। इससे वह तनिक भी विचलित नहीं होती है बल्कि इसके प्रत्युत्तर में कहती है कि “अब भी मुझे विश्वास है कि आत्मग्लानि से मैं जहर नहीं खाऊँगी। सामाजिक भय से कहीं जाकर छिपूँगी भी नहीं। मैं तुम्हारे हृदय के सिंहासन पर बैठी रहूँगी, अपना अधिकार आसानी से नहीं छोड़ूँगी, क्योंकि ऐसा करने का अर्थ होगा दुनिया को यह बताना कि मेरे योग्य आज की दुनिया में कोई है ही नहीं। मैं नए समाज की सृष्टि में विश्वास करती हूँ लेकिन फिर भी मेरे स्वामी, मैं तुम्हारी घृणा नहीं सहना चाहती। तुम बोलो, क्या करूँ?”¹

प्रभाकर जी ने आधुनिक नारी और पारम्परिक नारी दोनों को एक साथ रखकर समाज के अंतर्द्वंद्वों से परिचित कराया है। अलका की सास अलका की आज़ादी का विरोध करते हुए अपने बेटे से कहती है कि “यह जो

¹ स्वप्न, विष्णु प्रभाकर, पृ. 97

तुमने बहू को बाजारू बना दिया है, ना-ना, बाबा, यह सब अच्छा नहीं लगता | औरत औरत है | घर के बाहर औरत की आज़ादी नहीं होती |”¹

पितृसत्तात्मक समाज में एक स्त्री कैसे पुरुष के आदर्शों के अनुसार अपने आपको गढ़ती है, इस बात को अलका की सास के उपर्युक्त संवादों में देखा जा सकता है | जब अलका की आज़ादी पर किसी प्रकार की बन्दिश नहीं लगती और दोनों स्वतन्त्र व्यवहार करते हैं तो यह सब देखकर उसकी माँ कहती है कि “बहू का पूरी तरह गुलाम हो गया है | शर्म नहीं आती माँ के सामने हँसते हुए | . . . हाय रे! इन बेटों के कारण मुझे क्या नहीं सहना पड़ता! मैं मर जाती, राम मुझे उठा लेता तो क्यों ये दिन देखने पड़ते ? जाने वाले चले गए, मुझे यह नरक यातना भोगने को छोड़ गए |

मैंने तेज़ी से कहा “माँ यह सब क्या है ?”

माँ भी उसी तेज़ी से बोली, “कुछ नहीं मैं मरूंगी, मैं मरूंगी |”² अलका की सास उस आदिम गला घोटू परम्परा की याद दिलाती है जहाँ स्त्री को अपने पति से किसी के सामने बात करने का अधिकार नहीं था | यह सब देख अलका गाँव जाने का फैसला करती है | वह सोचती है कि क्या वहाँ प्रयोग करने जाती है | गाँव में जाने के बाद वहाँ की स्थिति के विषय में अपने पति को लिखती है कि “मैं माँ की आज्ञा का पालन करने की कोशिश कर रही हूँ | मैं जब से यहाँ आई हूँ, बाहर नहीं निकली हूँ | यद्यपि मेरा दम

¹ स्वप्न, विष्णु प्रभाकर, पृ. 101

² स्वप्न, विष्णु प्रभाकर, पृ. 125

घुटने लगता है, लेकिन फिर भी बहुत अधिक अवसाद नहीं है | . . . यहाँ नारी का अर्थ कुल-बधू भी नहीं है | है तो घर की दासी, जिसका स्थान भोजन-गृह और प्रसूति गृह तक ही सीमित है, मानो घर का काम और बच्चा पैदा करने के लिए ही वह खरीदी जाती है | . . . मुझे खाने की आज्ञा है, बात करने की आज्ञा है, लेकिन आज्ञा नहीं है तो केवल बाहर जाने की | जब कभी मैं माँ से बाहर जाने के लिए कहती हूँ तो वह हँसकर जबाब देती हैं, “बहू, यह शहर नहीं है, तुम्हें यहाँ बहू-बेटियों की तरह रहना चाहिए |”¹

अलका गाँव में जाती तो है पर किसी प्रकार का सुधार कर पाने में असफल रहती है | गाँव की बहू के रूप में वह गाँव में न पारम्परिक भूमिका निभा पाती है न आधुनिक | हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि आधुनिकता और परम्परा के द्वन्द में हमेशा फँसी रहती है | अंततः प्रसव के दौरान उसकी मृत्यु हो जाती है |

संकल्प

‘संकल्प’ उपन्यास की रचना प्रभाकर जी ने अन्य समस्या प्रधान उपन्यासों की तरह, स्त्री-समस्या को केंद्र में रखकर, की है | इसकी नायिका सुमति विधवा है | वह अपनी आजीविका चलाने के लिए नौकरी करने जाती है | वहाँ उसका उच्चाधिकारी उसके साथ अभद्र व्यवहार करने लगता है, जिसकी वजह से वह नौकरी छोड़कर लेखन का कार्य चुनती है | उसकी ननद मोनिका को उसका प्रेमी इसलिए छोड़ देता है कि मोनिका से शादी करने के

¹ स्वप्न, विष्णु प्रभाकर, पृ. 148

बाद उसे ढेर सारा दहेज़ नहीं मिलता और न ही घर में काम करनेवाली तथाकथित भारतीय बहू ।

सुमति चाहती तो अपना दूसरा विवाह कर सकती थी लेकिन अपने लड़के के भविष्य के लिए शादी नहीं करती । वह सोचती है कि यह जब तक खुद कुछ करने लायक नहीं हो जाता तब तक मैं मुक्त नहीं हो सकती । उसकी शादी कर लेने के बाद कहती है कि “मैंने आज अनुभव किया है कि अपना संकल्प पूरा करा लेने के बाद भी मैं सचमुच मुक्ति नहीं चाहती ।”¹

अर्धनारीश्वर

‘अर्धनारीश्वर’ उपन्यास की रचना भी विष्णु प्रभाकर जी ने मुख्य रूप से स्त्री को केंद्र में रखकर की है । इसके पूर्व लिखे गए सारे उपन्यासों के प्रमुख मुद्दों को भी इसमें शामिल किया गया है । इस उपन्यास में स्त्री से सम्बन्धित शायद ही कोई मुद्दा हो जिसका प्रभाकर जी ने उल्लेख नहीं किया हो । इस उपन्यास की प्रधान नायिका सुमति है । वह एक मध्यवर्गीय परिवार की स्त्री है । उसका जीवन ठीक वैसे ही चल रहा था जैसे अन्य मध्यवर्गीय परिवारों का चलता है । एक दिन सुमति और उसकी ननद और उसके पति रात में फ़िल्म देखने जाते हैं । जब फ़िल्म देखकर निकलते हैं तो देखते हैं कि उनके स्कूटर का एक पार्ट खुला हुआ है । अजीत उसे बनाने का प्रयास करता है, उसमें सफल नहीं हो पाता तब तक सारे कर्मचारी सब बंद करके चले जाते हैं । इसके बाद वहाँ दो युवक मदद के बहाने आते हैं और

¹ संकल्प, विष्णु प्रभाकर, पृ. 242

स्कूटर बना लेने के बाद अजीत कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहता है कि “आप न आते तो जाने क्या हुआ होता ! कैसे धन्यवाद दूँ। . . .लेकिन क्या दूँ आपको ?’

अजीत ने पैसा निकाला तभी सहसा एक और परिदृश्य बदला ।”¹ युवकों ने अजीत के गरदन पर चाकू रख दिया और विभा को ले जाने को कहा । समय की नजाकत को भापते हुए सुमति उनके साथ जाने को तैयार हो गयी ।

बलात्कार के बाद सुमति की पूरी दुनिया ही बदल जाती है । अब उसको किसी का प्यार सहानुभूति लगता है । उसके इस व्यवहार से परेशान होकर पति कहता है कि “आखिर तुम चाहती क्या हो? बार-बार उस प्रश्न को उछालने का अर्थ क्या यह नहीं है कि तुमने बहुत बड़ा अहसान किया है हम पर और हम तुम्हें त्रास दे रहे हैं ? तुमने शहादत का जाम पिया है और हम तुम्हें सलीब पर चढ़ा रहे हैं ?”² धीरे-धीरे सुमति की स्थिति में सुधार होता है ।

सुमति ऐसी कई स्त्रियाँ से मिलती जिनके साथ ऐसा कृत्य हुआ है । उसमें से ज्यादातर स्त्रियाँ न्याय के लिए पुलिस के पास इसलिए नहीं गईं कि इसमें उनकी और उनके परिवार की बदनामी का डर था । इस मेल-मिलाप के दौरान सुमति को एक ऐसी भी स्त्री मिली जिसने बलात्कार की

¹ अर्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 34

² वही, पृ. 38

अलग ही व्याख्या कर डाली | उसने कहा कि “मेरे साथ कई बार बलात्कार हुआ है | इसमें बुरा क्या है, मज़ा ही आता है | . . लेकिन नाम बताने का साहस उसमें भी नहीं था.”¹ प्रभाकर ने उच्च एवं मध्यवर्ग की स्त्रियों की दशा से परिचित तो कराया है ही साथ में निम्न वर्ग की स्त्री को भी दिखाया है | राजकली जो जाति और अर्थ-स्थिति दोनों तरह से निम्न स्तर की लड़की है, उसके साथ पुलिस वाले बलात्कार करते हैं फिर भी वह डरती नहीं | उसके अन्दर कोई हीन भावना नहीं है | वह इस सम्बन्ध में कहती है कि “मैं किसी से डरती नहीं | क्यों डरूँ, मैंने कोई बुरा काम नहीं किया | मेरे साथ बुरा काम हुआ है | मैं वही हूँ जो पहले थी, वे मानते रहें मुझे पापिन | मैं तो कहती हूँ, पापी वे हैं जो मुझे पापिन कहते हैं |”² जैसा साहस राजकली ने दिखाया वैसा अगर अन्य स्त्रियों ने भी दिखाया होता तो ऐसे अमानवीय कृत्यों पर कब का पूर्ण विराम लग चुका होता | हमारा सामाजिक लोक-लाज का भय ही उन मानसिक रोगियों को ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है |

विष्णु प्रभाकर जी ने बलात्कार के साथ-साथ ऐसी स्त्रियों की भी (कामकाजी स्त्रियों की भी) बात उठायी है जो पारिवारिक जिम्मेदारियाँ निभाने में इतना मशगूल हो जाती हैं कि अपने विषय में कुछ सोच नहीं पातीं | इस सन्दर्भ में शाहिदा को देखा जाता सकता, जो अपने छोटे भाई बहनों की

¹ अर्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 12

² वही, पृ. 57

शादी करा देती है | जब अपने विषय में सोचती है तो उसकी माँ के सामने सबसे बड़ा प्रश्न होता है कि मेरा क्या होगा | आज के समय में जिस मुस्लिम स्त्री को लेकर विमर्श की बात हो रही है प्रभाकर जी ने अपने लगभग सभी उपन्यासों में उनकी समस्याओं की ओर संकेत कर दिया है |

3.2 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों की शिल्पयोजना

किसी भी रचना का उसके शिल्प से गहरा सम्बन्ध होता है | रचना की सफलता कथ्य पर ही नहीं अपितु शिल्प के उचित समावेश पर भी निर्भर करती है | रचना प्रक्रिया समय के साथ-साथ बदलती रहती है | “रचना पद्धति का अपना कोई निश्चित, रूढ़ या परंपरागत रूप नहीं होता यह तो एक ऐसी गतिशील प्रक्रिया है, जो युग और समय की माँग तथा लेखकीय रुचि के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है | साहित्य की आत्मा भले ही एक और निरंतर रहे, उसका रूप समयानुसार बदलता रहता है |”¹ साहित्य में वस्तु और रूप को अलग करके नहीं देखा जा सकता है | वस्तु स्थायी हो सकती है परन्तु रूप अर्थात् शिल्प स्थायी नहीं हो सकता | प्रत्येक रचनाकार अपनी प्रतिभा और ज्ञान के आधार पर एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्त कर सकता है | उदाहरण स्वरूप राम कथा को लिया जा सकता है | राम कथा को लेकर अनेक रचनाएँ हुई हैं परन्तु उनके शिल्प अर्थात् रूप में भिन्नताएँ देखी जा सकती हैं | “किसी वस्तु के निर्माण की

¹ हिन्दी उपन्यास-शिल्पगत विकास यात्रा, देवेश ठाकुर, पृ. 234-235

जो विधियाँ या प्रक्रियाएँ होती हैं, उनके समुच्चय को ही शिल्प विधि के नाम से पुकारा जा सकता है।”¹ जब रचनाकार किसी वस्तु को एक रूप प्रदान करता है तो उसके आकार-प्रकार में परिवर्तन आ जाता है। हो सकता है कि इतना परिवर्तित हो जाए कि उसका वास्तविक रूप पहचाना न जा सके। “वस्तु किसी न किसी रूप में ही अभिव्यक्त होती है और किसी न किसी आकार में ही स्थित होती है और अंततः किसी न किसी वस्तु का रूप होता है।”² उपन्यास विधा आधुनिक चेतना की देन है। बदलती चेतना की वजह से वस्तु और रूप में काफी भिन्नता आ गयी गई है। उपन्यास को किसी एक सार्थक परिभाषा में बाँध पाना मुश्किल है। फिर भी विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उपन्यास को परिभाषित करते हुए लिखा है कि “उपन्यास आधुनिक युग की देन है नए गद्या के प्रचार के साथ-साथ उपन्यास का प्रचार हुआ है। आधुनिक उपन्यास केवल कथा-मात्र नहीं हैं, और पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं की भांति कथा-सूत्र का बहाना लेकर उपमाओं, रूपकों, दीपकों और श्लेषों की छटा और सरस पदों में गुंफित पदावली की छटा दिखाने का कौशल भी नहीं है।”³ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह परिभाषा उपन्यास के मात्र बाहरी आवरण की बात कराती है, उसके आंतरिक सौन्दर्य का बोध नहीं कराती। आचार्य हजारी

¹ बृहद हिन्दी कोश, के. जी. श्रीवास्तव, पृ. 1239

² मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, डॉ. शिवकुमार मिश्र पृ. 141

³ हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ. 218

प्रसाद द्विवेदी जी जिस साहित्य की बात कर रहे हैं, वह लोकप्रिय उपन्यास हिंदी साहित्य में पूरी तरह स्वीकार्य नहीं है। लोकप्रिय साहित्य की रचना पाठक के मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर लिखा जाता है। शिष्ट साहित्य इस बात की मान्यता नहीं देता। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हिंदी साहित्य में प्रारंभिक उपन्यास लेखन के दौर में लोकप्रिय उपन्यास सबसे ज्यादा लिखे गए और उसी सूत्र को लेकर शिष्ट उपन्यास आगे बढ़ा। जे. डब्ल्यू-बीच का इस सम्बन्ध में कहना है कि **“Soul should be defined by the action of the story and action should be determined by the soul of character.”**¹ अर्थात् पात्र के अंतर्मन का ज्ञान कहानी में वर्णित कार्यों द्वारा प्राप्त हो और कार्यों का निर्माण पात्र के अंतर्जगत में हो। उपन्यास हमारे साहित्य की सबसे अधिक जीवंत और जागरूक धारा है जो मानव जीवन के अंतर्गत रूप को समूर्त उपस्थित कर देने की क्षमता रखता है।”

त्रिभुवन सिंह के अनुसार “साहित्य के क्षेत्र में उपन्यास ही एक ऐसा उपकरण है, जिसके द्वारा सामूहिक मानव जीवन अपनी समस्त भावनाओं एवं चिंताओं के साथ सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हो सकता है। मानव जीवन के विभिन्न चित्रों को चित्रित करने का जितना अधिक अवकाश उपन्यासों में मिलता है उतना अन्य साहित्यिक उपकरणों में नहीं।”² इस सम्बन्ध में विदेशी विद्वान प्रिस्टले ने कहा है कि “उपन्यास गद्य कथा है जिसमें मुख्यतः काल्पनिक पात्र एवं घटनाएँ रहती हैं। उपन्यास को जीवन का एक

¹ The twentieth Century Novels by J. W. Beach, Page 120

² हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, त्रिभुवन सिंह, पृ. १

बड़ा दर्पण कहा जा सकता है | इसमें साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक विस्तारवादी दृष्टि रहती है | उपन्यास को हम अनेक रूपों में वर्णित कर सकते हैं | उसे सादा और सरल वर्णन, सामाजिकता का चित्रण, चरित्र प्रदर्शन तथा जीवन-दर्शन न्याय आदि कह सकते हैं और यदि सारी विशेषताओं को छोड़कर उसे उपन्यासकार का व्यक्तित्व कहे तो अनुचित न होगा |”¹ “मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जिस किसी एकाध पात्र को चुन लेता है उसके परिवेश का और उसके अंतर्मन का कोना-कोना छान मारता है | पात्र से कभी-कभी वह और उसकी जीवनी इतने संलग्न हो जाते हैं कि कभी-कभी अंतर करना मुश्किल हो जाता है | आलोचक और पाठक तब लेखक के व्यक्तिगत जीवन को औपन्यासिक पात्र के जीवन के साथ मिलाकर उसकी कड़ी आलोचना करते हैं |”²

कुछ विद्वानों ने उपन्यास को मात्र मनोविनोद का माध्यम माना है | इनकी इस स्थापना को आज के उत्तर आधुनिकता के दौर में स्वीकार्य नहीं किया जा सकता है | हिंदी उपन्यास लेखन के प्रारम्भ से अब तक की विकास यात्रा को देखें तो इसके कथानक, शैली एवं भाषा में पर्याप्त अंतर दिखायी देता है | हिन्दी साहित्य में प्रारंभिक उपन्यासों की रचना स्त्रियों को पढ़ाने के लिए पुस्तक रूप में की गयी थी | इन उपन्यासों के लिए पुस्तक शब्द का प्रयोग इस लिए किया गया कि उस समय उपन्यास को पथ-भ्रष्ट करने

¹ The English novel, J. B. Priestley Page .1-2

² उपन्यास का मनोविश्लेषण, डॉ. धनराज मानधाने, पृ. 369

वाला साहित्य माना जाता था | जिस युग में उपन्यास पुरुष को पढ़ने की मनाही थी उस युग में कौन अपने घर की स्त्रियों को उपन्यास पढ़ने देता |

हिंदी में सर्वप्रथम मल्लिका देवी द्वारा लिखित उपन्यास 'मालती' के लिए ('उपन्यास' के अर्थ में) 'नावेल' शब्द का प्रयोग किया गया था | 'मालती' उपन्यास का सर्वप्रथम प्रकाशन १८७४ में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' में हुआ था | हिंदी के रचनाकारों ने 'उपन्यास' शब्द को बंगला साहित्य से, बिना किसी विवाद के, स्वीकार कर लिया | प्रारंभिक दौर में लिखे गए अधिकांश उपन्यास मनोरंजन प्रधान थे | इस संदर्भ में देवकी नन्दन खत्री, गोपाल राम गहमरी, किशोरीलाल गोस्वामी आदि के उपन्यासों को देखा जा सकता है | देवकी नन्दन खत्री के उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' को पढ़ने के लिए हजारों लोगों ने हिन्दी सीखी | हिन्दी उपन्यास के प्रारंभिक दौर में कई रचनाकारों ने सामाजिक उपन्यासों की रचना की जिनमें- पंडित गौरीदत्त (देवरानी जेठानी की कहानी), मुंशी ईश्वरी प्रसाद/मुंशी कल्याण राय(वामा शिक्षक), श्रद्धाराम फिलौरी (भाग्यवती), राधाकृष्ण दास (निः सहाय हिन्दू) आदि प्रमुख हैं | इन सामाजिक उपन्यासों की रचना तत्कालीन सामाजिक मुद्दों को ध्यान में रखकर की गयी |

उपन्यास लेखन के प्रारंभिक दौर में ऐतिहासिक, तिलस्मी, ऐयारी उपन्यासों का ही बोल बाला था | बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में प्रेमचंद के आने के बाद हिन्दी उपन्यासों की दशा और दिशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया | प्रेमचंद ने उपन्यास को अति कल्पना से मुक्त कर मनुष्य

के यथार्थ जीवन से जोड़ दिया | उनका लेखन आदर्शवाद से शुरू होकर अंत में केवल यथार्थवादी हो गया | उपन्यास के रूप में आए परिवर्तन ने अनेक रचनाकारों को लिखने की ओर प्रेरित किया | बीसवीं सदी के तीसरे दसक में हिन्दी उपन्यास सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, जासूसी, तिलस्मी-ऐयारी, मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणवादी, यथार्थवादी, अति यथार्थवादी, प्रकृतिवादी, आँचलिक आदि वर्गों में विभक्त हो गया | प्रेमचंद ने इस सम्बन्ध में कहा है कि 'अगर लेखक अपनी आँखें खुली रखे, तो उसे हवा से भी कहानियाँ मिल सकती हैं | रेलगाड़ी में, नौकाओं पर, समाचार पत्रों में, मनुष्यों के बर्ताव में और हजारों जगहों से सुन्दर कहानियाँ बनायी जा सकती हैं |' आगे कहा कि 'उपन्यासों के लिए पुस्तकों से मसाला न लेकर जीवन से ही लेना चाहिए |' इन बातों को विष्णु प्रभाकर के रचनाकर्म पर लागू करके देखा जा सकता है | इन्होंने अपनी रचनाओं में अतिशय कल्पना की जगह जीवन से जुड़ी तमाम घटनों को आधार बनाया है | विष्णु प्रभाकर के उपन्यास 'निशिकान्त' में उनके सम्पूर्ण जीवन की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है | विष्णु प्रभाकर के लगभग सभी उपन्यास उनके निजी अनुभवों पर आधारित हैं | इनकी शोध परक दृष्टि ने इनके पूरे जीवन दर्शन को एक नई दिशा दी जिसका आजकल अधिकांश रचनाकारों में अभाव देखा जाता है | विष्णु प्रभाकर को हिंदी साहित्य में ज्यदातर ख्याति जीवनी लेखक के रूप में मिली | किसी जीवन दर्शन को कथा का रूप दे देना बड़े ही धैर्य और साहस का काम है | 'संस्कार' उपन्यास पत्रात्मक शैली में लिखा गया

है। इस उपन्यास की रचना महापंडित राहुल सांकृत्यायन की प्रथम पत्नी के जीवन को आधार बनाकर की गयी है। इन्होंने इसकी भूमिका में लिखा है कि “इसकी प्रेरणा मुझे महापंडित राहुल सांकृत्यायन के बाल विवाह से मिली थी। अपनी पत्नी को वह कभी स्वीकार नहीं सके और एक दिन धुमक्कड़ी के शौक में घर छोड़कर चले गए। संघर्षों से जूझते हुए वह तो, कहीं से कहीं पहुँच गए। उनका नाम विश्व में गूँजने लगा। परन्तु हिन्दू संस्कारों से ग्रसित उनकी बालिका-बधू जीवन भर उनके नाम की माला जपती रही और माँग में सिन्दूर भरे ‘करवा चौथ’ का व्रत करती रही। अंतिम काल में एक बार राहुल जी उनसे मिलने गए थे और उन्हें देखकर उनके नेत्र भीग आए थे। तब उनके मुँह से ये शब्द निकले थे, ‘मेरे कारण इस नारी का जीवन नष्ट हो गया।’¹ इस उपन्यास को प्रभाकर जी ने ऐसा रूप दिया है कि पाठक का मन यह जानने के लिए लालायित रहता है कि इसके बाद क्या हुआ ? रमा कौन सा रास्ता चुनेगी ? प्रभाकर जी ने पूरे उपन्यास में पाठकों की तारतम्यता बनाये रखी है, यह नहीं कि कथा की रोचकता बढ़ाने के लिए वास्तविक घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया हो।

विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों का यथार्थ से गहरा सम्बन्ध है। इन्होंने पात्रों के गुण-दोषों को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। किसी पात्र के चरित्र को निरर्थक और अनायास ही उठाने का प्रयास नहीं किया है। “चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए यह जरूरी नहीं कि वह निर्दोष हो,

¹ संकल्प, विष्णु प्रभाकर, भूमिका, पृ. 5-6

महान से महान पुरुष में भी कुछ न कुछ कमजोरियाँ होती हैं | चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन कराने से कोई हानि नहीं होती | बल्कि कमजोरियाँ उस चरित्र को मनुष्य बना देती हैं | निर्दोष चरित्र तो देवता हो जाएगा और हम उसे समझ ही न सकेंगे | ऐसे चरित्र का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता | हमारे प्राचीन साहित्य पर आदर्शों की छाप लगी हुई है | वह खेल मनोरंजन के लिए न था | उसका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन के साथ आत्मपरिष्कार भी था | साहित्य का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है | वह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है | साहित्य का पद इससे कहीं ऊँचा है |”² साहित्यकार अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पात्रों में व्याप्त सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों को रखकर यथार्थ से परिचित कराने का प्रयास करता है |

विष्णु प्रभाकर जी के लगभग सभी उपन्यास घटना प्रधान हैं | इनके उपन्यासों में घटना-दुहराव भी कई बार दिखाई देता है | जैसे- ‘अर्धनारीश्वर’ की सुमति और ‘कोई तो’ की कुंतल के साथ हुई बलात्कार की घटना एकदम समान है | दोनों उपन्यासों में पति-पत्नी और बहन स्कूटर से रात को फ़िल्म देखने जाते हैं | जब दोनों फ़िल्म देखकर आते हैं तो देखते हैं कि उनका स्कूटर खराब हो गया है | वे उसे बनाने का प्रयास करते हैं | जब सारे लोग चले जाते हैं तो कुछ मनचले आते हैं और एक स्त्री की माँग करते हैं | सुमति और कुंतल अपनी-अपनी ननदों को बचाने के लिए अपने आप को

² कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ. 78-79

उन मनचलों के हवाले कर देती हैं | दोनों परिवार के लोग लोक लाज के डर से न्याय के लिए पुलिस के पास नहीं जाते | इन दोनों उपन्यासों की घटनाओं में बस इतना अंतर है कि सुमति का पति बिना किसी हीन भावना के उसे स्वीकार कर लेता है और उसके मनोबल को ऊँचा उठाता है वहीं कुंतल का पति उससे भागने लगता है | सुमति की ननद उससे प्रेम करती है तो कुंतल की घृणा |

विष्णु प्रभाकर की रचनाओं की सबसे बड़ी कमी पात्रों के नामकरण की है | कई उपन्यासों में एक ही नाम के कई पात्र हैं जैसे- सुमति | अगर पाठक सुमति के नाम की चर्चा करता है तो सामने वाले को बार-बार यह समझाना होगा कि किस उपन्यास की सुमति की बात हो रही है | 'संकल्प' और 'अर्धनारीश्वर' दोनों की प्रधान नायिकाओं का नाम 'सुमति' है | दोनों का लेखन और समाजसुधार की ओर विशेष झुकाव है | दोनों के ससुर रचनाकार हैं, साथ में इस क्षेत्र में विशेष साहित्यिक पुरस्कार भी प्राप्त कर चुके हैं | इसके अलावा 'कोई तो' की कुंतल के ससुर भी लेखक ही हैं | 'अर्धनारीश्वर' की सुमति और 'कोई तो' की कुंतल तथा 'संकल्प' की सुमति को देखने से ऐसा लगता है मानो सारी अप्रिय घटनाएँ बड़े साहित्यकारों के साथ ही होती हैं |

नामकरण का दोष पाठक और आलोचक दोनों में भ्रम पैदा करता है | प्रभाकर जी की रचनाओं में दुहराव इतना अधिक है कि सामान्य पाठक को पढ़ने के लिए बहुत ज्यादा धैर्य की आवश्यकता होगी | इसके अलावा प्रभाकर

जी के उपन्यास 'कोई तो' की नायिका वर्तिका की कहानी का जिक्र 'अर्धनारीश्वर' में भी मिलता है। 'कोई तो' की वर्तिका के विषय में 'अर्धनारीश्वर' की सुमति बताती है कि "वर्तिका दीदी का परिचय दे दूँ। अजित की किसी दूर-दराज के रिश्ते की बुआ की बेटी हैं। किसी कल्पित कलंक के कारण असहाय यातना सहनी पड़ी थी, मध्यवित्त परिवार की हिन्दू कन्या को समाज से भी, परिवार से भी। पर इस प्रक्रिया में वह टूटी नहीं बल्कि और भी साहस जाग आया, उसके भीतर। उसी ने विद्रोहिणी बना दिया उन्हें। पढ़-लिखकर प्राध्यापिका बनी, सामाजिक कार्यों में भाग लिया और अंततः पाप की राह-जन्मे अज्ञात कुल-शील पत्रकार के साथ रहने लगी, बिना सप्तपदी या बिना पंजीकरण के. .।"³ इसी तरह 'तट के बंधन' के नीलम के कवि पति और 'संकल्प' की मोनिका के पति का चरित्र एक सा है। प्रभाकर जी चाहते तो इन पात्रों और घटनाओं को दूसरे तरीके से प्रस्तुत कर सकते थे।

प्रभाकर जी के उपन्यासों के केंद्र में स्त्री ही रही है। इन्होंने स्त्री से सम्बन्धित अनेक मुद्दों को बहुत अच्छे ढंग से उठाया है और स्त्री के साथ हो रहे शोषण का विरोध किया है। इन मुद्दों में सबसे ज्यादा प्रकाश बलात्कार की समस्या पर डाला गया है। 'अर्धनारीश्वर' में कई स्त्रियों को इससे पीड़ित दिखाया गया है।

³ अर्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 27

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि इनके उपन्यासों की घटनाएँ एक-दूसरे से मिलती हैं। कुछ घटनाओं का कथा से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि वे कथा प्रवाह में रोचकता पैदा करती हैं। 'अर्धनारीश्वर' में प्रभाकर जी ने स्त्री से सम्बन्धित समस्त मुद्दों को उठाया है। अगर स्त्री समस्या को लेकर कोई और उपन्यास नहीं भी लिखते तो भी इनकी कोई सानी नहीं होती। इस लिहाज से 'अर्धनारीश्वर' को 'स्त्री संघर्ष का महागाथात्मक' उपन्यास कहे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

प्रभाकर जी के उपन्यासों को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि मानो पूरा बुद्धिजीवी वर्ग एक जगह इकट्ठा हो गया है। इनके उपन्यासों में लेखक-पात्रों की भरमार है। 'संस्कार' की नायिका का पति प्रतिष्ठित लेखक है। 'संकल्प', 'अर्धनारीश्वर', 'कोई तो', 'तट के बंधन' की नायिकाएँ लेखन में विशेष रुचि रखती हैं। इनका कोई ऐसा उपन्यास नहीं है जिसमें कवि, कथाकार, सम्पादक आदि के चरित्र न हों।

इनके उपन्यासों में मध्यवर्ग का उल्लेख अधिक हुआ है, परन्तु निम्न वर्ग विशेष रूप से मध्यवर्गीय विश्लेषण में दब सा गया है। 'तट के बंधन' में निम्न वर्ग की समस्याओं को उठाया गया है और 'संस्कार' में संकेत मात्र ही किया गया है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इनके उपन्यासों में जाति एवं सांप्रदायिक समस्याओं को नहीं उठाया गया है। इनके सारे पात्र उच्चवर्गीय चरित्र को बखूबी उजागर करते हैं। रचना की सफलता पात्रों के चरित्र पर भी निर्भर करती है; रचनाकार का दृष्टिकोण

समाज के प्रति कैसा है या कैसी दिशा देना चाहता है, इस बात का पता पात्रों के माध्यम से लगाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रत्येक रचनाकार अच्छे बुरे अनुभवों का वाहक होता है। “लेखक अपने पाठकों के सामने अपने कल्पना व्यापार का चमत्कार प्रदर्शित करते हुए जीवन के विविध आयामों को प्रस्तुत कर देता है जिसका सर्वोत्तम पक्ष पात्रों के चारित्रिक स्वरूपों से प्राप्त होता है। पात्रों का निर्माण नहीं होता वरन उनकी खोज होती है।”⁴ प्रभाकर जी के उपन्यासों में रचनाकारों की अधिकता का होना उनकी स्वानुभूति की देन है। उनकी आत्मकथाओं को पढ़ने से पता चलता है कि उनके निजी जीवन में लेखक-साथियों की विशेष महत्ता थी। लेखकों के प्रति विशेष लगाव होना कथानक में बाधा उत्पन्न नहीं करता पर बार-बार उल्लेख करना खटकता है।

3.3 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों की भाषाशैली

प्रत्येक रचनाकार की अपनी शैली होती है। विषय-वस्तु को प्रस्तुत करने के लिए रचनाकार जिन विधियों या प्रणालियों का चयन करता है वही शैली है। वस्तु के रूप का प्रस्तुतीकरण शैली के माध्यम से ही होता है। रचनाकार विषय-वस्तु के अनुसार शैली का चयन करता है और अपनी बात पाठक तक पहुँचाता है। “शैली व्यक्ति-सापेक्ष होती है। प्रत्येक लेखक अपनी शैली का निर्माण स्वयं करता है। शैली ही ऐसा तत्व है, जिससे लेखक के व्यक्तित्व

⁴ हिन्दी उपन्यास कला, राम लखन शुक्ल, पृ. 23

की झलक मिलाती है। विषय-वस्तु आदि की मौलिकता तो महत्वपूर्ण होती है, किन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात है शैली की मौलिकता। वस्तुतः रचना की मौलिकता का बहुत कुछ शैली पर निर्भर करता है। . . . अभिव्यक्ति ही शैली का अर्थ और इति है। वस्तुतः लेखक अपने जिस विषय की प्रस्तुति करना चाहता है, उसकी प्रभावमयी अभिव्यंजना के निर्मित वह जितने प्रकार की प्रणालियों का उपयोग करता है, वे सब शैली के अंतर्गत आती हैं। जो लेखक जितनी कुशलता और सुन्दरता से यह काम संपन्न कर पाता है, वह उतना ही सफल शैलीकार माना जाता है।”⁵

उपन्यासकार को लिखते समय नितांत आवश्यक है कि विषय-वस्तु, स्थिति और औचित्य का ध्यान रखकर भाषा प्रयोग करे। उपन्यास में भाषा का चार रूपों में प्रयोग किया जाता है-स्थिर, गतिशील, अलंकृत और काव्यात्मक। इसके अलावा भाषा के प्रयोग में शब्द-प्रयोग, वाक्य विन्यास, प्रौढ़ता, प्रवाह, प्रवाहमयता आदि का ध्यान रखना अति आवश्यक है।

विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता इनकी पत्रात्मक शैली है। इस प्रकार की शैली का प्रयोग आत्मनेपद(‘मैं’ शैली) में किया जाता है। इसके माध्यम से पात्र के चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है। पात्र जिन बातों को सामने नहीं कह पाते हैं इससे सरलता से अभिव्यक्त कर देते हैं। “इस प्रकार की शैली में सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि औपन्यासिक

⁵ उपन्यास कला : एक मूल्यांकन, डॉ. रामलखन शुक्ल, पृ. 47-48

घटना सत्य के अधिक निकट प्रतीत होती है | पाठक ऐसा अनुभव कर सकते हैं कि इस प्रकार के पात्र उन व्यक्तियों के द्वारा ही लिखे गए होंगे, जिनके नाम से वे दर्शाए गए हैं और उनके (पाठक) साथ विश्वासघात के कारण पहुँच गए होंगे | इस प्रकार का सत्याभास जो प्रतीत होता है, उसी की प्राप्ति उपन्यासकार का उद्देश्य होता है |”⁶ कुछ विद्वानों का मानना है कि इस प्रकार के उपन्यास लेखन में सफलता संदिग्ध रहती है और लेखक पात्रों के साथ न्याय नहीं कर पाता |

विष्णु प्रभाकर के सभी उपन्यासों में पात्र एक दूसरे को पत्र लिखते नज़र आते हैं | ‘संस्कार’ पूरी तरह पत्रात्मक शैली में ही लिखा गया सफल उपन्यास है | इसको पढ़ते समय कहीं ऐसा नहीं लगता कि रचनाकार ने अपनी ओर से हस्तक्षेप करने की तनिक भी कोशिश की है | इसके अलावा सबसे ज्यादा पत्र व्यवहार ‘अर्द्धनारीश्वर’ में हुआ है | उदाहरण स्वरूप कुछ पत्रों को देखा जा सकता है –

प्रिय राकेश,

मेरे मन्त्रिमंडल में आपने उप मंत्री के रूप में जो सहयोग दिया उसके लिए आभारी हूँ लेकिन इधर लड़कियों के प्रति तुम्हारी दुर्बलता की बड़ी शिकायतें मेरे पास आ रही हैं , विशेषकर श्री अजीत केडिया की बेटी रति को लेकर | मेरे पास काफ़ी प्रमाण है | मैं नहीं चाहता, इस कारण मेरी सरकार

⁶ उपन्यास कला : एक मूल्यांकन, डॉ. रामलखन शुक्ल, पृ. 54

बदनाम हो | इसलिए मुझे खेद है मैं मन्त्रिमंडल के पुनर्गठन के अवसर पर इस बार आपको कोई पद नहीं दे सकूँगा |

आशा है आप स्थिति को समझेंगे और देश हित में अपना मार्ग बदल देंगे |

शुभकामनाओं सहित,

आपका शुभचिन्तक

ह० . . .

प्रधानमंत्री

विष्णु प्रभाकर चाहते तो पत्रों और पात्रों का संकेत मात्र भी कर देते तो काम चल जाता | ऐसा लगता है कि वे चाहते थे कि पाठक समुदाय पत्र और पात्र के सम्बन्ध को समझे और उसका उचित मूल्यांकन कर सके | इनके पत्र आवश्यकतानुसार कहीं छोटे तो कहीं-कहीं कई पृष्ठों के भी हैं | ये पत्र पाठक के उत्साह को कहीं भी कम करते नहीं दिखायी देते हैं | 'संस्कार' पत्रात्मक शैली का अप्रतिम उदाहरण है | पात्रों द्वारा लिखा गया पत्र कहीं भी कथा में बाधक सिद्ध नहीं होता |

कथानक उपन्यास सृजन में महत्वपूर्ण है इसके सहारे रचनाकार पाठक के सामने अपनी बात रखने में सफल होता है | समय और परिस्थिति दोनों कथानक को प्रभावित करते रहते हैं | हमें कथानक के माध्यम से समाज के विभिन्न आयामों का परिचय मिलता है एवं रचनाकार अपने उद्देश्यों को निर्धारित करता है और इन्हीं उद्देश्यों को पाने के लिए विभिन्न

शैलियों का सहारा लेता है | “कथानक के प्रस्तुतीकरण की विभिन्न शैलियाँ हैं, जिन्हें उपन्यासकार अपनी आवश्यकता के अनुसार एवं कथानक के अनुरूप अपनाता है ,जिससे वह कथानक में अधिक से अधिक अपील और प्रभाव उत्पन्न कर सके | वस्तुतः कुशल उपन्यासकार ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करता है, जिनमें पाठक केवल पाठक ही नहीं रह जाता, वह स्वयं को उपन्यास का पात्र समझ लेता है |”⁷

हिन्दी उपन्यास के पूरे विकास-क्रम को देखने से इसके वस्तु और रूप में पर्याप्त अंतर दिखायी देता है | प्रारंभिक दौर में उपन्यास-लेखन तीन रूपों में दिखायी देता है— पहला भारतीय ढंग के उपन्यास, जिसमें- ‘देवरानी जेठानी की कहानी’, ‘वामा शिक्षक’, ‘भाग्यवती’ को देखा जा सकता है | दूसरा पाश्चात्य ढंग के उपन्यास जिसमें-‘श्यामास्वप्न’, और ‘परीक्षा गुरु’ आदि प्रमुख हैं | तीसरे पाश्चात्य एवं भारतीय मिश्रित ढंग के उपन्यास हैं इनमें ‘निःसहाय हिन्दू’ और ‘नूतन ब्रह्मचारी’ दोनों को देखा जा सकता है | उपर्युक्त उपन्यास उन्नीसवीं सदी की परिस्थितियों से अवगत कराते हैं |

विष्णु प्रभाकर के उपन्यास विषय-वस्तु की वजह से काफ़ी सराहे गए | इन्होंने अपनी रचनाओं में पात्र, कथानक, शैली एवं भाषा का सटीक चुनाव किया है | “उपन्यास में किसी देश समाज एवं जाति को ही वातावरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और इस देश, समाज या जाति की समस्त विशेषताएं चित्रित की जाती हैं | इससे उपन्यास की स्वाभाविकता और

⁷ उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ, डॉ. सुरेश सिन्हा पृ. 46

सत्यता की अभिवृद्धि होती है । यहाँ तक कि उस देश की प्राकृतिक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन भी औपन्यासिक कौशल के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है । इस प्रकार वातावरण की अनेक विशेषताएँ होती हैं, जिनका पालन करना उपन्यास की स्वाभाविकता की रक्षा के लिए अनिवार्य सा हो जाता है ।”⁸

कथा साहित्य में उपर्युक्त विशेषताओं के साथ-साथ संवाद योजना की महत्वपूर्ण भूमिका है । संवाद-योजना जहाँ रचनाकार के नाटकीय अभिव्यक्ति का माध्यम है वहीं पाठकों की रुचि बनाये रखने में सहायक है। विष्णु प्रभाकर ने उपन्यास के अलावा कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध आदि विधाओं में रचना की है ऐसे में उनके उपन्यास संवादहीन कैसे हो सकते हैं । प्रभाकर जी की संवाद योजना अदभुत है उनको पढ़ने से ऐसा लगता है कि सारे पात्र आँखों के सामने ज्यों का त्यों संवाद कर रहे हैं । उदाहरण स्वरूप इन संवादों को देख सकते हैं –

“‘आओ बाबूजी बैठो’

फिर ऊपर देखकर हँसी, बोली, “आप बार-बार खिलौने बनाते देखने आते हैं । हमारे साथ बैठकर बनाइए तो । दे न विमला, बाबूजी को मिट्टी । देखे, कैसे जोड़ते हैं बबुए !”

प्रभात हँस पड़ा, “बनाना तो मैं भी चाहता हूँ, पर तुममें-मुझमें एक फर्क है । मैं साँचों वाले खिलौने नहीं बनाना चाहता ।”

⁸ उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ, डॉ. सुरेश सिन्हा पृ. 97

“तो ?”

“अपने हाथों से मनचाही मूरत बनाना चाहता हूँ”

यह क्या कह दिया प्रभात ने ? तीनों लड़कियाँ एकटक उसे देखने लगीं।

“भला बिना साँचे के मूरत बनी है” गौरा ने प्रभात के चेहरे पर दृष्टि गड़ाकर कहा “एक था हम लोगन में ऐसा ही पागल, धुन सवार हो गई कि अपने हाथन से बनाऊँगा।”

“बनाए फिर”

“दस दिन में जाकर कहीं एक बना पाया था, मन के माफिक”

“सच ? बना पाया मन के माफिक, सुन्दर ?”

“हाय बाबूजी ! क्या बताऊँ खूबसूरत, बस जान पड़ने की देर थी।”

“मैं भी ऐसे ही बनाऊँगा”

“भूखो मरोगे।”⁹

उपर्युक्त संवाद देखने से तत्कालीन दृश्य उभरकर सामने आ जाता है। इन दृश्यों की नाटकीयता हमें बाँधे रखती है। प्रभाकर जी ने पत्रों के अनुसार भाषा का चयन किया है। उनकी यह सूझ-बूझ पात्रों की जीवंतता को बनाये रखने में मदद करती है। रचनाकार संवादों के माध्यम से अपना मंतव्य स्पष्ट कर देता है। “उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाये, उतना ही उपन्यास सुन्दर होता है

⁹ अर्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 98

| वार्तालाप केवल रस्मी होना चाहिए | प्रत्येक वाक्य जो किसी चरित्र के मुँह से निकले उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालने वाला होना चाहिए | बातचीत का स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुकूल सरल एवं सूक्ष्म होना जरूरी है |”¹⁰

विष्णु प्रभाकर कहीं-कहीं पात्रों के साथ भाषा चयन की दृष्टि से न्याय नहीं कर पाए हैं | ‘कोई तो’ की पार्वती मौसी अनपढ़ होते हुए भी ऐसी शुद्ध हिन्दी बोलती है कि जैसे कोई पढ़ा लिखा विद्वान हो, इसी तरह ‘तट के बंधन’ में जुलेखा के संवादों को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है। इतनी खामियाँ होने के बावजूद संवाद की वजह से कथा के विकास में बाधा नहीं उपजती | “प्रत्येक रचनाकार अपनी कृति में किसी विशिष्ट दृष्टिकोण का सहारा लेकर उसके आधार पर मानव जीवन का मूल्यांकन करते हुए, उसकी समस्याओं का स्पष्टीकरण करता है | अधिकांशतः ऐसा भी होता है कि कथा नायक के माध्यम से रचनाकार अपनी भावनाओं को साकार करता है | एक सफल उपन्यासकार किसी न किसी उद्देश्य का प्रतिपादन करता है और अपने दृष्टिकोण के अनुसार उसकी व्याख्या भी करता है |”¹¹ किसी रचना का संवाद कौशल उसके उद्देश्य को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करता है | अपने उपन्यासों में हास्य-व्यंग्य शैली का प्रयोग प्रसंगानुसार करने से प्रभाकर जी

¹⁰ आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास, डॉ. संतोषिनी, त्रिपाठी पृ. 52

¹¹ साहित्य विवेचन, क्षेमेन्द्र सुमन/योगेन्द्र मालिक, पृ. 100

नहीं चुकाते | इनके उपन्यासों में उनकी नाटकीय प्रतिभा एवं हास्य-व्यंग्य को देखा जा सकता है-

“वत्ति ! तुझे नहीं लगता कि हम बहुत दिन साथ रह लिए, बस अब अलग हो जाओ ?”

“तुम्हें क्या हो जाता है नारायण ?”

“बस यही कि लगता है हम काफ़ी दिन रह लिए साथ अब |

“कहीं ठिकाना ढूँढ लिया है क्या ? किसी अभागिन से आँखें लड़ गई हैं।”

“अभागिन”

“हाँ, उससे भी तुम इसी तरह कहोगे जैसे मुझसे कह रहे हो |”

“पर तुम अभागिन कैसे ? तुमने जो मेरा भाग्य बनाया है ?”

“तुम मानते हो”

“हाँ |”

“तो उसे बिगाड़ना क्यों चाहते हो ?”¹²

इनका यह संवाद पात्रों की जीवंतता का बोध तो कराते ही हैं साथ में पाठकों की रुचि बनाये रखने में मदद करते हैं | इसी तरह की नाटकीयता को अन्य उपन्यासों में भी देखा जा सकता है | इसके अलावा प्रभाकर जी के उपन्यासों में फ्लैश बैक शैली का खूब प्रयोग किया गया है | ‘स्वप्न’ उपन्यास पूरी तरह फ्लैश बैक शैली में लिखा गया सफल उपन्यास है |

¹² अर्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 259

चतुर्थ अध्याय

विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का समाजार्थिक स्वरूप

4.1 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का सामाजिक-आर्थिक आधार

स्त्रियों की अस्मिता का उनके निजी जीवन संघर्षों से गहरा सम्बन्ध है। कोई भी स्त्री अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की पहचान तब तक नहीं बन सकती जब तक पुरुष पर पूरी तरह आश्रित रहेगी। यहाँ एक सवाल उठ सकता है कि क्या पुरुष पर आश्रित वह स्त्री जिसे पुरुष ने समस्त अधिकार दे रखे हों, स्वतंत्र है? वास्तविक स्वतंत्रता अपनी सुख-सुविधाएँ जुटा लेना नहीं है, भौतिक सुख उसे क्षणिक सुख दे सकता है पर आत्मिक और आत्मगौरव का सुख उसके खुद के व्यक्तित्व के अस्तित्व में आने के बाद ही मिल सकता है। अर्द्धनारीश्वर में सुमति इस विषय में कहती है कि “फॉस मेरे अन्दर हो सकती है, पर पुरुष के बल के आकर्षण से मुक्ति पुरुष के आकर्षण से मुक्ति संभव है क्या।”¹³ जहाँ अर्द्धनारीश्वर में सुमति मुक्ति चाहती है वहीं संकल्प में सुमति मुक्ति को अन्ततः बन्धन ही समझती है। वह आधुनिक संस्कारों से ओत-प्रोत है परन्तु उसमें यह क्षमता नहीं कि वह संस्कार जनित बंधनों से मुक्ति पा सके। ‘संकल्प’ की सुमति के सामने उसके पुत्र के सृजन की समस्या उठाकर प्रभाकर जी ने कामकाजी उच्च मध्यवर्गीय महिला के निजी जीवन-संघर्षों को दिखाने का सफल प्रयास किया है। अपने पुत्र का विवाह सम्पन्न करने के बाद अपने को मुक्त महसूस करती है और सुशील दा से कहती है कि— “मेरा दायित्व पूरा हुआ। मैं आज मुक्त हो गई।” मैंने आज अनुभव किया है कि अपना संकल्प पूरा कर लेने के बाद भी मैं सचमुच मुक्ति नहीं चाहती।”¹⁴

13- अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 30

14- संकल्प, विष्णु प्रभाकर, पृ. 242

कामकाजी महिलाओं को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है, जैसे— घर परिवार की देख-रेख, बच्चों का पालन-पोषण, ऑफिस का काम एक साथ इतने दबाव झेल रही स्त्री को यह ज़रूरी नहीं कि पारिवारिक सहयोग के बिना सभी कार्यों का सफलतापूर्वक सम्पादन कर सके। कामकाजी महिलाओं के साथ ऑफिस में होने वाले यौन शोषण से प्रभाकर जी भलि-भाँति परिचित थे। 'संकल्प' की सुमति अपने उच्चाधिकारी से परेशान होकर इस्तीफ़ा दे देती है। जब मोनिका उससे इस सम्बन्ध में पूछती है— “भाभी, क्या हुआ, तुम इस्तीफ़ा क्यों दे आई ?” उसकी ज़रूरत थी। जब तक नारी पुरुष के अहम से टक्कर नहीं लेगी और इस बात पर विश्वास नहीं करेगी कि वह पुरुष से अधिक शक्तिशाली है तब तक उसका स्थान पुरुष के पाद-पद्मों में ही रहेगा।”¹⁵

कामकाजी स्त्रियों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि घर परिवार द्वारा असहयोग, कार्यालय में दिनभर कार्य करने के बावजूद घर का सारा काम करना पड़ता है। कुछ जगह तो ऐसा भी देखा जाता है कि पति-पत्नी दोनों नौकरी पेशा रहते हैं फिर घर आने के बाद घर का सारा काम स्त्री को ही करना पड़ता है। ऐसे पुरुष सामंतवादी मानसिकता से प्रेरित हैं, जिनमें बदलाव के बगैर समाज के उत्तम विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। कुछ पुरुष अपनी स्त्रियों की मदद भी करना चाहते हैं तो भी सामाजिक आलोचना के पात्र बन जाते हैं। सम्बन्धों में यह आपसी समझदारी सुखी रहने की प्रथम आधारशिला है। स्त्री समानता की बात तब तक हो सकती है जब स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर पारिवारिक जिम्मेवारियों को समझे और बराबर सहयोग करें।

नौकरी पेशा स्त्रियों के साथ घर में भेद-भाव पूर्ण व्यवहार किया जाता ही है, तो ऑफिस में सहकर्मी उनको अपने से हीन दृष्टि से देखते हैं। अगर स्त्री केवल अपने काम से मतलब रखती है तो उसे घमण्डी कहा जाता है। वहीं अगर खुले तौर पर सबसे समान व्यवहार करती है तो उसे चरित्रहीन तक की संज्ञा से

अभिहित किया जाता है। 'कोई तो' की वर्तिका ऐसी स्त्री है जिसको अपने स्वच्छन्द व्यवहार की वजह से सामाजिक दंश झेलना पड़ता है। जब वह अपनी बुआ के यहाँ आती है तो उसे एक-एक क्रिया कलाप याद आता है कि उसे इण्टरमीडिएट का फार्म भरने के लिए ग्वालियर जाना है। उसी समय उसके पिता के सहकर्मी शोन जान मुहम्मद का बेटा असद सूरी आया हुआ रहता है। उसकी सुरक्षा को लेकर "बुआ ने बार-बार ताकीद करके असद से कहा, इसका ध्यान रखना, बेटा ! इधर-उधर न भटक जाये। दिल्ली तो जंगल है। भीड़-सी-भीड़ होती है वहाँ ! ना बाबा, तू तो मरद बच्चा है, यह ठहरी औरत जात....।"¹⁶ रास्ते में उसके स्वच्छन्द व्यवहार की वजह से कुछ हिन्दू धर्म के संरक्षक दोनों को अलग कर देते हैं और जब वह पहाड़गंज जाती है तो उसे चरित्रहीन मानकर एक सज्जन पुलिस को बुला लेते हैं। इसके बाद कई लोग सहायता करना चाहते हैं वे लोग उसकी सहायता केवल उसे भोगने की दृष्टि से करते हैं। उसके दूर के मामा बड़ी मशक्कत के बाद छुड़वाते हैं। इस दौरान वर्तिका का मान मंदिर से सामना होता है वहाँ एक नई दुनिया से साक्षात्कार ने उसके अन्दर विद्रोही चेतना पैदा कर देती है। सुविधा अपना नाम बदलकर वर्तिका रख लेती है। वर्तिका अर्थात् खुद जलकर दूसरों को प्रकाश देती है। वर्तिका के पूरे जीवन में यह सच पीछा नहीं छोड़ता, वर्तिका इसे छुपाकर जीना भी नहीं चाहती। उसके इसी व्यवहार के कारण चरित्रहीनता का प्रमाण पत्र समाज द्वारा कई बार मिलता है। वर्तिका जानती है कि यह सच्चाई उसका पीछा नहीं छोड़ेगी पर सच बोलने से भी नहीं कतराती। समाजसेवी, लेखक, प्रोफेसर सब उसे छोड़ देते हैं। अन्त में नारायण के साथ बिना सप्तपदी पढ़े रहने लगती है। प्रभाकर जी के उपन्यासों में कमाऊ लड़की का प्रश्न उसके पारिवारिक दायित्वों और विवाह से सम्बन्धित प्रश्न भी उठाए गए हैं। वह पारिवारिक दायित्वों को निपटाते-निपटाते अपने विषय में कोई निर्णय ही नहीं ले पाती। उसे बार-बार बड़ा होने और अपने कर्तव्यों को पूरा करने का अहसास करवाया जाता है और जब वह दायित्वों से मुक्त होने

16- कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 8-9

लगती है तब उसके विवाह की आयु निकल चुकी होती है। ऐसी कई बातों को प्रभाकर जी ने अपने उपन्यासों में उठाया है कि लड़की लड़के की तरह परिवार सँभाल ले। वर्तिका अपनी बहन की शादी में मदद करती है। 'अर्द्धनारीश्वर' की शाहिदा अपनी तीन बहनों की सारी जिम्मेदारियाँ उठाती है और फिर एक दलित युवक से शादी करना चाहती है, तो उसकी माँ चिन्ता व्यक्त करते हुए कहती है कि "वह जो चाहे करे, पर मेरा क्या होगा ? शाहिदा ने ही बहनों की शादी की। उसकी जी तोड़ मेहनत से ही यह घर बना है।"¹⁷

उपर्युक्त कथन में जो 'मेरा क्या होगा ?' वाली चिन्ता है वह प्रकारान्तर से और भी जिम्मेदारी थोपना ही है। शाहिदा अपनी इन्हीं जिम्मेदारियों के कारण अपनी जिन्दगी नहीं जी पाती। उसकी माँ चाहती तो यह बात अपनी तीन बेटियों के सामने रख सकती थी पर उसे अपनी जिम्मेदारी उठाने का पूर्ण भरोसा शाहिदा से ही है। उसकी माँ को उसके भविष्य से ज्यादा चिन्ता अपनी है। इसी तरह 'कोई तो' की वर्तिका का पिता उसकी जिम्मेदारियों का एहसास कराता है पर उसके विवाह के सम्बन्ध में किये गये फैसले से उसे एतराज है। 'अर्द्धनारीश्वर' में एक स्त्री ऐसी भी है जिसका पिता उसका विवाह इसलिए नहीं करता कि वह नौकरी करती है, उसका खुद का मानना है कि "मेरे पिता ने मेरे साथ अन्याय किया, वे लड़के देखने का ढोंग करते रहे, कोई उम्र में ज्यादा है कोई ठीक नहीं है, किसी का खानदान और स्तर आदि ठीक नहीं है करके टालते रहे। यह सच्चाई मुझे बहुत बाद में पता हुई।"

'निशिकांत' की सुरैया एक कामकाजी मुस्लिम महिला है, जिसने समाज की उपेक्षा को झेला है। उसकी शादी एक ऐसे पुरुष से होती है जिसकी पहली पत्नी जर्मन थी, फिर भी सुरैया उससे शादी इसलिए करना चाहती कि वे धर्म से परे मार्क्सवादी विचारधारा के हैं। सुरैया कहती है कि"वे धर्म परिवर्तन में विश्वास नहीं रखते और वे मार्क्सवादी होते जा रहे हैं। और मुझे इस बात की खुशी है

17- अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ.

कि अब खुलकर देश का काम करूँगी, परदे का झंझट नहीं रहेगा।”¹⁸ आज की उत्तराधुनिकता के दौर में देखा जाये परदा प्रथा का सबसे ज्यादा पालन मुस्लिम समाज में किया जाता है। ऐसा नहीं कि हिन्दू धर्म या अन्य धर्म इससे अछूते हैं। कुछ मुस्लिम समाजों में स्त्री को परदा प्रथा का पालन कठोरता से कराया जाता है। समाज में पारंपरिक विचारधारा में आ रहे परिवर्तन से केवल स्त्री ही नहीं अपितु पुरुष वर्ग भी लाभान्वित हो रहा है।

4.2 नारी पात्रों का वर्गीय चरित्र : उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग

वर्ग—सम्बन्धित अवधारणा मूल रूप से अर्थ पर आधारित है। इसका मूल सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्थाओं से है। “सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, और शक्ति के पदसोपान में फैले वर्गों या स्तरों में समाज का विभाजन सामाजिक संरचना का एक प्रमुख और लगभग सार्वभौमिक लक्षण है, जिसने सदैव सामाजिक सिद्धान्तकारों और दार्शनिकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। मानव इतिहास की अधिकांश अवधि में मनुष्यों के बीच व्याप्त इस असमानता को सामान्यतया एक ऐसे तथ्य के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसे बदला नहीं जा सकता।”¹⁹ भारतीय सामाजिक व्यवस्था में इस असमानता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्राचीन मीमांसकों एवं दार्शनिकों का एक बड़ा वर्ग इस वर्ग व्यवस्था को सही ठहराता है। इसके पीछे मूल कारण समाज को एक व्यवस्थित रूप देना। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था शुरुआती दौर में वर्ग पर आधारित थी परन्तु समय के साथ उसने वर्ग—प्रतिवर्ग के रूप में परिवर्तित होते—होते जाति का रूप धारण कर लिया। इसी जातिगत विभेद ने बाद में समतावादी विचारधारा में वर्ग—विभेद की नई व्याख्या कर समाज को एक साथ जोड़ने का प्रयास किया।

मूलतः देखा जाये तो वर्ग चेतना को ऐतिहासिक भौतिकवादी व्याख्या के साथ जोड़कर देखा जाता है। यह मूलतः सामंती और पूँजीवादी व्यवस्थाओं की

18- निशिकांत, विष्णु प्रभाकर, पृ. 148-49

19 आधुनिक समाज में वर्ग, टी. बी. वोटमोर/अनु.-वंदना मिश्र, पृ. 11

देन है। “सामाजिक वर्ग की असमानताओं को सामान्यतः मानव-असमानता के साथ एक रूप नहीं माना जाना चाहिए। सामाजिक वर्ग की भिन्नताओं से उपजने वाली असमानताओं के अतिरिक्त असमानता के अन्य रूप, विशेषाधिकारों और प्रभुत्व की अन्य किस्में भी हैं। किन्हीं विशेष समाजों में भिन्न प्रजाति, भिन्न भाषा अथवा भिन्न धर्म के कारण उत्पन्न असमानताएँ भी हो सकती हैं। समाजों के बीच ऐसी असमानताएँ भी हो सकती हैं। समाजों के बीच ऐसी असमानताएँ हो सकती हैं, जैसी आज समृद्ध और निर्धन देशों के बीच इतनी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं, जो विजय, आकार में अन्तर और प्राकृतिक संसाधनों, तथा विशिष्ट ऐतिहासिक अवसरों, असफलताओं का परिणाम है।”²⁰

वर्ग-विभेद को लेकर सभी विद्वानों की राय एक नहीं है। आमतौर पर देखा जाये तो वर्ग-विभेद हमें दो रूपों में दिखाई देता है— एक प्रकृतिजन्य और दूसरा सामाजिक। पहले में मनुष्य के रंग, रूप एवं शारीरिक संरचना आदि आते हैं। दूसरे आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि प्रमुख हैं। वर्गगत व्यवस्था एक स्थायी व्यवस्था नहीं है, इसमें समय के साथ परिवर्तन संभव है। रूसो ने इस सम्बन्ध में कहा है कि— “मेरे विचार से मानव जाति में दो तरह की असमानताएँ हैं; एक जिन्हें मैं प्राकृतिक या शारीरिक कहता हूँ क्योंकि ये प्रकृतिजन्य है और आयु स्वास्थ्य, शारीरिक शक्ति तथा मन या आत्मा के गुणों में निहित है और दूसरी, जिन्हें नैतिक अथवा राजनीतिक असमानता कहा जा सकता है क्योंकि वे एक तरह की परिपाटी पर निर्भर होती है और मानव सहमति से स्थापित होती है अथवा कम से कम अधिकृति होती है। यह दूसरी असमानता ऐसे भिन्न विशेषाधिकारों से मिलकर बनती है, जिसका लाभ लेकर कुछ व्यक्ति अन्य लोगों को हानि पहुँचाते हैं, जैसे कि अधिक अमीर होना, अधिक सम्मानित होना, अधिक शक्तिशाली होना या ऐसी स्थिति में ही होना कि वे दूसरों से अपनी आज्ञा का पालन करवा सकें।”²¹

²⁰ आधुनिक समाज में वर्ग, टी. बी. वॉटमोर/अनु.—वंदना मिश्र, पृ. 13

²¹ ए डिजर्टेशन आन दि ओरिजिन एंड फाउंडेशन ऑफ दि इन्ईक्वलिटी आफ मैनकाइंड,

भारतीय संदर्भ में मार्क्सवादी विचारधारा को एकदम से थोपना तर्कसंगत नहीं लगता। मार्क्स ने जिस वर्ग-भेद की बात की भारत की मात्र वही समस्या नहीं है। यहाँ उससे अलग जातिगत है जो दूसरे श्रेणी में आता है। वर्ग और जातिगत विशेषताओं को एक साथ जोड़कर देखना उचित नहीं है। एक अर्थ के आधार पर है और दूसरी धर्म के आधार पर। समाज में सामाजिक वर्गों के अतिरिक्त अन्य समूह भी होते हैं, जो समय-समय पर बहुत महत्व प्राप्त कर लेते हैं, औद्योगिक संघर्ष और राजनीतिक संघर्ष के बीच के जुड़ाव को बिना प्रमाण के ही नहीं मान लिया जा सकता। बल्कि हर मामले की पड़ताल की जानी चाहिए। यह भी पूँजीवादी औद्योगिक समाजों के विकास के साथ स्वयं राजनीतिक संघर्षों के स्वरूप में कुछ महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं, जिनका स्पष्ट पूर्वानुमान मार्क्स नहीं कर सके थे अथवा जिन पर ध्यान नहीं दे पाये थे।²² प्रभाकर जी ने इसी जातिगत समस्या को अर्थ के साथ जोड़कर देखा है। 'अर्द्धनारीश्वर' उपन्यास में आधी आबादी के अस्तित्व, अस्मिता की बात लेखक बड़े ही तीखे ढंग से करता है। इस उपन्यास में सबसे पहला मुद्दा बलात्कार का उठाया गया है। बलात्कार के मुद्दे को प्रभाकर जी ने उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्न वर्ग तीनों से जोड़कर देखने का प्रयास किया है।

सुमति एक स्त्री से इण्टरव्यू लेती है। वह उसे बलात्कार के संबंध में ऐसा उत्तर देती है कि सुमति लिखती है "और वह क्या औरत नहीं थी जिसने कहा था, "मेरे साथ कई बार बलात्कार हुआ है। इसमें बुरा क्या है, मजा ही आता है।"²³ दूसरी वह स्त्री जो इस सम्बन्ध में कहती है— "अब मैं आपके सामने हूँ, लेकिन एक बात कह दूँ साफ-साफ। तभी कुछ बता सकूँगी जब मुझे विश्वास दिला दोगी कि कहीं भी मेरा या मेरे पति का नाम प्रकट नहीं करोगी। नारी हो तुम भी।"²⁴ दोनों स्त्रियों के साथ बलात्कार हुआ। एक ने उसमें संभोग का मजा

एवरीवन, रूसो, पृ. 160

²² आधुनिक समाज में वर्ग, टी. बी. वॉटमोर/अनु.-वंदना मिश्र, पृ. 29

²³ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 12

²⁴ वही, पृ. 13

लिया और हमेशा ऐसे कृत्य होते रहें इसके लिए भी प्रस्तुत रही। दूसरी के साथ हुए बलात्कार ने उसकी आत्मा तक को झकझोर दिया। उसकी पीड़ा मात्र एक दिन की पीड़ा नहीं थी, अपितु वर्षों से इस पीड़ा से मुक्त नहीं हो पाई। दोनों स्त्रियाँ एक ही समाज के एक ही वर्ग की स्त्रियाँ हैं, दोनों में बुनियादी अन्तर उनके संस्कारों का है। एक की संस्कारों से बंधी स्वतंत्रता है और दूसरी अनेक सामाजिक बन्धनों से मुक्त है। संस्कारों और सामाजिक बन्धनों को न छोड़ पाने की विवशता के विषय में कहती है “समाज की नीति—नैतिकता, शास्त्र में पाप—पुण्य की व्याख्या, नर—नारी के सम्बन्ध में सबने मिलकर मेरे अन्तःकरण में यह भावना पैबस्त कर दी थी कि कुछ अघटित घट गया है और जो कुछ घटित हुआ है वह पाप है। ऐसा पाप जिसका प्रतिकार नहीं हो सकता। मुझे अपराधिनी उस दरिन्दे ने नहीं बनाया बल्कि मेरे समाज ने बनाया। भीतर से मैं जिसे स्वीकार नहीं कर सकी थी, वही मुझ पर थोप दिया गया।”²⁵ उपर्युक्त कथन के आधार पर कह सकते हैं कि स्त्री जिस अपराध के लिए दोषी नहीं होती उसे समाज उसके ऊपर थोप देता है। उदाहरणस्वरूप आज के उत्तर आधुनिकता के दौर में स्त्री के कपड़ों को लेकर हो रही राजनीति को देख सकते हैं। अगर यौन शोषण जैसी घटनाएँ होती हैं, तो पहली दृष्टि समाज की स्त्री के कपड़े पर जाती है कि ऐसा कपड़ा पहनेगी तो ऐसा होगा ही। इसकी जगह यह नहीं कहते कि यह पुरुष की मानसिक बीमारी है जो स्त्री के कुछ खुले—अधखुले अंगों को देखकर नियंत्रण खो देता है। किसी मामले में पुरुष जैसे दोषी ही नहीं हैं।

स्त्रियों के साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार की बढ़ोत्तरी का कारण खुद स्त्रियाँ भी हैं। कुछ स्त्रियाँ इन बातों को न्यायपालिका के पास इसलिए नहीं ले जाना चाहतीं कि उनकी बदनामी होगी, उनसे न्यायालय में तरह—तरह के सवाल पूछे जायेंगे, लोग हमारे साथ हुए कृत्य के विषय में जान जायेंगे तो लोगों का मुझे देखने का दृष्टिकोण बदल जायेगा। ऐसी ही शंका को ‘कोई तो’ और ‘अर्द्धनारीश्वर’ उपन्यासों में देखा जा सकता है। ‘अर्द्धनारीश्वर’ में एक उच्च वर्ग

²⁵ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 16

की स्त्री अपनी विवशता के विषय में बताती है कि— “पुलिस ने भारी रिश्वत लेकर उसे छोड़ दिया। मेरे पति से थानेदार ने कहा, कोई प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं है। वह दोषी है, यह प्रमाणित करने के लिए आपकी पत्नी को जिस यातना से गुजरना होगा उसको सह पायेगी वह...?”¹ इसी से मिलती-जुलती घटना सुमति और शाकुन्तल (कोई तो) के साथ भी घटी। वहीं इन स्त्रियों से अलग एक निम्न वर्ग की स्त्री राजकली जो पूरी सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न-चिह्न खड़ा कर देती है, उसका मानना है कि “मैं किसी से नहीं डरती। क्यों डरूँ, मैंने कोई बुरा काम नहीं किया। मेरे साथ बुरा काम हुआ है। मैं वही हूँ जो पहले थी, वे मानते रहें मुझे पापिन। मैं तो कहती हूँ, पापी वे हैं जो मुझे पापिन कहते हैं।”² तथाकथित हैं।² तथाकथित मर्यादा के अतिरिक्त दबाव ने भारतीय स्त्रियों के आत्मविश्वास को कमजोर बना दिया है, जिस वजह से उनको हमेशा अज्ञात भय सताता रहता है और अपनी सुरक्षा के लिए पुरुष का संरक्षण खोजने लगती है। यह नहीं कि राजकली संस्कारों से परे है, उसके साथ हुए अन्याय ने उसे विद्रोही बना दिया है। मीडिया ने उसके साथ हुए कुकृत्य को लोगों के सामने मसाले की तरह पेश किया और स्त्री स्वतंत्रता और समानता की बात करने वाली महिला-मण्डल जैसी संस्थाओं के लिए यह मात्र नाम कमाने के अलावा और कोई मुद्दा नहीं रहा। इसके बाद मीडिया शान्त और महिला-मण्डल जैसी संस्थाएँ गायब। ऐसी महिलाओं के लिए ये संस्थाएँ कैसे काम करती हैं, कैसे न्याय दिलाती हैं, इस बात से प्रभाकर जी बखूबी परिचित थे। ऐसी संस्थाएँ आज भी निम्न वर्ग की महिलाओं के साथ हो रहे अमानवीय कृत्य से अनजान रहना चाहती हैं या उनके लिए मात्र प्रसिद्धि कमाने का विषय है। राजकली का पिता महिला मण्डल के विषय में कहता है— “क्या किया है महिला मण्डल ने? क्या वे हमें इंसान बना सके? क्या राजकली की शादी का बन्दोबस्त किया उन्होंने? कोई नौकरी दिला सके? वे तो उस हवलदार को मुअत्तल तक नहीं करा सके। मूँछों पर ताव देता

¹ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 15

² वही, पृ. 57

वह अब भी गरीबों की इज्जत लूटता घूमता है। बस अपना नाम करने के लिए जुलूस निकाले, नारे लगाये, अखबारों में हमारे फोटो छपवाये और बस...''¹ स्त्री स्वतंत्रता और समानता की बात करने वाली ऐसी संस्थाएँ मात्र नाम की रह गई हैं, उनको किसी स्त्री को न्याय दिलाने की चिन्ता नहीं है, बल्कि उनकी मुख्य चिन्ता प्रसिद्धि पाने की है। जुलूस, नारे, वक्तव्य सब इसी के अंग हैं। बलात्कार से पीड़ित तीनों स्त्रियों को एक ही मानसिक पीड़ा का सामना करना पड़ा परन्तु राजकली का जिस तरह से बाजारीकरण हुआ उस तरह से सुमति या अन्य किसी उच्च वर्गीय स्त्री को साथ नहीं हुआ। यहाँ स्त्री-स्त्री में विभेद स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। एक उच्चवर्गीय उस पीड़ा को मध्यवर्गीय/निम्नवर्गीय स्त्री की तरह महसूस करती है, लेकिन एक स्त्री वर्ग ऐसा भी है, जो बलात्कार को संभोग का सुख ही समझती है।

पूरे उपन्यास में राजकली का विद्रोही स्वर संस्कारों की देन नहीं बल्कि असहनीय उत्पीड़न और न्यायिक उपेक्षा की देन है। हमें यहाँ एक बात स्पष्ट जान लेनी चाहिए कि संस्कारों की निर्मिति मात्र माता, पिता या परिवार से नहीं होती, उसके निर्माण में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ भी जिम्मेदार हैं। यहाँ वर्गगत विचारधारा को राजकली के ऊपर नहीं लादा जा सकता कि वह विद्रोही इसलिए बनी कि वह मजदूर वर्ग से थी, उसके पास खोने को कुछ नहीं था। सुमति और कुन्तल (कोई तो) के पास खोने के लिए भी तो कुछ नहीं था, वहाँ उनकी आवाज इसलिए दब गई, परिवार के सदस्यों ने न्याय पाने का फैसला किया और पारिवारिक न्याय यही था कि अपने को बदनामी से बचाये रखना, उधर अपराधी चाहे खुला क्यों न घूमे। वर्तिका अनिरुद्ध से कहती है— “हम पारम्परिक संस्कारों के दास हैं। इन संस्कारों ने मन की स्वतंत्र सत्ता को नष्ट कर दिया है कोई तो इनकी सत्ता को भी नष्ट करेगा। वह ‘कोई तो’ क्या तुम नहीं हो सकते।”² जब वर्तिका इसी का पालन करने निकलती है तो

¹ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 53

² कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 287-89

उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उससे प्रणय निवेदन करने वाले कई पुरुष उसके साथ घटी घटनाओं, जिसके लिए वह लेश मात्र भी दोषी नहीं थी, उसे छोड़कर चले जाते हैं। “मध्य वर्ग की यौन लिप्सा और आजादी के बाद भारत के महानगरों और शहरों के नव धनकुबेरों की यौन मानसिकता को विष्णु प्रभाकर ने ‘कोई तो’ में उधेड़कर रख दिया था। इसकी नायिका वर्तिका ही नहीं, और कई युवतियाँ पुरुष की अनैतिकता का शिकार बनती हैं। उस कदाचार के खिलाफ कोई तो उठकर खड़ा हो, उसी साहस या दुस्साहस का आवाहन वर्तिका करती है।”¹

‘कोई तो’ में प्रभाकर जी ने निम्न, मध्य और उच्च वर्ग की स्त्रियों के प्रश्न को उठाया है। निम्न वर्ग की द्रौपदी विवाह संस्था और परम्परा के नाम पर एक अयोग्य पुरुष के साथ बाँध दी जाती है। इसका विरोध कर अपने लिए सुयोग्य पति का वरण करती है। वर्तिका पारम्परिक व्यवस्था के विरुद्ध जाकर एक अनाथ के साथ बिना सप्तपदी पढ़े रहने लगती है। उसके इस कार्य से लोगों की भौंहे तन जाती हैं। इस बात का प्रतिरोध करते हुए कहती है “क्यों मैं हाड़मांस की नहीं बनी हूँ क्या? मन नाम की वस्तु क्या बिल्कुल नहीं है मेरे पास? मेरी नियति क्या सहना ही है या वही करना है जो दूसरे चाहते हैं? नहीं, यह अधिकार मैं किसी को नहीं दूँगी।”² मध्यवर्ग हमेशा से अपने ही बनाये जाले में फँसता चला आया है। उसकी सबसे बड़ी समस्या है किसी भी मुद्दे पर स्पष्ट नहीं होना। “जो समाज वर्जनाओं से जितना मुक्त होता है, उसी के अनुसार बनते हैं उसके संस्कार। मध्य वर्ग वर्जनाओं को सबसे अधिक झेलता है, इसीलिए सबसे अधिक वही डरपोक है, जहाँ डर है वहीं पाप है।”³ वर्तिका सदियों से चले आ रहे “मध्यवर्गीय संस्कार की रूढ़ियों को खारिज करते हुए तथाकथित मानवीय मूल्यों को ताक पर रख देने की साहस करती है। हिन्दू समाज ऐसा रसलोलुप्त एवं

¹ समकालीन भारतीय साहित्य, सं. मार्च-अप्रैल 2012, पृ. 11

² कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 314

³ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 61

सत्तापरस्त समाज है, जो उच्चवर्गीय नारी के द्वारा किये गये कुकर्मों को सामने नहीं लाता। उसकी आड़ में अपने पेट को सुअर की तरह पालता है। कामवासना की धधकती हुई अग्नि को बुझाता है, सत्ता की ताक-झांक में हमेशा रहता है। समाज के रूढ़िगत संस्कार केवल मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय नारी के प्रति रहता है। हिन्दू समाज अपने दोगले चरित्र के कारण ही इसके ऊपर अनेक लांछन लगाता है। उन्हीं लांछनों को दूर करने का कार्य वर्तिका, कुन्तल व द्रोपदी जैसे मध्यवर्गीय व निम्नवर्गीय नारी करती हैं। अपनी तत्कालीन समाज के मानवीय मूल्यों का कत्ल करके, उन से मुक्ति दिलाती है।¹

मध्य और निम्न वर्गीय स्त्रियाँ संस्कारगत रूढ़ियों से इतनी बुरी तरह प्रभावित हैं कि वे स्त्री को पुरुष के समान समझ नहीं सकती। उनके लिए पति या पुरुष किसी दूसरी दुनिया की चीज है, जो हर मामले में स्वतंत्र है, उसके लिए कोई सामाजिक बन्धन नहीं है। वहीं स्त्रियों को सामाजिक के साथ-साथ राजनैतिक स्वतंत्रता का कहीं अधिकार नहीं है। 'स्वप्न' उपन्यास में अलका खुले विचारों की महिला है, वह अनेक संगोष्ठी, सेमिनार और समाजसेवी कार्यक्रमों में भाग लेती है। उसके लिए पुरुष या पितृसत्तात्मक समाज में संवाद भी करती चलती है। यह बात उसकी सास को पसन्द नहीं आती। नायक दो पाटों के बीच में फँसा अपनी विवशता व्यक्त करते हुए कहता है— मेरी माँ और उसका विधान। वह कभी यह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि नारी को स्वतंत्रता का कोई अधिकार भी है। स्वतंत्रता तो अलका भी नहीं चाहती थी। लेकिन अपनी दासता का पालन करने के लिए अधिकार चाहती थी और माँ थी कि उस अधिकार की अवहेलना करने पर तुली हुई थी। वह यह नहीं सह सकती थी कि उसके घर का कोई जेल जाए..... वह स्पष्ट जान गई थी कि बहू हाथ से निकल गई है और उन्होंने जो गाँव आने का निमंत्रण दिया था वह उसी हाथ से निकली हुई

¹ संग्रथन, सं. एम. एस. विनय चन्दन, दिसम्बर, 2010, पृ. 40

बहू की नाक में नकेल डालने का प्रयत्न था।¹ उपर्युक्त समस्या आज के उत्तर आधुनिकता के दौर में भी व्याप्त है। जिस सास की ओर संकेत किया गया है, वह सदियों की परम्परा को संस्कार रूप में ग्रहण की स्त्री है, जिसे पता ही नहीं कि उसका भी इस दुनिया में होने का कोई मतलब है। उसकी भी अपनी एक पहचान होनी चाहिए। इन सब प्रश्नों से परे पितृसत्तात्मक समाज के बनाये नियमों का पालन करती है और उसे अपने आने वाली पीढ़ी से पालन करवाने के लिए दृढ़ संकल्प है।

संस्कार और परम्परा के बीच में फँसी 'संस्कार' उपन्यास की नायिका पति द्वारा उपेक्षित होने पर भी उसके सुख-दुःख की चिन्ता करती है। वह चाहती है कि उसका सुहाग लम्बी उम्र पाये, इसलिए पूजा-पाठ भी करती है। वहाँ उसके पति ने तीन शादियाँ कर लीं और उसे याद भी नहीं किया। बचपन में जिस लड़की से उसका विवाह हुआ था वह इंतजार कर रही होगी या उसका क्या हुआ। सामाजिक मर्यादा से मुक्ति पाने के लिए वह मजदूरों के साथ काम करने चली जाती है। संस्कार अगर मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं तो उसे कमजोर भी बना देते हैं। स्त्रियों को मानसिक रूप से इतना कमजोर बनाया जाता है कि धीरे-धीरे उनका आत्मविश्वास समाप्त हो जाता है। राजकली इसी मानसिक कमजोरी की ओर संकेत करते हुए कहती है— “मानसिक शक्ति का अर्थ होता है निर्भय होना। भय को जीते बिना क्या कुछ पाया जा सकता है? इसलिए केवल शरीर को महत्व न दो। असीम उदारता, असीम इच्छा शक्ति, शरीर की चिन्ता नहीं।..... भय मात्र पुरुष की शारीरिक शक्ति से नहीं पाया जा सकता, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि आत्मविश्वास के बिना भय को नहीं जीता जा सकता।... वास्तव में ये दोनों एक ही शब्द के दो उच्चारण हैं।”²

विवाह प्रथा को लेकर प्रभाकर जी के मन में कई सवाल उठते हैं। एक जगह विवाह के बिना जीवन की कल्पना करते हैं तो एक जगह उसकी

¹ स्वप्न, विष्णु प्रभाकर, पृ. 107-8

² अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 373

अनिवार्यता पर बल देते हैं। महेन्द्र नामक पात्र अपने फिल्म निर्माता मित्र से, विवाह के सम्बन्ध में, कहता है— “मैं दिन में दस लड़कियों के साथ सोता हूँ, क्या सबसे विवाह कर सकता हूँ ?”¹ अगर इस बात को आज के उत्तर आधुनिकता के दौर में देखा जाये तो सही भी हो सकती है। यह उच्च वर्ग के अपने तर्क हैं। उच्च वर्ग में कुछ ऐसे भी पुरुष हैं, जिनकी अपनी एक ही स्त्री है और सुखी है। वहीं इस तरह के कुछ लोग हैं जो कई स्त्रियों के साथ सोना या संभोग करना जिन्दगी समझते हैं। अपने को सही साबित करने के लिए अनेक तर्क गढ़ लेते हैं। स्त्री शोषण का मूल कारण उसका शरीर है, जब तक पुरुष वर्ग उसके शरीर के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं कर लेता, तब तक इसे रोक पाना मुश्किल है। उच्च वर्ग में स्त्रियों के संदर्भ में कुछ ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि स्त्री यह जानती है कि उसका शोषण हो रहा है, होने देती है। उदाहरण के तौर पर ‘कोई तो’ उपन्यास में पल्लवी को देखा जा सकता है। वह जानती है कि विवेक केडिया शादीशुदा है, फिर भी उसे इसकी कोई चिन्ता नहीं। इस सम्बन्ध में पल्लवी और वर्तिका का संवाद देखा जा सकता है— “तूने देखा है विवेक को, युवक है, सुन्दर है, प्रतिभाशाली है और मेरे मन की बात तू जानती ही है। काला धन के साथ समृद्धि को भोगना चाहती हूँ, भोग रही हूँ। इतना कि समेट नहीं पा रही। निजी सचिव बनाने का प्रस्ताव रखा है उसने।”

“बड़ी बुरी खबर है।”

“बुरी?”

“हाँ मेरे लिए बुरी है। नहीं है क्या?”

खिलखिला पड़ी पल्लवी, “हाँ, हाँ तेरे आदर्शवाद का भी इलाज करना है। पगली! सबसे पहले अपना सुख देखता इंसान।”² उपर्युक्त संवादों के आधार पर प्रभाकर जी ने एक मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय स्त्री की विचारधारा से परिचित

¹ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 373

² कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 96

कराने का प्रयास किया है। यहाँ पल्लवी उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित उच्चवर्गीय महिला है, जिसके लिए विवाह ठीक उस फिल्म निर्माता की तरह निरर्थक है। विवाह के सम्बन्ध में 'तट के बंधन' में सरला के साथ हुए व्यवहार की चर्चा करते हुए नीलम शशि से पूछती है— "जीजी, विवाह के कारण उसे यह सब भोगना पड़ा। नारी क्या विवाह के बिना कुछ नहीं है?" नारी विवाह के बिना भी नारी है। सरला पर जो कुछ बीती है, इसका कारण मात्र विवाह नहीं है, डर भी है। कहूँगी, वही है।"

स्त्री शक्ति और शाप दोनों हैं, विवाह इन दोनों अतियों के बीच का मार्ग ढूँढ़ने का एक साधन है। युग-युग से इस क्षेत्र में प्रयोग हुए हैं, पर स्त्रीत्व के बिना मातृत्व की कल्पना भी नहीं मिटा सका, क्योंकि स्त्रीत्व के बिना मातृत्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जब तक स्त्रीत्व है, विवाह है।"¹ उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रभाकर जी ने विवाह के संदर्भ में सभी पक्षों को खुले तौर से रखने का प्रयास किया है।

प्रभाकर जी विवाह के विषय में जाति, धर्म और सम्प्रदाय का समर्थन नहीं करते थे लेकिन उन विवाहितों पर क्या अन्य सामाजिक दबाव पड़े, इस ओर भी संकेत किया है। 'कोई तो' में हरि और चंदा अन्तर्जातीय विवाह करते हैं। चन्दा दलित वर्ग से और हरि उच्च जाति से सम्बन्ध रखता है। हरि चन्दा को विवाहोपरान्त घर ले जाता है। वहाँ जाने के बाद जातिगत मुद्दे का प्रश्न प्रधान हो जाता है। धर्म और जाति के ठेकेदार दोनों को अलग कर देते हैं। अन्त में यह मामला कानूनी रूप धारण कर लेता है। पारिवारिक-सामाजिक कारणों से चन्दा का विचार बदल जाता है। अन्त में अदालत में कह देती है कि इसने मेरा अपहरण किया है, मैंने अपनी मर्जी से शादी नहीं की आदि। जातिगत रूढ़ियों का ऐसा प्रभाव है कि प्रेम घृणा के रूप में तब्दील हो जाता है। आजकल इस स्थिति के लिए 'ब्रेनवाश' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

¹ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 57

नारी की वर्गीय चेतना उसके परिवेश से प्रभावित होती है, परिवेश का सीधा सम्बन्ध अर्थ और सामाजिक मान्यता से है। सामाजिक मान्यताएँ जाति को महत्व देती हैं और आर्थिक मान्यताएँ अर्थ को। विष्णु प्रभाकर ने दोनों प्रकार की स्त्रियों के चरित्र को पाठकों के सामने रखा है। प्रभाकर जी ने सभ्य कहे जानेवाले समाज की स्त्रियों के विषय में तो लिखा है ही साथ में आदिवासी स्त्रियों की दशा की ओर भी संकेत किया है। उनका मानना है कि आदिवासी स्त्रियाँ सभ्य कहे जाने वाले समाज की स्त्रियों की अपेक्षा ज्यादा स्वतंत्र हैं। वे अपने समाज में पुरुष के समान सामाजिक कार्यों में भूमिका निभाती हैं। उनके समाज में कोई भी लड़की अपनी इच्छानुसार वर का चुनाव कर सकती है। उसे पुरुष के समान अधिकार प्राप्त हैं। बाबा रामदास सभ्य कहे जाने वाले समाज की स्त्री की स्थिति की आलोचना करते हुए कहते हैं कि—“अगर गिरिजनों को मैं तुम्हारी कहानी सुनाऊँ तो उनके उत्तर का यही अर्थ होगा— कितने असभ्य हो तुम लोग, नारी को अपना जीवन भी नहीं जीने दे सकते....।”¹ शहर और ग्रामीण क्षेत्र से प्रभाकर जी बखूबी परिचित थे। इनका अधिकांश जीवन भले ही शहर में बीता परन्तु इनकी आत्मकथा में गाँव के प्रति अतिरिक्त मोह दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में वे ग्रामीण स्त्रियों की दशा का उल्लेख किये बिना कैसे रह सकते हैं। ‘स्वप्न’ की नायिका प्रगतिशील विचारों की शहरी महिला थी। जब गाँव में कदम रखा तो उसकी सारी प्रगतिशीलता मात्र स्वप्न बनकर रह गई। समाज सुधार की बात तो दूर, वह उसी सदियों पुरानी आदिम संस्कृति का हिस्सा बन गई जहाँ स्त्री—स्त्री को पुरुष के नजरिये से देखने की पक्षपाती रही है। इस संदर्भ में अलका कहती है कि— “यहाँ नारी का अर्थ कुल—वधू भी नहीं है। है तो घर की दासी, जिसका स्थान भोजन—गृह और प्रसूति—गृह तक ही सीमित है, मानो घर का काम और बच्चे पैदा करने के लिए ही वह खरीदी जाती है। बेशक जो धनवान है वे हाथों से काम नहीं करतीं, लेकिन उसका पूरा बदला वे अपने

¹ कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 108

मुँह से लेती हैं। खूब खाती हैं, खूब बातें करती हैं। खाने के लिए घी, दूध, खट्टा—मीठा, चटपटा सब कुछ है। कुछ बातें करने के लिए दूसरों के बारे में प्रलाप, निन्दा और घृणा पैदा करने की बात चलती रहती है। मुझे खाने की आज्ञा है, बात करने की आज्ञा है, लेकिन आज्ञा नहीं है तो केवल बाहर जाने की। जब कभी मैं माँ से बाहर जाने के लिए कहती हूँ तो वह हँसकर जवाब देती है “यह शहर नहीं है, तुम्हें यहाँ बहू—बेटियों की तरह रहना चाहिए।”¹ उपर्युक्त कथन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण उच्च एवं मध्यवर्ग की क्या स्थिति है। प्रभाकर जी की ज्यादातर रचनाएँ उनके निजी जीवन के अनुभवों पर लिखी गयी हैं। उस पूरे कथन के आधार पर उनकी माँ के जीवन को जोड़कर देखा जाये तो कहीं न कहीं समानता अवश्य दिखाई देती है। उनकी माँ पढ़ी—लिखी, बड़े घर से सम्बन्ध रखने वाली महिला थी। शादी के बाद बिना किसी शिकवा—शिकायत के इनके धार्मिक पिता के साथ जीवन व्यतीत करती हैं। इनके पिता ने अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह उस तरह नहीं किया जिस तरह करना चाहिए या उनके लिए धर्म प्रमुख था और व्यवसाय गौण जिसकी वजह से घर की स्थिति दिन—ब—दिन खराब होती गई और प्रभाकर जी की पढ़ाई मामा की छत्र—छाया में पूरी हुई। न चाहते हुए भी उनको सरकारी नौकरी करनी पड़ी। उनकी शिक्षा—दीक्षा में उनकी माँ हमेशा प्रेरणा स्रोत रही। इनके जीवन का तीनों वर्गों से गहरा सम्बन्ध रहा। ‘स्वप्न’ के अलावा प्रभाकर जी ‘तट के बंधन’ में जमुना जैसी निम्नवर्गीय स्त्रियाँ भी हैं जो सामाजिक और राजनैतिक कारणों से अस्तित्व विहीन जीवन जीने के लिए विवश हैं।

प्रभाकर जी ने विधवा से सम्बन्धित पुनर्विवाह की समस्या को भी उठाया है। इनकी समस्त रचनाओं को देखने से पता चलता है कि यह समस्या उच्च और निम्न वर्ग की नहीं है अपितु मध्य वर्ग की है। मध्य वर्ग इस परम्परा को छोड़ना चाहता है पर पारम्परिक दबाओं और संस्कार की वजह से मुक्त नहीं हो पा रहा है। ऐतिहासिक परिदृश्य पर नजर डालें तो विधवा पुनर्विवाह की समस्या

¹ संकल्प, विष्णु प्रभाकर, पृ. 148

निम्न वर्ग की नहीं थी। समय के साथ उच्च वर्ग की जीवन शैली के साथ-साथ रूढ़िगत दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। मध्य वर्ग ने उन्नीसवीं सदी में शुरू हुए इस आन्दोलन का सबसे ज्यादा विरोध किया और आज इक्कीसवीं सदी में भी इससे मुक्त नहीं हो पाया है। संकल्प में सुमति पति की मृत्यु के बाद आजीवन विधवा जीवन जीती है। इसके विषय में तर्क देते हुए कहती है— “मेरा अपना यही अनुभव है; लेकिन अनुभव के ऊपर एक दायित्व भी तो है। विधवा होने से पूर्व मैं मात्र नारी नहीं रह गई थी, मैं माँ बन चुकी थी। माँ का दायित्व...”¹ माँ के जिस दायित्व की बात सुमति कह रही है, उस आधार पर अगर देखें तो पुरुष इस प्रकार के दायित्व का निर्वाह करता कहीं दिखाई नहीं देता है। विधवा स्त्री के प्रति स्त्री का क्या दृष्टिकोण है इसको ‘कोई तो’ उपन्यास में वर्तिका की विधवा नौकरानी के साथ हो रहे व्यवहार के रूप में देख सकते हैं। वर्तिका की बहन की शादी में उसकी माँ नहीं चाहती कि वह किसी रस्म में भाग ले। वर्तिका नहीं चाहते हुए भी बस इशारे में बता देती है और मौसी (नौकरानी) अपने आप समझ जाती है। यहाँ यह समस्या मूल रूप से निम्न एवं मध्य वर्ग की समस्या है। इस संदर्भ में पुरुष को रखकर देखा जाये तो पत्नी की मृत्यु के बाद पति सभी शुभ अवसरों में भाग ले सकता है और उसमें कोई दोष नहीं है। पितृसत्तात्मक समाज में सारे दोष, पाप-पुण्य स्त्री के साथ ही जुड़े हैं, उससे मुक्ति तब तक नहीं मिल सकती, जब तक पुरुष वर्ग की मानसिकता में परिवर्तन नहीं आ जाता।

विष्णु प्रभाकर के अधिकांश उपन्यास नारी समस्या प्रधान उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में उच्च, मध्य एवं निम्न तीनों वर्गों की स्त्रियों की वर्गीय समस्याओं से बड़े ही सहज ढंग से परिचित कराया है। इनके उपन्यासों में सबसे ज्यादा मध्यवर्गीय जीवन की करुण गाथा मिलती है। ‘तट के बंधन’ उपन्यास में मध्यवर्गीय चरित्र की अभूतपूर्व दास्तान है। इस उपन्यास में मध्यवर्गीय स्त्रियों की समस्याओं में विवाह की समस्या प्रमुख है। भारतीय समाज जैसा कि

¹ संकल्प, विष्णु प्रभाकर, पृ. 195

पितृसत्तात्मक समाज है, इसमें लड़की का जन्म दुःखद माना जाता है। इसका सबसे बड़ा कारण है दहेज, इसकी वजह से घर में जब बेटी जन्म लेती है तो माता-पिता को सबसे बड़ी चिन्ता उसके विवाह की सताती है। पिता ने अगर उसे अच्छी शिक्षा-दीक्षा दे दी है तो भी उसकी शादी करने के लिए उपयुक्त दहेज की व्यवस्था करनी पड़ती है। दहेज के आगे उसकी योग्यता का कोई मूल्य नहीं है। मालती एक पढ़ी-लिखी लड़की है, उसका विवाह इसलिए नहीं हो पाता कि उसके पिता पर्याप्त दहेज का प्रबन्ध कर पाने में अक्षम हैं। “प्रभाकर की सनद भी मालती की मदद न कर सकी”¹ मालती के विवाह को लेकर परेशान पिता अन्त में झूठ बोलते हैं और वर पक्ष द्वारा माँगे गये “पाँच हजार! और मोटर-साइकिल! और रेडियो, कैमरा, घड़ी, अँगूठी, चांदी के बर्तन, मशीन, सोफा सेट, ड्रेसिंग टेबल, कालीन.....।”² को स्वीकार कर लेते हैं। शादी के दिन नहीं दे पाते हैं और तब लड़के के पिता बारात वापस ले जाने की धमकी देते हैं। मालती के पिता बहुत मनाने की कोशिश की पर उनके प्रति लड़के के पिता ने कोई दया नहीं दिखाई, इस वजह से क्रोधित होकर एक महाशय बोलना शुरू कर दिए “आप लड़की चाहते हैं या पैसा? आप विवाह करने आये हैं या लूटने? आप जानते हैं कि इस समय लड़की के दिल पर क्या बीत रही होगी? आप जानते हैं कि इस अभाग्य देश में प्रतिवर्ष कितनी फूल जैसी बालाएँ दहेज की वेदी पर बलि का बकरा बन जाती हैं।”³ ऐसी स्थिति में शशि मालती को अपने होने वाले पति और ससुर को पत्र लिखने का सुझाव देती है, उसका पत्र पाने के बाद शादी करने के लिए राजी हो जाता है। लड़के का बेबस पिता शादी करने के लिए तैयार हो जाता है, परन्तु कहता है कि— “मैं बदला लूँगा। मैं रामनाथ को मजा चखाऊँगा। जन्म भर उसे बेटी का मुँह न देखने दूँगा। मेरा नाम मुरलीधर है।”⁴

¹ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 21

² वही पृ. 17

³ वही, पृ. 59

⁴ वही, पृ. 61

दहेज का दानवी रूप तब देखने को मिलता है जब शीला के पिता बैरिस्टर बुधवार के पुत्र को दहेज के सारे सामान देते हैं। पं. गणेशदत्त अपनी गरीबी पर तरस खाते हुए कहते हैं कि— “यह देखकर जी में आता है कि अपनी लड़कियों का गला घोंट दूँ।”¹ आज के समय में भ्रूण हत्या और सदियों से चली आ रही कुप्रथा बालिका वध इसी दहेज दानव की देन है। इतना सब पाने के बावजूद बाप—बेटे अपने को ठगा मानते हैं और अन्ततः नरेश इसी वजह से नहर में धक्का देकर अपनी पत्नी को मार देता है। दहेज के कारण मनुष्य में धोखा, फरेब, झूठ जैसे गुण पनपते जा रहे हैं या दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि लोगों में हृदयहीनता बढ़ती जा रही है। ‘संकल्प’ में मोनिका का प्रेमी उसके साथ जीने—मरने की कसमें खाता है और जब अपने घर जाता है तो दहेज के लोभ में आकर दूसरी जगह शादी कर लेता है।

दहेज एक अमानवीय प्रथा है, जिसकी प्रभावशीलता का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि यह अमानवीय होते हुए भी अपना वर्चस्व बनाये हुए है। प्रत्येक वर्ग में इसके रूप अलग—अलग हैं। शिक्षा ने जहाँ चेतना जागृत की वहीं इसके पोषकों ने इसको कई नाम दे दिया, आज के युग में इसे केवल दहेज के नाम से नहीं जाना जाता अपितु अनेक दलालों के उनकी भाषा में नाम हैं। युगानुरूप बदलती चेतना ने भी दहेज प्रथा को समाप्त करने में अपने को अक्षम पाया है। इसका अन्त स्त्री—पुरुष की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर निर्भर करता है। इस संदर्भ में ‘तट के बंधन’ में सुनील—शशि, सत्येन्द्र—ललिता, नीलम—सुभाष, ‘संकल्प’ में सुमति और सौमित्र, ‘निशिकांत’ में निशिकांत और कमला, ‘कोई तो’ में वर्तिका और नारायण के विवाह को आदर्श विवाह माना जा सकता है। जहाँ दोनों की आपसी समझ और प्रेम महत्वपूर्ण है, यहाँ दहेज जैसी अधम प्रवृत्तियों के लिए लेश मात्र भी स्थान नहीं है। मालती शशि से बैरिस्टर बुधवार और उसके पुत्र के विवाह में लेन—देन को लेकर अनेक प्रश्न करती है। इसकी मूल बात की

¹ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 29

और संकेत करते हुए शशि कहती है कि “यह फैला हुआ वैभव इस बात की सूचना देता है कि समाज में चारों ओर ठगों का बोलबाला है।”¹

‘तट के बंधन’ में शशि एक साहसी मध्यवर्गीय महिला है, जिसने सामाजिक मान्यताओं के खिलाफ जाकर अन्तर्जातीय विवाह किया। उसकी माँ ने कहा कि— “क्या हिन्दू घर की बहू बेटियों को ऐसा करने की आज्ञा है।”² उसके भइया—भाभी इस विवाह का चढ़—बढ़कर विरोध करते हैं, भाभी तो उसे वेश्या तक कह देती है। यहाँ देखा जाय तो मध्यवर्गीय स्त्री अपने संस्कारों को नहीं छोड़ पाती। यह समस्या मात्र स्त्रियों के साथ ही नहीं है, अपितु बहुसंख्यक पुरुष वर्ग भी इनसे मुक्त नहीं हुआ है। मालती की बहन ललिता के विवाह के संदर्भ में प्रभात को उसके पिता पत्र लिखते हैं कि..... जहर खाकर सो जाऊँ..... तुम्हें क्या हक था कि इस तरह किसी की बेटी को बहकाकर ऐसे—गैरे से शादी कर देते। अपने रिश्ते की आड़ लेकर तुमने एक शरीफ खानदान की आबरू धूल में मिला दी। गरीब माँ—बाप की बाकी जिन्दगी में कांटे बो दिये। तुमने मेरी फूल—सी कोमल, बच्ची—सी भोली ललिता को बहकाकर नीच कुल के उस सत्येन्द्र के साथ विवाह कर दिया।”³ जब सुनील—शशि का विवाह हुआ था तो ब्राह्मणवादियों ने उसे अनुचित ठहराया और बाद में सत्येन्द्र और ललिता के साथ भी यही किया। मध्यवर्ग अपने संस्कारों से ऐसे बंधा हुआ जैसे कि वही उसका सब कुछ है, जब इस समाज में पुरुष की ऐसी स्थिति है तो स्त्री की क्या दशा होगी इसका अन्दाज़ा ललिता और शशि के पति चुनने सम्बन्धी विचार से लगाया जा सकता है—

“क्या तूने सचमुच ही वर ढूँढ़ लिया है?”

“ढूँढ़ रही हूँ।”

“अपने आप?”

¹ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 34

² वही, पृ. 41

³ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 141

“क्यों क्या कोई पाप है?”...

“पता नहीं, पर लड़कियाँ ऐसा करती हैं?”,

“करती थीं, करती हैं और कर सकती हैं।”¹ ललिता स्वयं पति ढूँढ़ने को अगर पाप मानती है तो इसमें उसके संस्कारों का ही दोष माना जाता है। ‘कोई तो’ उपन्यास में दो उच्चवर्गीय स्त्रियाँ पल्लवी और रति पुरुष को कुछ समय का साथी मानती हैं, उनकी चिन्ता पातिव्रत्य या यौनशुचिता को बनाये रखने की नहीं है, बल्कि स्वयं की अस्मिता और अस्तित्व की चिन्ता है। ‘स्वप्न’ की अलका पूरी तरह मध्यवर्गीय संस्कारों से अनुप्रेरित नहीं है, पर सामाजिक दबावों से मुक्त नहीं हो पाती। ‘संस्कार’ की नायिका मध्यवर्गीय ग्रामीण स्त्री है जो संस्कारों में ऐसे फँसी है कि चाहकर उनसे आजाद नहीं हो पाती। ‘संकल्प’ की सुमति मुक्ति को बंधन ही स्वीकार करती है।

विष्णु प्रभाकर आज़ादी के बाद और पहले स्त्री की क्या दशा थी, इसको अपनी रचनाओं में स्थान देने का भरसक प्रयास किया है। उनकी रचनाओं में घटनाएँ काल्पनिक नहीं हैं, अपितु उन्होंने जो दुख देखा, भोगा उसी को वाणी दे दिया है। ‘निशिकांत’ उपन्यास उनके खुद के अनुभवों का दस्तावेज है। ‘तट के बंधन’, ‘कोई तो’ और ‘निशिकान्त’ में मध्यवर्ग की स्थिति को दिखाने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में प्रभाकर जी ने कहा है कि— “दोनों उपन्यासों में पर्याप्त अन्तर है। ‘तट के बन्धन’ का परिवेश अलग है। ‘कोई तो’ में मध्यवर्ग की जो नैतिकता है उसे मैंने फोकस किया है, ‘तट के बन्धन’ में ऐसा नहीं हुआ है। जैसे ‘कोई तो’ में वर्तिका है— वर्तिका की वेदना की कहानी है— मुसलमान से परिचित होने के कारण उस पर आरोप लगा दिया जाता है कि वह मुसलमान के साथ जा रही थी और इस प्रतिक्रिया में वह इधर—उधर जुड़ती है, छटपटाती है लेकिन कोई भी उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं, यह आज की स्थिति है।”... मैंने जिस युग में जो उपन्यास लिखा, उसी युग का पात्र लिया है। यह कह सकते हैं

¹ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 22

कि मेरे तीन उपन्यासों के जो तीन युग हैं, उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है, न मानसिक तौर पर न मध्यवर्ग के व्यवहार में। 1938—39 में 'निशिकांत' में जो स्थिति थी, मध्यवर्ग की जो मानसिकता थी, आज 40 वर्ष बाद भी उसमें कोई ज्यादा अन्तर नहीं आया है।..... मेरे तीनों उपन्यासों में ही मुस्लिम चरित्र रहे हैं और यह संयोग ही है। पर यह सब मेरा भोगा हुआ यथार्थ है, कल्पना नहीं।"¹

प्रभाकर जी के तीनों उपन्यास वास्तविक घटनाओं पर आधारित हैं। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। इन्होंने स्वतंत्रता से पूर्व और बाद हो रहे हत्या, बलात्कार, शोषण, चोरी, धार्मिक कट्टरता को अपनी आँखों से देखा था। 'तट के बंधन' में जुलेखा और अनिला दो ऐसी स्त्रियाँ हैं, जिन्होंने भारत विभाजन की त्रासदी को देखा ही नहीं, झेला भी है। जुलेखा विभाजन के बाद रतिराम के भाई की रखैल/पत्नी बन जाती है और बच्चा भी पैदा करती है। इसके बाद उसे मुसलमान होने की वजह से भारत छोड़कर जाने के लिए विवश कर दिया जाता है। आज़ादी के बाद सबसे ज्यादा कीमत स्त्रियों को ही चुकानी पड़ी। उनके साथ वहशीपन का नंगा नाच हुआ। गोपाल की प्रेमिका या होने वाली पत्नी विभाजन के दौरान पाकिस्तान में छूट गई। उसके साथ कई बार अमानवीय व्यवहार हुआ। उसी दौरान उसकी कोख में न जाने किसका बच्चा रह जाता है। वह मरना चाहती है, पर मर नहीं पाती। उसे बाजार में बेचा जाता है, उसकी सहेली का मंगेतर अजित उसे खरीदता है। दोनों अपना नाम असद और अस्मत रखकर पाकिस्तान में रहने लगते हैं। जब सच्चाई का पता चलता है तो अनिला को न चाहते हुए भी भारत आना पड़ता है। जुलेखा जिसे विभाजन की वजह से जमुना और फिर जुलेखा बनने पर मजबूर कर दिया जाता है, वह आज़ादी के संबंध में व्यंग्य करते हुए नीलम से कहती है कि— "जानती है, कितनी बुलबुलें हमारी आज़ादी की नींव में दफ़नाई गई हैं। कुछ लोग बुलबुलों को तितलियाँ कहते हैं। तू भी एक निहायत खूबसूरत तितली है। तू तो जानती होगी कि जब नया मकान

¹ विष्णु प्रभाकर व्यक्ति और साहित्य, सं. महीप सिंह 79—80

बनाते हैं तब उसकी नींव में बेशकीमती चीज रखते हैं। आजादी के महल की नींव में उसी हिसाब से शहीदों के खून के साथ हमारी अस्मत भी रखी गई है।..... फर्क इतना है कि खून आज़ादी के दुश्मनों ने बहाया था। अस्मत आज़ादी के पाने वालों ने लूटी।.... औरत की अस्मत एक न एक दिन लुटती ही है। मेरे साथ कोई खास बात नहीं हुई।”¹

जुलेखा जहाँ आज़ादी के बाद हुए अमानवीय कृत्यों की ओर संकेत करती है, वहीं वैवाहिक जीवन पर भी प्रश्न चिन्ह लगा देती है। प्रभाकर जी चले आ रहे पारम्परिक ढंग से जीवन साथी चुनने के तरीके में बदलाव चाहते हैं। इसको स्त्री स्वतंत्रता और अस्तित्व से जोड़कर देखते हैं। उनका मानना है कि “जब तक नारी इस बात को स्वीकार नहीं कर लेगी कि विवाहित जीवन उसके लिए बहुत आवश्यक नहीं है और वह पुरुष के सहारे के बिना भी जी सकती है, तब तक मध्य वर्ग की नियति में परिवर्तन आना बहुत मुश्किल है।”² धार्मिक एवं राजनीतिक स्वार्थों की वजह से सबसे ज्यादा नुकसान स्त्रियों को ही होता है। शशि भारत-विभाजन के बाद की विषम स्थिति के विषय में कहती है “जो इन देशों की सीमा के आर-पार बीती है। किसी भी धर्म में इस अन्याय का प्रतिकार नहीं है। अपने अन्तर में है। उसका प्रयोग अपने को जानने में है और अपने को वही जानता है, जिसका मन मुक्त है।”³

प्रभाकर जी के उपन्यासों में मध्यवर्गीय दस्ता अधिक है। यह ऐसा वर्ग है जो परम्परा और आधुनिकता के बीच फँसा हुआ है। इस स्थिति में न पूरी तरह पारम्परिक ही बन पाता है और न आधुनिक। इस वर्ग की स्त्रियों की भी दशा पुरुषों जैसी है। उदाहरणार्थ ‘संकल्प’ की नायिका सुमति को देखा जा सकता है। वह पति की मृत्यु के बाद आजीवन विधवा रहने का फैसला करती है। उसने ऐसी रेखा खींच ली है कि वह सीता की तरह लक्ष्मण रेखा लाँघने की भूल नहीं

¹ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 80

² विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य, डॉ. महीप सिंह, पृ. 80

³ विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य, डॉ. महीप सिंह, पृ. 57-58

करेगी”¹ वह मध्यवर्गीय संस्कारों से बंधी हुई है, इस सम्बन्ध में कहती है कि—
 “अपना संकल्प पूरा कर लेने के बाद भी मैं सचमुच मुक्ति नहीं चाहती।”² सुमति सामाजिक तौर पर सम्मानजनक दृष्टि से देखी जाती है, वहीं अगर ‘निशिकांत’ की कमला को देखा जाये तो वह समाज की रूढ़ियों का विरोध तो करती ही है, साथ में उसके खिलाफ जाकर पुनः विवाह करती है। वह उन स्त्रियों को जानवर मानती है जो अपने अधिकारों के लिए लड़ना नहीं जानती हैं। उसके अनुसार—
 “जानवर केवल वह है, जो शब्द करना जानती है, बोलना नहीं। जो बोल नहीं सकता, वह जड़ सम्पत्ति की भाँति स्वामी के अधिकार की वस्तु है।”³ मध्यवर्गीय समाज की सबसे बड़ी समस्या उसका झूठा दम घोंट देने वाला आदर्शवाद, जिसकी वजह से कमला को विद्यालय छोड़ना पड़ता है।

प्रभाकर जी ने मध्य वर्ग के साथ-साथ निम्न वर्ग की महिलाओं की समस्याओं को वाणी दी है। जहाँ शोषण, यंत्रणा, गाली, द्वेष, गन्दगी, अशिक्षा आदि का बोल-बाला है वहाँ तिहरे शोषण की शिकार ये महिलाएँ पुरुष के साथ काम करती हैं और इसके बाद भी घर के सारे काम करती हैं। उसकी आर्थिक स्वतंत्रता आत्मबल प्रदान करती है। झूठे पुरुष वर्चस्व का विरोध करते हुए एक दलित स्त्री कहती है कि “बराबर का कमावे है। हम पै नहीं चलेगी धौंस-पट्टी। हम ना सहते किसी की चौधराहट।”⁴

स्त्रियों की स्वतंत्रता में अर्थ की महत्वपूर्ण भूमिका है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर स्त्री अपने निर्णय तभी ले सकती है, जब उसे खुद पर विश्वास हो वरना आजीवन उनके सारे निर्णय पुरुष ही करते रहेंगे। प्रभाकर जी स्त्रियों को हर क्षेत्र में समानता के पक्ष में थे। उनका मानना है कि— “मानव समाज ने अभी सहजीवन का अर्थ नहीं समझा है। उसका अर्थ नारी पुरुष में खो जाना नहीं है—

¹ संकल्प, विष्णु प्रभाकर, पृ. 299

² वही, पृ. 242

³ निशिकान्त, विष्णु प्रभाकर, पृ. 254

⁴ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 104

मात्र समर्पिता नहीं बनाना है उसे। सहजीवन का अर्थ है स्त्री पुरुष दोनों का निर्भय होकर एक-दूसरे की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करके एक-दूसरे को पाना।¹

अर्थ और स्त्री-मुक्ति का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है, आर्थिक स्वतंत्रता ही स्त्री की स्वतंत्रता है। ऐसी विचारधारा तब गलत लगती है, जब हम विकसित देशों की स्थिति देखते हैं, जहाँ स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र होते हुए भी संभवतः सही मायने में स्वतंत्र नहीं हैं। आज स्त्री को एक ही साथ आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता की जरूरत है। सामाजिक स्वतंत्रता तभी मिल सकती है जब पुरुष वर्ग की मानसिकता में परिवर्तन आये। सुमति इस संदर्भ में कहती है कि “नारी-उत्पीड़न का सम्बन्ध मात्र आर्थिक अभाव पर निर्भर नहीं है। आर्थिक अभाव और सम्पन्नता दोनों प्रकार के समाज में समान रूप से उत्पीड़ित रही है।”²

4.3 नारी पात्रों के प्रकार—श्रमिक, गृहिणियाँ, कामकाजी (नौकरीपेशा), अधिकारी आदि।

विष्णु प्रभाकर हिन्दी साहित्यकारों में अपनी अलग पहचान रखते हैं। इन्होंने हिन्दी साहित्य की एक विधा में ही नहीं अपितु सभी विधाओं में लेखन कार्य किया और सफल भी रहे। प्रभाकर जी को प्रेमचन्द, अज्ञेय, जैनेन्द्र, निराला, पंत, मैथिलीशरण गुप्त आदि मूर्धन्य विद्वानों का सानिध्य मिला। ऐसे साहित्यिक माहौल में साहित्य सृजन का विस्तृत क्षेत्र अपने आप मिला। प्रभाकर जी ने साहित्य लेखन में अपने जीवन के निजी अनुभवों को समेटने का भरसक प्रयास किया है। इनके ये अनुभव तत्कालीन धर्म, अर्थ, राजनीति, व्यवस्थागत भी थे। उपर्युक्त सारे मुद्दे इनके उपन्यासों के विषय हैं। “उनका समस्त साहित्य भारतीय वाग्मिता और अस्मिता को व्यंजित करने वाला साहित्य रहा है। इस बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार ने अपनी कुशल लेखनी से हिन्दी साहित्य की समस्त विधाओं

¹ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 213

² अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 213

को संस्पर्शित किया है। उनके व्यक्तित्व में संवेदनशीलता, भावुकता तथा चिंतनशील गांभीर्य का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। चरैवेति—चरैवेति अर्थात् चलते चलो, उनके जीवन का मूलमंत्र रहा, चाहे वह साहित्य का क्षेत्र हो या जीवन का। उनके विचार से निरंतर उद्देश्यपूर्ण चलते रहने, सीखने और ग्रहण करने का नाम जीवन है। संघर्ष के कंटकपूर्ण पथ को पार करते हुए वे सफल मसिजीवी साहित्यकार बने।¹

प्रभाकर जी ने कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, यात्रावृत्त आदि लिखे और इन सभी विधाओं में अपनी अमिट छाप छोड़ी। इनके “समग्र साहित्य में युग—स्वर ध्वनित है। एक सजग रचनाकार होने के नाते उन्होंने अपने समस्त सामाजिक और रचनाधर्मी दायित्वों की पूर्ति की है। इसमें आधुनिक समस्याओं के प्रकाशन का यथार्थ प्रयास है। इसमें केवल समस्याओं का अंकन तथा आक्रोश नहीं है, प्रत्युत आस्था एवं संकल्प की, अपूर्ण जिजीविषा की, कर्म एवं दायित्व की, मानव मूल्य एवं मर्यादा की अभिनव जीवन—दृष्टि मिलती है। इन्होंने अपने साहित्य में जीवन—संघर्ष का चित्रण किया है किन्तु उनका ध्यान सदैव मूल्यों के उत्कर्ष पर रहा और यही उनके साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि है।”² उनके इन्हीं मूल्यों ने उन्हें एक महान साहित्यकार बना दिया।

विष्णु प्रभाकर ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में फैली आर्थिक असमानता की ओर ध्यान खींचने का भरपूर प्रयास किया है। ‘तट के बन्धन’ उपन्यास आर्थिक विपन्नता को दर्शाता है। इसमें पुरुष से लेकर स्त्री तक सभी किन—किन यातनाओं से गुजरते हैं, इसे दिखाने का सफलतापूर्ण प्रयास किया है। सत्येन्द्र के पिता के मृत्यु की बाद उसकी माँ अपने पति के मुस्लिम मित्र से विवाह इसलिए कर लेती है कि उसके बच्चों की देखभाल अच्छी तरह से हो सकेगी। इसी आर्थिक त्रासदी से निपटने के लिए मुसलमान पति की मृत्यु के बाद वह एक सेठ से शादी करना चाहती है, परन्तु सत्येन्द्र के विरोध करने के

¹ स्रवंति, सं. सी.एस. होसगौडर, जून, 2013, पृ. 10

² वही, पृ. 18

बाद विवाह नहीं करती। अन्ततः नीलम और सत्येन्द्र की पढ़ाई के लिए अन्य रास्ते का चुनाव करना पड़ता है।

विष्णु प्रभाकर के 'संस्कार' उपन्यास की नायिका रामो आजीवन अपरिचित पति का तो इंतजार करती है परन्तु जब पति नहीं आता और अपनी स्थिति से त्रस्त आ जाती है तो वह मजदूरों के साथ काम करने चाली जाती है। वह चाहती तो अपने देवर के प्रणय निवेदन को स्वीकार करके बड़ी ठेकेदारनी कहलाती और सुखी जीवन व्यतीत करती। रम्मो तमाम प्रलोभनों से मुक्त अपना रास्ता चुनती है और मजदूरों के साथ स्वतंत्र जीवन जीती है। उसका मानना है कि मजदूरी तो मैं तब भी करती थी और अब भी करती हूँ, पहले बड़े घरों में करती थी, अब मजदूरों के साथ। प्रभाकर जी ने यहाँ स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता की बात की है।

प्रभाकर जी ने बदलती मानवीय प्रवृत्ति और मानसिक स्तर को बड़े ही नजदीक से पहचाना था। ये अपने प्रथम उपन्यास 'निशिकान्त' में अर्थ की स्थिति को पाठकों के सामने सही ढंग से रखने में सक्षम हुए हैं। उपन्यास का नायक सरकारी नौकरी नहीं करना चाहता, पर जब परिवार की स्थिति की ओर देखता है तो सहम सा नजर आता है। उसका साहसी व्यक्तित्व आर्थिक संकट के विषय में सोचकर व्याकुल हो जाता है। इसी तरह स्वतंत्रता पूर्व उन हजारों कर्मचारियों के विषय में अन्दाजा लगाया जा सकता है जो इस स्थिति से गुजर रहे थे। जब पुरुष की ऐसी स्थिति थी तो स्त्री की क्या रही होगी, उसका अन्दाजा कमला के साथ घटी घटनाओं से लगाया जा सकता है। कमला विधवा है और वह एक आर्य समाजी स्कूल में पढ़ाती है। उसको वह स्कूल इसलिए छोड़ना पड़ता है कि वह परम्परा का भार नहीं ढोती और मुक्त रूप से पुरुषों से संवाद करती है और अपना समान प्रेम बनाये रखती है। उसकी सास उसके रहन-सहन के तरीके को कुलक्षण मानती है। "कामकाजी महिलाओं के मार्ग में पारिवारिक समस्याओं के अतिरिक्त अन्य समस्याएँ भी आती हैं, जिसका सामना भी उन्हें करना होता है,

जैसे—यदा—कदा दफ्तर या अन्य घरेलू बाहरी कार्यों से विलम्ब होने पर घर के संदेह का शिकार होना पड़ता है। इसीलिए आज भी अधिकांश परिवारों में महिलाओं हेतु शिक्षण व्यवसाय को उत्तम व सुरक्षित माना जाता है। परन्तु आधुनिक युग में विज्ञान एवं तकनीकी विकास के कारण विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण व्यवसायों का प्रसार बढ़ता जा रहा है। जिसमें महिलाएँ पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही हैं। अतः पुरुषों को महिलाओं हेतु केवल शिक्षण व्यवसाय चुनने की प्रवृत्ति में बदलाव लाना होगा तथा महिलाओं के कार्यों को उनकी बुद्धिमत्ता, अनुभव एवं कर्मठता से जोड़ना होगा।¹ इससे उनकी मानसिकता के साथ-साथ समाज की मानसिकता में परिवर्तन होगा। स्त्री को केवल शिक्षा व्यवसाय तक सीमित करना एक तरह से उनके अस्तित्व और प्रतिभा को नकारने जैसा है। इसके अलावा व्यवसाय चुनना उनकी योग्यता तो साबित करता है ही साथ में आर्थिक एवं मानसिक रूप से आत्मनिर्भर बना देता है। यह आत्म-निर्भरता स्त्री के अस्तित्व एवं अस्मिता की पहचान की पहली सीढ़ी है। व्यवसाय का चुनाव नारी जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। केवल शैक्षिक व्यवसाय आधी आबादी को आर्थिक रूप से मजबूत नहीं कर सकता। इसको आर्थिक रूप से मजबूत बनाने के लिए अन्य व्यवसायों सेना, पुलिस, इंजीनियरिंग, डॉक्टरी, प्रशासनिक सेवा आदि को सम्मानजनक पेशे के रूप में देखा जाना चाहिए। इन व्यवसायों के प्रति स्त्रियों में सकारात्मक सोच पैदा करने का भरसक प्रयास किया जाना चाहिए। स्त्रियों में सकारात्मक सोच जब तक विकसित नहीं होगा, जब तक उनमें विश्वास उत्पन्न नहीं होगा और अविश्वास की स्थिति में इन व्यवसायों के प्रति झुकाव नहीं हो सकता। 'तट के बंधन' में नीलम और 'कोई तो' की वर्तिका शिक्षा के व्यवसाय को प्राथमिकता देती हैं।

शिक्षा का क्षेत्र स्त्रियों के लिए इसलिए उपयुक्त माना गया है कि इसमें पितृसत्तात्मक समाज की पुरुषवादी मानसिकता से अपने को घर से बाहर बचाये

¹ नारी : अन्तःदर्पण व समाज, चन्द्रमोहन अग्रवाल, पृ. 357-58

रखने का समान अवसर अधिक मिलता है। लेकिन अन्य व्यवसायों में ऐसी स्थिति सामान्य तौर पर कम देखी जाती है। कोई पुरुष अधिकारी चाहे तो अपने सहकर्मी को किसी कार्य विशेष की बात में उलझाकर देर रात तक रोक सकता है, परन्तु शैक्षिक व्यवसाय में प्रायः ऐसा नहीं देखा जाता। 'संकल्प' की सुमति अपनी नौकरी इसलिए छोड़ देती है कि उसका मैनेजर उसे घर पर आने का निमंत्रण देता है। ऐसी स्थिति आज के समाज में सामान्य तौर पर देखी जा सकती है। बढ़ते शिक्षा और जनसंचार के प्रचार-प्रसार ने स्त्री को इन मामलों में सुरक्षित रखा है।

स्त्री शिक्षा और स्वतंत्रता के इस युग में देखा जाता है कि पुरुष के सामने उसका विशेष महत्व नहीं है। सारी योग्यताओं के बावजूद उसे शादी के बाद पुरुष के आदेशानुसार चलना पड़ता है। घर के सामान्य से सामान्य निर्णयों में उसकी भूमिका को नकार दिया जाता है। कामकाजी महिलाओं के साथ कभी-कभी देखा जाता है कि स्वयं की धनराशि को खर्च करने की स्वतंत्रता नहीं रही। इसका पूरा निर्णय उसका पति या ससुराल वाले लोग ही करते हैं। उस समस्या को समाज के संकीर्ण मानसिकता के कुछ पुरुषवादी मानसिकता वाले जीवित रखे हैं। इसी वजह ने स्त्रियों में सदियों से एक भय पला हुआ है। उत्तर आधुनिकता के इस दौर में स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो गयी है, परन्तु सामाजिक स्वतंत्रता अभी भी प्राप्त नहीं है। 'निशिकांत' उपन्यास में निशिकांत और कमला के संवाद को इस संदर्भ में देखा जा सकता है। "मैं नहीं समझ पाता तुम इतना डरती क्यों हो? तुम तो आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो।"

"लेकिन आर्थिक दृष्टि ही तो सब कुछ नहीं है। वे मुझ पर तरह-तरह के लांछन लगाने लगे हैं। . . . क्या पुरुष की छाया पड़ते ही स्त्री दुश्चरित्र हो जाती है? क्या विवाह की इच्छा के बिना विधवा युवती कभी किसी के साथ रह ही नहीं सकती? क्या हृदय का माधुर्य वासना में जाकर ही लय होता है? और पुरुष क्यों प्रत्येक नारी को प्रेयसी के रूप में देखने को लालायित रहता है? क्यों

दुनिया स्त्री के विषय में इस प्रकार सोचती है?"² कमला का प्रश्न मात्र एक स्त्री का नहीं है, अपितु पूरी आधी आबादी का है, जो अपने को वस्तु नहीं मनुष्य समझे जाने का समर्थन करती है। स्त्रियों के प्रति पुरुषों के रवैये का विरोध समाज के हर वर्ग की नारी करना चाहती है। 'कोई तो' उपन्यास की नायिका वर्तिका को प्रो० गोपाल इसलिए प्राध्यापक का पद दिलाने का प्रयास करते हैं क्योंकि वे उससे विवाह करना चाहते हैं। कई बार किये गये उनके प्रणय निवेदन को वर्तिका ठुकरा देती है, इससे बहुत निराश होते हैं। आज लगभग सभी व्यवसायों में स्त्री के प्रति ऐसी स्थिति है।

आज के युग में नारी की आर्थिक स्वतंत्रता की बात करने से पहले उसको अर्थ बनने से रोकना होगा। नारी का अर्थ बनने से सीधा सम्बन्ध दहेज से है। दहेज जैसी प्रथा नारी की विकास-गति को बाधित कर रही है। "इसका कारण हमारे पूर्वजों द्वारा स्त्री को किसी प्रकार की स्वतंत्रता देने का विरोधी होना है। दहेज जैसी घिनौनी प्रथा दकियानूसी लोगों की देन रही होगी। दहेज की व्यवस्था करने वाले लोलुप रूढ़िवादियों ने ही विधवा विवाह पर रोक लगा दिया था। दहेज के कारण पति पत्नी का चुनाव अनुचित तथा प्रतिकूल हो जाता है। इसका समाधान एक तरीके से हो सकता है कि युवक युवतियों को सानिध्य प्राप्त हो। दहेज प्रथा दूर न होने के कारण हमारे देश के युवक भी दहेज के आधार पर अपना जीवन साथी चुनते हैं न कि गुणों के आधार पर।"³ ऐसी मानसिक धारणा से उपर उठने के बाद ही स्त्री अर्थ बनने से बची रहेगी। स्त्री का 'अर्थ' न बनना उसकी सामाजिक स्वतंत्रता है। हमें आधी आबादी का कुछ प्रतिशत स्वतंत्र देखकर सम्पूर्ण मूल्यांकन नहीं करना चाहिए।

स्त्री और अर्थ का गहरा सम्बन्ध आज से नहीं अपितु पौराणिक काल से है, वहीं से दहेज प्रथा का बीज दिखाई देता है। दहेज की वजह से आज की भारतीय संस्कृति में अनेक विकृतियाँ आ रही हैं। प्राचीन समय में स्त्री को 'श्री'

² निशिकान्त, विष्णु प्रभाकर, पृ. 155

³ महिला श्रमिक : सामाजिक स्थिति एवं समस्याएँ, डॉ. जास्मिन लॉरेन्स-10

अर्थात् लक्ष्मी समझा जाता था। इस लक्ष्मी का सम्बन्ध धन से नहीं अपितु घर के सदस्य के रूप में प्राप्त धन था। समय के साथ स्त्री धन मात्र रह गई। स्त्रीधन की चर्चा ऋग्वेद, मनुस्मृति, तैत्तरीय संहिता, गौतम सूत्र आदि में दिखाई देती है। दहेज प्राचीन स्त्रीधन का बदला हुआ रूप है। पहले स्त्रीधन स्वेच्छा से दिया जाता था और अब अनिच्छा से। 'स्त्रीधन' मूलतः वह धन है जिस पर स्त्री का पूर्ण रूप से अधिकार हो। मनुस्मृति में स्त्री धन के विषय में कहा गया है कि 'विवाह के समय अग्नि के समक्ष, विदाई के समय माता-पिता, भाई द्वारा स्नेहवश दिया गया धन स्त्री धन है (19/144) बाद में मनु ने अपने सगे सम्बन्धियों से मिलने वाली भेंट को स्त्रीधन के अन्तर्गत रखा। कात्यायन ने छः प्रकार के स्त्री धन की चर्चा की है—

1. अध्यग्नि— विवाह के समय अग्नि के समक्ष मिलने वाला धन।
2. अध्यावहनिक— पिता के घर से जाते समय मिलने वाला धन।
3. प्रीति दत्त— सास, श्वसुर तथा अन्य बड़े लोगों द्वारा दिया गया था।
4. शुल्क— पशुओं, दासों और आभूषणों के मूल्य के रूप में प्राप्त धन।
5. अन्वाधेय— विवाह के बाद सगे-सम्बन्धियों द्वारा प्राप्त धन।
6. सौदायिक— विवाहित या अविवाहित स्त्री को अपने पिता से मिला धन सौदायिक कहलाता है।

स्त्रीधन के विषय में अन्य शास्त्रों में कुछ विभेद के साथ उसी अर्थ में प्रयोग मिलता है। यह धन पति द्वारा पत्नी को विवाहोपरान्त भी प्रदान किया जाता है। इस धन में स्त्री द्वारा कमाये गये धन को शामिल नहीं किया गया है। इस धन पर सामान्य तौर पर स्मृतियों एवं शास्त्रों में स्त्री का अधिकार सुरक्षित है। वह इस धन को अपनी स्वेच्छा से अपनी बेटी को दे सकती हैं।

कात्यायन ने कहा है कि— 'स्त्रियाँ इस धन पर स्वतंत्र अधिकार रखती हैं। यह धन उनको अपने सगे-सम्बन्धियों द्वारा इसलिए दिया जाता है कि उनको

कोई दुःख न हो। मनु ने इसे सभी संतानों में समान भाग से बाँटने की बात की। वर्तमान समय में स्त्रीधन संवैधानिक रूप से स्वीकृत है, लेकिन सामाजिक तौर पर अभी सुरक्षित नहीं है। प्राचीन काल में यह धन स्वेच्छा से दिया जाता था परन्तु आज के युग में दबाव डालकर लिया जाता है। पहले धन पर पूर्ण अधिकार स्त्री का होता था अब पति या ससुराल पक्ष का। उत्तर आधुनिकता के इस दौर में बढ़ती धन लोलुपता के कारण हो रही हत्याओं एवं उत्पीड़न को रोकने के लिए प्राचीन स्त्रीधन की परंपरा को प्रचारित-प्रसारित करना चाहिए और स्त्री को अर्थ नहीं इन्सान समझना चाहिए। 'तट के बंधन' में नरेश शीला की हत्या इसलिए कर देता है कि उसे दहेज में उतना धन नहीं मिला जितना वह चाहता था। मालती की शादी के दिन बारात उसके ससुर द्वारा इसलिए वापस ले जाने की धमकी दी जाती है क्योंकि उनको कहे के अनुसार दहेज नहीं मिला। प्रभाकर जी ने स्त्री के शुक्ल पक्ष ही नहीं अपितु कृष्ण पक्ष की ओर भी लोगों का ध्यान खींचने का सफल प्रयास किया है।

प्रत्येक देश के विकास में तब तक बढ़ोत्तरी नहीं आ सकती, जब तक कि आधी आबादी को पुरुषों के समान सम्मान न मिले। भारत की बहुसंख्यक स्त्री वर्ग शिक्षा से वंचित है। इस वजह से उसे या तो घर की चहारदीवारी में रहना पड़ता है या कृषि कार्य करना पड़ता। आधी आबादी का सबसे बड़ा भाग कृषि कार्य में लगा हुआ है। इन्होंने इस व्यवसाय को शौक से नहीं चुना है। अपितु यह उनकी मजबूरी और अशिक्षा का प्रभाव है। अशिक्षा की वजह से अन्य व्यावसायिक अवसरों से वंचित हो जाती है। "हमारे देश में कार्यरत महिलाओं में से 10 प्रतिशत से अधिक असंगठित क्षेत्र में मजदूरी करने वाले श्रमिक के रूप में संलग्न है। यद्यपि विकास योजना के चार दशक पूरे हो रहे हैं, लेकिन देश की महिला श्रम शक्ति के बहुत बड़े भाग की भूमिका और स्थिति में बहुत कम परिवर्तन हुआ है, जब पुरुषों से तुलना की जाती है तो बहुत सी महिलाएँ निर्धनता, भूमिहीनता, अर्द्ध-बेरोजगारी और भाग्यहीनता के विकार से ग्रस्त नज़र आती हैं। वे अधिकतर

विभिन्न प्रकार के आर्थिक, सांस्कृतिक, लैंगिक और राजनीतिक शोषण का शिकार होती हैं।⁴

मनुष्य की बदलती मनःस्थिति में अर्थ विशेष महत्व रखता है। आधुनिकता के इस दौर में अर्थ ने एक सामाजिक सीमा बाँध दी है। “औरत की समस्या उसकी श्रम की क्षमता की समस्या में न्यूनीकृत की जा सकती है।⁵ किन्तु आधुनिक विकसित यांत्रिकी ने क्षमता के स्तर पर भी स्त्रियों को पुरुष के बराबर खड़ा कर दिया है।⁶ केवल सामन्ती और पूँजीवादी पितृ-तंत्र ही अधिकांश देशों में औरत और पुरुष की एकता को हासिल करने में बाधा देता है।⁷

यह सीमा उनकी सायास उपजी श्रेष्ठता की वजह से है जिससे सम्बन्धों की बदलती परिभाषा में अर्थ ने विशेष स्थान बना लिया है। आज के दौर में लोग सम्बन्धों में भी अपना स्वार्थ ढूँढ़ते रहते हैं। इस बात को लेकर प्रभाकर जी के मन में अजीब सी पीड़ा दिखाई देती है। ‘अर्द्धनारीश्वर’ में श्यामला से एक पुरुष इसलिए विवाह करता है कि उसका भाई दुबई में रहता है। जब श्यामला का भाई अपने बहनोई को वीजा नहीं दिला पाता तो उसे तलाक देकर अपनी प्रेमिका के साथ रहने लगता है। श्यामला के बुरे दिनों में उसके सगे-सम्बन्धी छोड़ देते हैं। इस सम्बन्ध में श्यामला लिखती है कि— “इस दुनिया में सब कुछ पैसा है। पैसा है तो प्यार है, दोस्त है। नहीं तो आदमी लाश के समान है।”⁸ सम्बन्धों के बीच में बढ़ती अर्थ की भूमिका की वजह से मनुष्य के अन्दर संवेदनहीनता उत्पन्न हो रही है जो एक स्वच्छ एवं सभ्य मानसिकता वाले समाज के निर्माण में बाधक है। दूसरे अर्थों में इसे यंत्रवत समाज के निर्माण की प्रक्रिया का प्रारम्भिक चरण कह सकते हैं, जहाँ सब कुछ मशीन बनता जा रहा है।

विष्णु प्रभाकर ने नारी मुक्ति को मात्र आर्थिक स्वतंत्रता में नहीं देखा, उनका मानना है कि इसके लिए समाज में बदलाव आना आवश्यक है। उसके

⁴ नारी : अन्तर्दर्पण व समाज, चन्द्रमोहन अग्रवाल, पृ. 128

⁵ स्त्री : उपेक्षिता, सीमों द बोउवार, अनु. डॉ. प्रभा खेतान, पृ. 45

⁶ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 71

बिना समतामूलक समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। श्यामला इस अर्थ के महत्व के संदर्भ में कहती है कि— “दासता से मुक्ति का अर्थ यह भी हो सकता है कि नर की तरह नारी भी आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो।

निश्चय ही यह अर्थ भी है। आर्थिक स्वतंत्रता अनिवार्य है, पर वही अन्त नहीं है। उन अर्थहीन संस्कारों से मुक्ति पानी होगी जो मनुष्य को दुर्बल और समाज को पशु बनाते हैं। और उन कारणों और उन व्यवस्थाओं से मुक्ति पानी होगी, जो गलत संस्कारों का निर्माण करते हैं। हर युग की अपनी स्मृति होती है और होनी भी चाहिए।”⁷

भारतीय स्त्री कहने मात्र से मानस पटल पर अपने आप एक ऐसी स्त्री सामने दिखने लगती है— जो पति की सेवा करे, उसके सुख-दुःख को अपना समझे, जितने व्रत त्योहार पुरुषों की लम्बी उम्र के लिए किये जाते हैं, करे, सास-श्वसुर की सेवा करे, बच्चों का पालन-पोषण करे, वंश परम्परा चलाये आदि। हमारे समाज में स्त्री के कर्तव्यों की लम्बी-चौड़ी लिस्ट है। भारतीय समाज की पुरातन मान्यता अस्मिता विहीन स्त्री को सम्मानजनक स्थान देती है। जो स्त्री इसकी पारम्परिक दमघोंटू चहारदीवारी से निकलकर खुले आसमान में साँस लेना चाहती है उसे अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व को लेकर सचेत हो उसे हीन दृष्टि से देखा जाता है। आज के भूमण्डलीकरण के दौर में स्त्री ने कुछ-कुछ अपनी पहचान बनाये रखने के लिए पंख खोलने का प्रयास किया है। स्त्री मात्र पत्नी, माँ, बहन, बेटी नहीं अपितु देश की स्वतंत्र नागरिक भी है। उसे भी पुरुष के समान निर्णय लेने का अधिकार है। उनको परम्परा के बंधन से मुक्ति चाहिए। अब कुण्डली-चक्र को आधार मानकर वह पति को स्वीकार नहीं कर सकती। पारम्परिक तरीके से चुने गये मार्ग से विवाह की परिभाषा ही बदल जाती है।

⁷ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 89

प्रभाकर जी ने अपने उपन्यासों में पारिवारिक जीवन की मूलभूत समस्याओं से परिचित कराने का प्रयास किया है। विवाह के उपरान्त मात्र दहेज की समस्या नहीं, अपितु उनके अलावा पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याएँ मूल होती हैं। आज के दौर में बढ़ती स्त्री आत्महत्या की दर महानगरों में सबसे ज्यादा हैं। उसका सबसे बड़ा कारण है उनका अपना बढ़ रहा अवसाद। कुछ परिवारों में अभी भी स्त्रियों को नौकरी करने की इजाजत नहीं है, ऐसी स्थिति में वे स्त्रियाँ या तो समझौता कर लें और अस्तित्व विहीन जीवन जिए। वे चाहें तो इन सबसे छुटकारा पा सकती हैं, जो स्त्रियाँ जबरदस्ती या दबाव में समझौता कर लेती हैं उनमें मानसिक पीड़ा एक बीमारी के रूप में घर कर जाती है। 'कोई तो' में वर्तिका कुन्तल भाभी को इसी अवसाद से बचाने के लिए पुनः पठन-पाठन कार्य का प्रारम्भ करने के लिए प्रेरित करती है। 'स्वप्न' की अलका परिवार, पति और समाज में सामंजस्य बैठाने के प्रयत्न में लगी रहती है। वह आधुनिक विचारों की नारी है, जो अपनी सास की पारम्परिक मान्यताओं के अनुसार चलने का प्रयास करती और अन्त में घोर अन्धकार में विलीन हो जाती है। जब उसका पति उसकी यौन-शुचिता को लेकर प्रश्न उठाता है तो उसको जवाब देती है कि "अब मुझे विश्वास है कि आत्मग्लानि से मैं जहर नहीं खाऊँगी।.... तुम बोलो क्या करूँ।"⁸

हमारे समाज में स्त्री की यौन सुचिता को लेकर चिन्ता आमतौर पर देखी जाती है। 'कोई तो' में वर्तिका के साथ किशोरावस्था में हुए असहज व्यवहार जिसमें उसकी या उसके परिवार वालों की लेशमात्र भी गलती नहीं थी। उसे सुरक्षित ग्वालियर पहुँचाने के लिए उसकी बुआ असद के साथ भेज देती है। रास्ते में धर्म के ठेकेदार बिना पूछ-ताछ किये असद को उठा लेते हैं और वर्तिका को नारी सुधार गृह तक पहुँचा देते हैं। वहाँ से मुक्त कराने के लिए और वर्तिका को अपना बताने के लिए अनेक हिन्दू संस्कृति के रक्षक आ खड़े होते हैं। उनका हिन्दू संस्कृति या नारी के प्रति प्रेम नहीं था अपितु वे उसे भोगना चाहते थे। इस

⁸ स्वप्न, विष्णु प्रभाकर, पृ. 97

पूरी घटना में वर्तिका का अपराध बस इतना था कि बिना किसी संकोच के कहकहे लगा रही थी। इस बात की सज़ा उसे जीवन भर भोगनी पड़ी। उसका प्रेमी तुषार माँ के कहने पर छोड़कर चला जाता है, जबकि तुषार की माँ का सम्बन्ध अन्य पुरुष से रहता है। इसके बाद गोपाल, राजेन्द्र और राकेश अपना प्रणय निवेदन करते हैं परन्तु उसके अतीत की वजह से सब दूर होते चले जाते हैं।

तमाम आलोचनाओं के बावजूद वर्तिका अपने काम पर ध्यान देती है। इसी आत्मविश्वास की वजह से सदियों से चली आ रही वैवाहिक परम्परा को अस्वीकार कर बिना सप्तपदी पढ़े बिना ही नारायण के साथ रहने लगती है। इस बात का विरोध उसके माता-पिता करते हैं, फिर भी अपने फैसले पर अटल रहती है। आधुनिकता के दौर में बदलते स्त्री-पुरुष मानसिकता के हिसाब से प्रभाकर जी को सप्तपदी अनुपयुक्त लगती है। नीलम शशि को पत्र में लिखती है— “मैं कहती हूँ ये सब कायदे पुराने हो गये हैं, अब कोई नया तरीका ढूँढना चाहिए। सप्तपदी ने स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को बहुत दिन निभाया। अब जर्जर हो गई है।”⁹ यहाँ सप्तपदी की जर्जरता से तात्पर्य उसकी रूढ़िग्रस्त पितृसत्तात्मक विचारों से है, जो स्त्री की स्वतंत्रता में बाधक हैं। सप्तपदी के अनुसार पुरुष स्त्री का भगवान है और अब उसे उसके अनुसार ही जीवन-यापन करना है। सप्तपदी में अस्तित्व और अस्मिता-विहीन स्त्री की कल्पना की गयी है।

सदियों से स्त्री को देवी का दर्जा प्राप्त रहा है इस देवत्व की वास्तविक स्थिति से परिचित स्त्रियाँ विरोध कर रही हैं। वे नहीं चाहती कि हमें घर के अन्दर देवी बनाकर पूजा जाये। इस बात पर प्रतिक्रिया करते हुए सुमति मोनिका से कहती है— “मुझे देवी बनाकर पूजना चाहती हो क्या? हम भारतीयों का यही स्वभाव है, जिस व्यक्ति की शिक्षा का पालन हम नहीं करना चाहते, उसको देवता बना देते हैं और वह करने से बच जाते हैं जो उन्हें करना चाहिए। इसीलिए मेरी

⁹ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 198

ननद बाई जी, मुझे पत्थर का देवता मत बनाओ; इन्सान ही रहने दो।”¹⁰ स्त्रियों के पूरे इतिहास पर नज़र डालें तो पाते हैं कि शुरुआती दौर में इनको प्रकृति के समतुल्य मानकर घर में इसकी पूजा की जाने लगी। घर तक सीमित होने पर उनको आर्थिक रूप से पूरी तरह पुरुष पर आश्रित बना दिया और धीरे-धीरे यह आश्रय उनकी गुलामी का कारण बना। कुछ लोग स्त्री की तुलना भूमि से करते हैं, उनका इसके पीछे तर्क है कि जिस प्रकार धरती अन्न, पानी, द्वारा हमारा पालन-पोषण करती है, उसी प्रकार स्त्री भी हमारी वंश परम्परा चलाती है और उसका पालन-पोषण करती हैं। सुमति इसका विरोध करते हुए कहती है “भूमि की तरह नारी को वह अपनी सम्पत्ति समझते हैं।”¹¹ इसी सम्पत्ति समझे जाने का विरोध स्त्री को आदिम युग से मनुष्य के रूप में स्थापित करता है। शास्त्रों में स्त्री को प्रकृति की संज्ञा से अभिहित किया गया है। यह माना जाता है कि प्रकृति जिस प्रकार सृजन करती है उसी प्रकार स्त्री भी है। सामान्य तौर पर देखा जाये तो स्त्री को पृथ्वी या प्रकृति की उपमा से अभिहित करना उचित नहीं लगता बल्कि यह पितृसत्तात्मक समाज का सोचा-समझा षड्यंत्र लगता है। विष्णु प्रभाकर ने इस बात की चर्चा अपने उपन्यासों में बड़े ही सटीक ढंग से की है। परम्परावादियों का मानना है कि जिस प्रकार पृथ्वी के साथ जो चाहो व्यवहार करो, वह प्रतिक्रिया नहीं करती है, उसी प्रकार स्त्री भी है।

4.4 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का राजनीतिक

आधार

स्त्री का राजनीतिक इतिहास बड़ा ही विवादास्पद रहा है। प्राचीन काल से आज तक उसे राजनीतिक स्तर पर स्वीकार नहीं किया गया, फिर भी इसका अंग न होते हुए केन्द्र में बनी रही। स्त्री का राजनीति में रहने का एक कारण

¹⁰ संकल्प, विष्णु प्रभाकर, पृ. 207

¹¹ संकल्प, विष्णु प्रभाकर, पृ. 213

पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषवादी मानसिकता, जो उसे मात्र उपभोग की वस्तु समझता है। आज हम जिस उपभोक्तावादी संस्कृति की बात कर रहे हैं, उसके बीज तत्व सदियों पुराने हैं। इसी संस्कृति ने स्त्री को वस्तु बनाया और फिर मनुष्यता की कतार में भी लाकर खड़ा कर दिया। उन्नीसवीं सदी में औपनिवेशिकता के फलस्वरूप खड़े हुए समाज सुधार आन्दोलनों ने स्त्री को देखने की परिभाषा बदल दी। समय के साथ बीसवीं सदी में राष्ट्रीय आन्दोलनों में स्त्रियों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इसी आवश्यकता ने स्त्री को हाशिए से लाकर मुख्य भूमिका में खड़ा कर दिया। गाँधी जी ने स्त्री-पुरुष के विभेद को समाप्त कर स्त्रियों को राजनीतिक भागीदारी के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा है कि—“यह समझना आवश्यक है कि स्त्रियों की उन्नति का अर्थ क्या है? उनकी उन्नति का प्रश्न तभी उपस्थित होता है, जबकि उनकी अवनति हुई हो, तब हमें यह विचार करना चाहिए कि इस अवनति का कारण क्या है तथा उसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है? हमारा प्रथम कर्तव्य है कि हम इन सभी मुद्दों पर भली-भाँति विचार कर लें। भारत में सर्वत्र यात्रा करते हुए मैंने देखा कि इस सम्बन्ध में जो आन्दोलन चल रहा है, वह अनन्त प्रकाश में छोटी सी बदली की तरह बहुत थोड़े से लोगों तक ही सीमित है। करोड़ों लोगों को इस आन्दोलन का कोई भान नहीं। पिच्चासी प्रतिशत लोग हमारी गतिविधियों से अलिप्त रहकर जीवन बिता रहे हैं..... यदि इनके जीवन में कोई अपूर्णता दिखाई देती है तो वह शेष पन्द्रह प्रतिशत लोगों की अपूर्णता की ही एक झलक है।”¹² गाँधी जी की सक्रियता की वजह से रूढ़िवादी चाहकर भी उनकी भागीदारी का विरोध नहीं कर सके। आन्दोलनों की सफलता ने उनके लिए आगे का रास्ता साफ कर दिया।

स्वतंत्रता के बाद स्त्रियों को संवैधानिक तौर पर समानाधिकार दे दिया गया। इसका मुख्य लक्ष्य था समान एवं न्याययुक्त सामाजिक, राजनीतिक परिवेश

¹² संस्मरण और विचार, गाँधी, पृ. 253

का निर्माण करना। उनको संवैधानिक तौर पर समानाधिकार मिल जाने पर भी सामाजिक समानता आज तक नहीं मिल पाई। सामाजिक असमानता का दबाव इतना बढ़ा है कि संवैधानिक समानता मिलने में समस्या आ रही है। संविधान कहता है कि स्त्रियों को समान योग्यता के लिए समान पद एवं वेतन मिलेगा। उनको सरकार चुनने और सरकार का हिस्सा बनने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। इन सबके बावजूद संविधान लागू होने के साठ वर्ष बाद भी इस दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। इस बात का अन्दाजा 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन के आधार पर लगा सकते हैं, जिसमें महिलाओं को तैंतीस प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया गया है ताकि न्यायसंगत समतामूलक समाज की स्थापना की जा सके। तैंतीस प्रतिशत आरक्षण से संबंधित 84 वाँ संवैधानिक संशोधन आज तक संसद एवं विधान सभाओं में विचाराधीन है। “भारत के संविधान ने महिलाओं को न केवल पुरुषों के समान अधिकार दिये और अनुच्छेद 15-16 में स्त्री-पुरुष के भेद को नकारा अपितु अनुच्छेद 15(3) में राज्य को महिलाओं और बालकों के लिए कोई भी विशेष उपबन्ध बनाने का अधिकार भी दिया। अनुच्छेद 39 (क) पुरुष स्त्री को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्रदान करने के लिए नीति का संचालन करने का निर्देश भी राज्य को देता है। 39 (ख) पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था करता है। अनुच्छेद 325 स्त्रियों को पुरुषों के समान मानता है, वहीं महिलाओं के लिए विशेष उपबन्धों की व्यवस्था कर यह भी अभिलक्षित करता है कि महिलाओं की स्थिति अभी सामान्य तौर पर पुरुषों के समान नहीं है बल्कि उनसे कहीं नीचे है।”¹³

इतनी असमानता होने के बावजूद महिलाओं की राजनीति में भागीदारी राष्ट्रीय स्तर से लेकर पंचायत स्तर तक बढ़ रही है। सबसे बड़ी चिन्ता का विषय है कि उत्तर आधुनिकता के दौर में महिलाओं की राजनीति में भागीदारी के लिए

¹³ महिला और मानवाधिकार, एम. ए. अन्सारी, पृ. 231

आरक्षण की माँग करनी पड़ रही है। ऐसी असामान्य स्थिति पुरुष के सहारे बैठे रहने से उपजी है। स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए खुद ही लड़ना होगा।

पितृसत्ता के दबावों की वजह से स्त्री हर जगह शोषित होती रहती है। 'अर्द्धनारीश्वर' में सुमति पितृसत्तात्मक समाज के विषय में कहती है कि— मैं पुरुषों से नफरत नहीं करती हूँ, उन झूठे मूल्यों से नफरत करती हूँ, जिनके अनुसार नारी पुरुष से हीन है। पुरुष के कुछ विशेष अधिकार हैं, जिनसे नारी वंचित है। पुरुष स्त्री का स्वामी है।¹⁴ स्त्री जब तक पुरुष को इंसान की जगह अपना स्वामी मानती रहेगी, तब तक बहुसंख्यक पुरुष वर्ग की सामन्तवादी मानसिकता में परिवर्तन लाना मुश्किल है। आज के समय में जो स्त्रियाँ राजनैतिक तौर पर जन-प्रतिनिधि चुन ली गयी हैं, उनमें से अधिकांशतः केवल नाम की जन प्रतिनिधि हैं, उनके सारे राजनीतिक फैसले पुरुष ही करते हैं। उनको अगर कोई अधिकार है तो वह है उनके हस्ताक्षर करने का।

कुछ स्त्रियों को राजनीति की स्वतंत्रता नहीं है और जो स्वतंत्र हैं, इसको लेकर काफी उदासीन। उन्हें लगता है राजनीति व्यर्थ का ताम-झाम है, जिसमें उलझने पर हम जिंदगी के अन्य ऐशो-आराम से वंचित हो जायेंगे। दूसरा पक्ष राजनीति का आलोचनात्मक पक्ष जिसमें सम्प्रदाय, क्षेत्रवाद, जातिवाद आदि की वजह से कुछ स्त्रियाँ प्रवेश नहीं करना चाहती, कुछ इससे अनजान हैं और कुछ ऐसी स्त्रियाँ हैं जो राजनीतिक मुद्दों की बहस में भाग लेती हैं लेकिन रुचि नहीं रखतीं। पल्लवी पार्टी के विभाजन के सम्बन्ध में कहती हैं— “विभाजन हमारे रक्त में है। हमें न देश में दिलचस्पी है, न दल में, हमें तो मात्र अपने अहम के विस्तारित होते रहने में रुचि है। दक्षिणपंथी हो, वामपंथी हो या मध्यमार्गी, सब सिद्धान्तवादियों का एक ही स्वभाव है। समाज, देश छूट जाते हैं, दल सब कुछ हो रहता है, इसीलिए मुझे राजनीति में कोई रुचि नहीं है।”¹⁵ प्रभाकर जी ने पल्लवी के माध्यम से उन उच्चवर्गीय की स्थिति से परिचय कराया है, जिनके

¹⁴ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 63

¹⁵ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 68

लिए राजनीति का कोई मतलब नहीं, उनके लिए अर्थ ही सब कुछ है। पल्लवी ने जिन राजनीतिक स्थितियों की ओर संकेत किया— जहाँ राजनीतिज्ञों के लिए देश और देश की जनता कुछ नहीं है। इनके लिए केवल महत्व अवसर का है, भले उनकी विचारधारा के विरुद्ध हो। प्रभाकर जी स्वतंत्रता के पहले और स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक अनियमितता से भली-भाँति परिचित थे।

प्रभाकर जी ने स्कूली राजनीति और उसका बाहरी राजनीति से किस प्रकार गठजोड़ है, इसको 'कोई तो' उपन्यास में दिखाने का सफल प्रयास किया है। वर्तिका के कॉलेज में छात्रान्दोलन अत्यन्त उग्र रूप धारण कर लेता है। ऐसी स्थिति में वर्तिका छात्रों के हितों को ध्यान में रखते हुए आन्दोलन के नेता से सीधे बात करती है और आन्दोलन को शान्त कराती है। इस राजनीतिक परिवेश में छात्रों और नेताओं का तो फायदा होता है, परन्तु अन्य छात्रों का नुकसान होता है। कुछ छात्र अपना हित सोचे बगैर इस राजनीतिक षड्यंत्र के शिकार हो जाते हैं। 'तट के बंधन' में शशि का चरित्र एक स्वतंत्र लड़की का है, जो सत्ता के सिंहासन पर बैठे लोगों की कलई खोलने में तनिक संकोच नहीं करती। जब बैरिस्टर बुधवार के लड़के की शादी में मालती शशि की बातों को सुनती है दुनिया को बदलने के विषय में पूछती है "पर साहस करेगा कौन?"

"हम"।.... "जीजी हम गरीब हैं और गरीबों के किये क्या कुछ होता है?"... गरीबों के किये ही सब कुछ होता है पगली। अमीर लोग मात्र क्रांति का कारण है।¹⁶ शिक्षा की वजह से स्त्रियों में राजनीतिक समझ पैदा हुई जिसे आने वाले समय में एक शुभ संकेत कह सकते हैं।

¹⁶ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 34

पंचम अध्याय

विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का मनोविज्ञान

5.1 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का अतीत

आज जब स्त्री के सामाजिक एवं आर्थिक मुद्दों पर बात करते हैं तो उसका मूल आधुनिकता की परिदृश्य में देखना शुरू कर देते हैं। आधुनिक स्त्रियों की दशा एवं दिशा से प्राचीन स्त्रियों के दशा और दिशा के विषय में बात करना तर्क संगत लगता है। परन्तु पूरी परम्परा का मूल्यांकन किये बगैर उनको और उस युग को महान घोषित कर देना उचित नहीं है। जैसा कि अधिकांश विद्वान मानते आये हैं कि प्राचीन काल में स्त्रियाँ वेद एवं शास्त्रों का अध्ययन करती थीं, शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों के समान अधिकार था। अगर स्त्रियों के सम्पूर्ण इतिहास का पुनर्मूल्यांकन किया जाये तो यह स्थिति एकदम अलग है। दो चार, दस या हजार स्त्रियों ने प्राचीन समय में शिक्षा प्राप्त भी कर ली तो कैसे कहा जा सकता है कि आधी आबादी को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे ? क्या आधी आबादी में दस-बीस को शिक्षित मानकर उस काल को स्वर्ण युग कहकर गुणगान करना तर्कसंगत है ? इन सवालों का जवाब हमें पुरुष सत्तात्मक इतिहास में ही मिल जाता है। कुछ धर्मान्ध लोगों का मानना है कि मुगलकाल के बाद स्त्रियों की स्वतंत्रता छीनी गई और पर्दा प्रथा तथा सती प्रथा जैसी अमानवीय प्रवृत्ति का जन्म हुआ। जब सती प्रथा की ऐतिहासिकता पर विचार करते हैं तो इसके आरम्भ का बीज तत्व हमें गुप्त काल से ही दिखाई देता है। उस समय तो कोई मुसलमान शासक नहीं था, न ही कोई गैर भारतीय राजा।

स्त्रियों की दुर्दशा की पृष्ठभूमि तो वैदिक काल में ही शुरू हो गई थी, जो प्राचीन काल आते-आते एकदम पुष्ट हो गई। अब स्त्री एक वस्तु मात्र रह गयी। स्त्री की स्थिति का पता इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसको उपहार या दान में दिया जाने लगा था। भारतीय या कह लीजिए कि हिन्दू धर्म की परम्परा

में स्त्री को छोड़कर इंसानियत की बड़ी-बड़ी परिभाषाएँ दी गयी। आधी आबादी की उपेक्षा करने वाला समाज या धर्म कितना मानवीय हो सकता है, यह भी सोचने योग्य बात है। 'मनुस्मृति' जिसे हिन्दू धर्म या ब्राह्मणवाद का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना गया है, उसमें स्त्री स्वतंत्रता के विषय में लिखा गया है कि—

“अस्वतन्त्रतः स्त्रियः कार्याः पुरुषै स्वैर्विवानिशम्।

विषयेषु च सज्जन्त्य संस्थाप्या आत्मनो वशे।।”¹⁷

अर्थात् पति अपनी स्त्रियों को रात-दिन स्वतंत्र न रहने दें; आनन्दित विषयों में लगी हों तो उन्हें अपने वश में रखें। उपर्युक्त श्लोक/वचन को सुनकर शायद ही किसी स्त्री के मन में घृणा का भाव न आये। पुरुष दुनिया के सारे व्यसनों में डूबा रहे, खुश रहे, उसकी स्वतंत्रता में कोई बाधा न आये, परन्तु वहीं स्त्री को न स्वतंत्रता का अधिकार है, न खुश रहने का। इससे अधिक गलाघोटूँ व्यवस्था आधी आबादी के लिए और क्या होगी? मनुस्मृति में तो यह भी तय कर दिया गया है कि कब स्त्री को किसके अधीन रहना चाहिए—

“पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।

रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।”¹⁸

अर्थात् 'बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र स्त्रियों की रक्षा करें, स्त्रियाँ कभी स्वतंत्र न रहें।'

शास्त्रों में स्त्री को एक ऐसी वस्तु समझा गया है जो पुत्र उत्पन्न करे, पति की सेवा करे, खाना बनाये आये गये अतिथियों का ध्यान रखे। इसके अलावा उसकी कोई स्वतंत्र पहचान नहीं है उसके इस रूप को लक्ष्मी नाम दिया गया है,

¹⁷ मनुस्मृति/9/2/ 241

¹⁸ मनुस्मृति 9/3/242

जिसका चरित्र ही है चंचलता या किसी एक की होकर न रहना। मनुस्मृति में स्त्री की विशेषता बताते हुए लिखा गया है—

“प्रजनार्थी महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।

स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु विशेषोऽस्ति कश्चन।”¹⁹

अर्थात् ‘यह पुत्र को उत्पन्न करती है। इसलिए भाग्यवती सत्कार के योग्य और गृहशोभा है। घर में श्री और स्त्री में कुछ भी विशेषता नहीं है, अर्थात् जैसे लक्ष्मी के बिना घर की शोभा नहीं है, ऐसे ही स्त्री के बिना घर की शोभा नहीं है।’

पितृसत्तात्मक समाज में अर्थ और शिक्षा से सदियों से वंचित रहने के कारण पुरुष को ही सब कुछ मान लिया। पुरुष द्वारा थोपे गये नियमों को अब पुरुष नहीं अपितु स्त्री ही खुद थोपने लगी है। ये स्त्रियाँ कब पितृसत्ता को बनाये रखने में अहम भूमिका निभाने लगी। इनको भी इस बात का पता नहीं चला। पुरुष प्रतिनिधि स्त्रियों की संवेदना स्त्री के प्रति पुरुषवादी रवैये जैसी ही रही। उसी ने उसके अस्तित्व को मिटाने का प्रयास किया और मान लिया कि पुरुष ही सब कुछ है। “औरत की चेतना सामाजिक परिस्थितियों और समाज पर ही निर्भर करती है। उसके समस्त मनोवेग, जीवन तथा अचेतन को अंतः कृत करते हुए मनोविश्लेषण की भाषा वास्तव में उसके वैयक्तिक जीवन की घटनाओं को अभिव्यक्त कराती है।”²⁰

विष्णुप्रभाकर ने आधुनिक स्त्री की प्राचीन मानसिकता की ओर संकेत करने का भरसक प्रयास किया है। ‘अर्द्धनारीश्वर’ में सुमति की दूर की मामी उससे कहती हैं कि— “जानती हूँ संतान माँ की होती है पर कानूनी मान्यता उसे पिता से मिलती है। जब तक यह अन्याय नहीं मिटता तब तक हम संतान को क्यों दण्डित करें? माँ बनने से पूर्व विधिवत् भार्या बनना होगा तुझे।”²¹ जिस समाज में

¹⁹ मनुस्मृति 26/9/245

²⁰ स्त्री :उपेक्षिता,सीमओं द बोउवार, अनु. डॉ. प्रभा खेतान, पृ. 41

²¹ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 26

स्त्री ही स्त्री के शोषित होने का मार्ग बता रही हो, उस समाज में पुरुष की क्या दशा रही होगी, इसका अन्दाजा इससे ही लगाया जा सकता है। पुरुषवादी मानसिकता की गुलाम नारी जिन्दगी भर उसकी सलामती की चिन्ता में लगी रहती है। उसका सुख-दुःख सब उसके पति तक ही सीमित रहता है। जिस भारतीय नारी का संकेत पण्डित गौरीदत्त ने 1870 में किया था, वही भारतीय नारी हमें विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में सौ वर्ष के बाद भी दिखाई देती है। 'देवरानी-जेठानी' की कहानी में एक पिता अपनी पुत्री को शिक्षा देते हुए कहता है कि— "बेटी सास-ससुर की सेवा करना, आये गये का खयाल रखना, अपनी ननद को बहन के समान समझना..... अच्छे कुल की स्त्रियों की पहचान है कि दुःख सहते हुए दूसरों की सेवा करना।"²² वहीं जब 'संस्कार' उपन्यास में देखते हैं तो एक स्त्री (माँ अपनी बेटी) दूसरी स्त्री को विदाई के समय शिक्षा देते हुए कहती है कि— "रास्ते में जो कुछ भी दिखायी दे उसे पैरों पड़ना, कहना और अपने सुहाग का वरदान माँगना।"²³ सौ सालों के अन्तर में दोनों स्त्रियों की मानसिकता में कोई खास परिवर्तन नहीं आया। दोनों में अन्तर बस इतना था कि एक नवजागरण काल की स्त्री थी और दूसरी आधुनिकता के शुरुआत की। 'संस्कार' की यह नायिका प्राचीन संस्कारों से मुक्त नहीं हुई उसकी "बेटी ने यही किया। आदमी, औरत पेड़ झाड़ी, नदी, तालाब, पशु-पक्षी सभी को वह पैरों पड़ना कहती।"²⁴

विष्णु प्रभाकर ने पौराणिकता को लेकर प्रत्येक युग में स्त्री में स्त्री के प्रति क्या संवेदना रही होगी, इस ओर संकेत पार्वती के माध्यम से किया है। वह कहती है कि— "नारी-नारी के दर्द को नहीं पहचानेगी तो कौन पहचानेगा।"²⁵ करवा चौथ की मिथकीय कथा को लेकर आधुनिक समाज में जी रही उस पारम्परिक नारी का चित्रण किया है। उसकी असहनीय पीड़ा को उसके पति को

²² देवरानी जेठानी की कहानी, पण्डित गौरीदत्त, पृ. 18

²³ संस्कार, विष्णु प्रभाकर, पृ. 15

²⁴ वही, पृ.15

²⁵ वही, पृ.16

लिखे पत्र में देखा जा सकता जिसमें रम्मो लिखती है “काश! आजकल भी शिव पार्वती इस दुनिया में आते होते तो देख पाते कि उस बेटी जैसी एक और नारी मृत पति को लेकर नहीं, बल्कि एक जीवित पति को लेकर रो रही है। माँग में सिन्दूर भरकर भी वह सुहाग से वंचित है।”²⁶ पति से उपेक्षित रहकर भी वह उस स्त्री की पीड़ा को महसूस करती है और लिखती है— “सोचती हूँ, उस बेटी की क्या दशा हुई होगी? क्या उसका दिल विदीर्ण नहीं हो गया होगा? कभी—कभी मुझे ऐसा लगता है कि जैसे तीस साल के इस लम्बे जीवन में मैंने भी प्रतिपल उस दर्द का अनुभव किया है।..... यह मैं क्या लिख गई। मेरे सुहाग पर तो कभी संकट नहीं आया। भले ही मेरा हाथ काँपा हो, लेकिन माँग में सिन्दूर भरने का मेरा अधिकार आज तक कोई नहीं छीन सका। यह दूसरी बात है कि जिसके लिए सिन्दूर भरती हूँ, वह हमेशा मेरे लिए दर्पण का व्यक्ति बना रहा, आँखों का नहीं बन पाया।”²⁷ जिस पुरुष ने कभी ध्यान नहीं दिया, न उसकी पीड़ा को समझा, उसके प्रति इतनी अन्धश्रद्धा यह उसके संस्कारों का ही दबाव है, जिसको तोड़ने में वह अक्षम है। वह केवल सवाल उठाती है, “जिस नारी को उसका पति ही न चाहे, तो उसे और कौन चाहेगा। कैसा है, हमारा यह जड़ धर्म विधान। नारी स्वयं में कुछ नहीं है। पति को लेकर ही आत्मीयता, सहानुभूति और आकर्षण उसे मिलता है।”²⁸

विष्णु प्रभाकर जी ने अपने संस्कारों में सिकुड़ी नारी को सामान्य रूप में प्रस्तुत करके विशेष बना दिया है। उसके प्रश्न पूरी व्यवस्था को कुरेदते हैं, जिसमें स्त्रियों के लिए केवल संवेदनात्मक सहानुभूति मात्र है, वह भी पितृसत्ता के दायरे में। विधवा पुनर्विवाह की समस्या को उठाते हुए लिखते हैं— “नारी विवश कर दी जाती है कि वह पुरुष के बिना रहे। इसीलिए हमारे शास्त्रों में हिन्दू विधवा को दुःख की प्रतिमा मानकर भी स्वर्ग की देवी बना दिया गया। बड़े

²⁶ संस्कार, विष्णु प्रभाकर, पृ. 6

²⁷ संकल्प, विष्णु प्रभाकर, पृ. 15

²⁸ वही, पृ. 22

गौरव के साथ वे लोग कहते हैं कि “हिन्दू विधवा ने संसार के दुःख का भार अपने सिर पर ले लिया है। उसने दुःख को सुख बना डाला है, धर्म बना डाला है।” क्या कभी उन्होंने सोचा कि दुःख को सहन करना धर्म है या अधर्म? क्या कभी उन्होंने सोचा कि जिस वैधव्य को हिन्दू धर्म का श्रृंगार कहा जाता है, उसकी वेदना कितनी मर्मांतक है।²⁹ उपर्युक्त तथ्यों की ओर ध्यान दिया जाये तो हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि धर्म जैसी संस्था ने स्त्रियों का कितना हित चाहा है। समाज में प्रायः धर्म की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है जो धारण किया जा सके वह धर्म है, पर यहाँ वास्तविकता एकदम अलग दिखाई देती है। शुरुआती दौर में मनुष्य के केन्द्र में धर्म था न कि धर्म के केन्द्र में मनुष्य। अर्थात् जो विचारधारा सम्पूर्ण मानवता के कल्याण में सहयोगी हो, वही धर्म है। धर्म की बदलती परिभाषा ने मनुष्य को केन्द्र में न रखकर उसे स्त्री-पुरुष के रूप में देखने का प्रयास किया।

5.2 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का वर्तमान

आधुनिक युग की शुरुआत साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से उन्नीसवीं सदी से माना जाता है। कुछ विद्वान 1857 की क्रांति के बाद तो कुछ नवजागरण की शुरुआत से मानते हैं। दोनों पक्षों पर विचार किया जाये तो एक साहित्य की और दूसरा ऐतिहासिक दृष्टि से तर्क संगत लगता है। नवजागरण की शुरुआत भारत में उन्नीसवीं सदी के दूसरे-तीसरे दशक में हुई। भारतीय नवजागरण पश्चिम के नवजागरण (रेनासाँ) से एकदम अलग था। पश्चिम में यह कला और साहित्य को लेकर हुआ और भारत में समाज सुधार मुद्दों को लेकर। भारतीय नवजागरण के प्रमुख मुद्दे—सती प्रथा, स्त्री सम्पत्ति, विधवा—पुनर्विवाह, कन्या—वध, जाति—प्रथा, स्त्री—शिक्षा, गोवध आदि थे। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय ने सर्वप्रथम सती प्रथा जैसी अमानवीय प्रथा का घोर

²⁹ संकल्प, विष्णु प्रभाकर, पृ. 29

विरोध किया तथा इसे कानूनी तौर पर असंवैधानिक घोषित कराने में सफल प्रयास किया। यही स्त्री मुक्ति या कह लीजिए स्त्री अस्मिता के संघर्ष का प्रथम चरण था।

सन् 1857 की क्रांति की दयनीय दास्ताँ से कौन परिचित नहीं है। उसके बाद भारत में एक नये बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ, जिसने अपनी पारम्परिक सोच को बदला, जिसके फलस्वरूप सन् 1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। 1857 की क्रांति के समय भारतीय साहित्य में भी एक नई क्रांति आयी, जिसकी वजह से उपन्यास, निबन्ध जैसी विधा का उदय हुआ। भारत में जो प्रारम्भिक उपन्यास लिखे गये थे वे हमको तीन रूपों में देखने को मिलते हैं— एक भारतीय पद्धति पर लिखे गये उपन्यास, दूसरे पश्चिमी पद्धति पर लिखे गये उपन्यास, तीसरा भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों पद्धतियों पर। आश्चर्य की बात यह है कि लगभग सभी भारतीय भाषाओं में पहली बार उपन्यास लिखे गये सबके केन्द्र में स्त्री ही थी। उदाहरणस्वरूप बंगला, उड़िया, मराठी, उर्दू—हिन्दी आदि भाषाओं को देखा जा सकता है।

भारतीय नवजागरण हिन्दी नवजागरण से एकदम अलग था। भारतीय नवजागरण जहाँ अखिल भारतीय था, वहीं हिन्दी नवजागरण केवल हिन्दी प्रदेशों तक ही सीमित था। हिन्दी नवजागरण में वह व्यापकता नहीं दिखाई देती जो कि भारतीय नवजागरण में। हिन्दी साहित्य के प्रमुख रचनाकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र भी विधवा पुनर्विवाह और स्त्री—शिक्षा जैसे मुद्दों पर कोई स्पष्ट निर्णय नहीं दे सके। प्रताप नारायण मिश्र ने कुल की मर्यादा इसी में मानी कि वे दुःख सहते हुए अपने धर्म की रक्षा करें। वहीं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र शिक्षा प्राप्त कर बाजार में कापी—किताब खरीदते लड़कियों पर दुःख प्रकट करते हुए कहते हैं— “हाय। एक वह दिन थे कि हमारे यहाँ सतीत्व उस पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था कि जीते जल जाना तक रिवाज हो गया था, और एक दिन है कि पतिव्रता ढूँढे मिलना कठिन है। हम यह तो नहीं कह सकते हैं कि सारी स्त्रियाँ रुक्मिणीबाई की साथिनी हो रही हैं पर इसमें भी संदेह नहीं है

कि पति के सुख-दुःख में अपना सचमुच दुःख-सुख समझने वाली, पति की प्रतिष्ठा का पूरा ध्यान रखने वाली, पति से सच्चा स्नेह निभाने वाली स्त्रियाँ भी हजारों में दस ही पाँच हो तो हों।³⁰ जहाँ स्त्रियों के आत्म निर्भर होने पर खुश होना चाहिए, वहाँ दुःख प्रकट कर रहे हैं। स्त्रियों की त्रासद स्थिति का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है।

उन्नीसवीं सदी में स्त्रियों को शिक्षा देने की बात की जा रही थी वह मात्र घर चलाने की थी। इस शिक्षा का मात्र इतना ही उद्देश्य था कि स्त्रियाँ घर का काम अच्छे ढंग से कर सकें, बच्चों का पालन-पोषण कर सकें, आये-गये का ध्यान रख सकें और घर में सास-ससुर, देवर-ननद की देख-भाल कर सकें। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ-साथ उस समय के हिन्दी के लगभग सभी रचनाकार स्त्रियों को इसी प्रकार की शिक्षा देने का समर्थन कर रहे थे। उनका कहीं उद्देश्य नहीं था कि स्त्रियाँ उच्च-शिक्षा प्राप्त करें और पुरुष के समान नौकरी करें। इस सम्बन्ध में आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती स्त्रियों को पुरुषों से अलग शिक्षा की माँग जिस तरह से कर रहे थे, उससे लगता है कि उनका दृष्टिकोण समतावादी नहीं था। इस सम्बन्ध में 'संकल्प' की नायिका और खुद विष्णु प्रभाकर की माँ को देखा जा सकता है।

भारतीय नवजागरण ने जनमानस में चली आ रही पारम्परिक रूढ़िवादी सोच को बदलने में अहम भूमिका निभाई। यह पश्चिम के 'रेनेसाँ' से एकदम अलग था, पश्चिम में रेनेसाँ (पुनर्जागरण) कला और साहित्य के क्षेत्र में हुआ था। वही भारत में समाज सुधार मुद्दों को लेकर। धर्म, संस्कृति, राजनीति और समाज की बदलती धारणा ने सदियों से उपेक्षित आधी आबादी के विषय में सोचने का नया दृष्टिकोण विकसित किया। भारतीय नवजागरण के प्रमुख मुद्दे— बहु-विवाह, बाल-विवाह, विधवा विवाह, भ्रूण हत्या, बहुपत्नी विवाह, बहुपति विवाह, स्त्री-शिक्षा, पर्दा प्रथा आदि प्रमुख थे। इस काल के समाज सुधारकों ने इन

³⁰ प्रतापनारायण, ग्रंथावाली, सं. विजयशंकर मल्ल, पृ. 133

समस्याओं को विशेष रूप से उठाया। परन्तु बदलते समय में बहुसंख्यक वर्ग की मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं आया। इस संदर्भ में विष्णु प्रभाकर के उपन्यास 'संस्कार' की नायिका और उसका जीवन संघर्ष देखा जा सकता है। संस्कार की नायिका का विवाह बचपन में ही हो जाता है। जब वह बड़ी होती है, तो उसका पति जो कि पढ़ा-लिखा विद्वान है उसकी ख्याति विश्वभर में फैली हुई है। वह अपनी इस पत्नी की परवाह किये बगैर कई विवाह करता है परन्तु उसकी पत्नी संस्कारों का बोझ उठाये चल रही है। वह अपनी इस दशा के लिए पति या समाज को दोषी नहीं ठहराती बल्कि मान लेती है कि मेरे भाग्य में पति नहीं था। उसका यह संतोष मात्र एक स्त्री विशेष का नहीं है, बल्कि भारत भारत की बहुसंख्यक स्त्रियों की है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुष हमेशा से स्त्री पर अपना अधिकार समझता रहा है। वहीं उसके जीवन जीने के सारे नियम बनाता आया है। स्त्री कभी भी अपने अनुसार चलने के लिए स्वतंत्र नहीं रही है। एक तरह से हम समझ सकते हैं कि भारतीय स्त्रियाँ वह गाय रही हैं, कि उसको किस खूँटे से बाँधना है, इसका निर्णय मालिक ही करेगा। मालिक चाहे तो उसे खाना दे या ना दे। हमारे समाज में पिता और पुत्री का सम्बन्ध उतना करीबी नहीं होता, जितना कि पिता और पुत्र का। प्रायः बहुसंख्यक वर्ग की चिन्ता बनी रहती है, वंश परम्परा चलाने की। प्राचीन काल की स्त्री ने इस बात पर प्रश्न उठाये बिना सब कुछ स्वीकार कर लिया। अब इस धारणा में धीरे-धीरे बदलाव आया है। जिसके फलस्वरूप स्त्री भी प्रश्न करना शुरू कर दी है कि क्या बेटी से वंश सुरक्षित नहीं रहता ?

आधुनिकता ने कुछ पढ़-लिख गई स्त्रियों को सशक्त बना दिया है। वे अपने साथ अमानवीय व्यवहार नहीं होने देतीं अपितु उसका डटकर मुकाबला कर रही हैं। 'कोई तो' की नायिका इसका जीता-जागता प्रमाण है। वर्तिका जिसका वास्तविक नाम सुविधा है वह अपनी किशोरावस्था में ऐसे अपराध के लिए जेल जाती है, जिसे उसने किया ही नहीं है। वह अपनी बुआ के घर जाती है, इसी

समय उसे याद आता है कि उसको इण्टरमीडिएट का फार्म भरना है। सुविधा (वर्तिका) ग्वालियर अकेले जाना चाहती है, पर उसकी बुआ मन ही मन एक अज्ञात भय के विषय में सोचती है कि 'फार्म नहीं गया तो केवल एक साल बेकार जायेगा, लेकिन अकेले जाने पर कोई दुर्घटना हो गई तो सात जन्म बिगड़ जायेंगे।' ³¹ इस भय की वजह से वह सुविधा के पिता के साथ काम करने वाले शेख जान मोहम्मद के बेटे के साथ भेज देती है। भेजते समय कहती है कि— "इसका ध्यान रखना, बेटे! इधर—उधर न भटक जाये। दिल्ली तो जंगल है। भीड़—सी—भीड़ ही होती है वहाँ। ना बाबा, तू तो मरद बच्चा है, यह ठहरी औरत जात....." ³² वर्तिका की बुआ का यह अज्ञात भय उसकी सदियों से चली आ रही परम्परा के रूप में मिला है। वह समाज के कुरूपताओं और अन्धेपन से भली—भाँति परिचित है। उसका यह अज्ञात भय दिल्ली पहुँचते—पहुँचते मूर्त रूप धारण कर लेता है। रास्ते में जाते समय वर्तिका इतने खुले तौर से व्यवहार करती है कि बस में बैठे लोग मान लेते हैं कि यह इस मुस्लिम युवक के साथ घर से भागकर आयी है। हिन्दू धर्म के ठेकेदार असद को वहीं से दबोच लेते हैं और वर्तिका को अपने परिचित पहाड़गंज छोड़ने जाते हैं परिचित के नहीं मिलने से पुलिस के हवाले कर देते हैं। फिर वर्तिका अपने दूर के मामा प्रभात कुमार को बताती है। उनके काफी मशक्कत करने के बाद वर्तिका घर वापस आती है। जब वर्तिका जेल जाती है तो उसके जमानदारों की भीड़ लग जाती है। कुछ तो उसके रिश्तेदार तक बन जाते हैं। ऐसे लोग उसकी मदद किसी धर्म या मानवतावाद से प्रेरित होकर नहीं करना चाहते थे अपितु यह जमानत और अपने होने का नाटक उसे भोगने तक ही सीमित था।

वर्तिका अपने अतीत को भूलना चाहती है, पर वह है कि उसका पीछा ही नहीं छोड़ता। उसने जो अपराध किया ही नहीं, उसकी सजा कई रूपों में भोगनी पड़ती है। उसके जीवन में जितने भी पुरुष आते हैं, उनको अपनी कहानी बताती

³¹ कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 8

³² वही, पृ. 8—9

है। तुषार जो कि उसका प्रिय है उससे शादी भी करना चाहता है परन्तु वर्तिका का इतिहास जब अपनी माँ के सामने रखता है तो उसकी माँ उसे अस्वीकार कर देती है। वह यह मानने को तैयार ही नहीं कि वर्तिका निर्दोष है। तुषार की माँ खुद पातिव्रत्य से विश्वासघात की अनैतिकता में ऐसी डूबी है कि तुषार उससे जब प्रश्न करता है कि क्या जो तालाब में डूबा था वह मेरा पिता था ? या वह जिसके साथ तुम रही ?³³ ऐसी स्थिति में भी उसकी माँ अपने फैसले को नहीं बदलती। इससे बड़ी विडम्बना इस समाज की क्या होगी कि जो कीचड़ में स्वयं गहरे तक धँसा हो वह दूसरे को मात्र थोड़ा-सा धब्बा, वह भी झूठा लग जाने की वजह से उसे अपवित्र मानता हो। तुषार अपनी माँ का विरोध नहीं कर पाता। अन्ततः विदेश चला जाता है, वहाँ किसी अन्य स्त्री से शादी कर लेता है। वर्तिका की कई पुरुषों से मित्रता होती है। उसके सहकर्मी से लेकर लेखक और समाजवादी भी उसकी सच्चाई को स्वीकार नहीं कर पाते। राकेश जो एक मंत्री का बेटा है और स्वयं मंत्री भी है, जब वर्तिका उसके प्रेम प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है तो वह उसके लिए घृणा की पात्र बन जाती है। वह रति से कहता है कि “मैंने सुना भी है। कोई रहस्य है, उसके जीवन में। कौमार्य में किसी मुसलमान युवक के साथ भागती पकड़ी गयी थी.....।”³⁴ वहीं राजेन्द्र के प्रति उसके मन में कहीं अच्छे विचार आते भी हैं तो वह समाजवादी उद्योगपति की बेटी के साथ हो लेता है और पूर्व में वर्तिका से किये गये सारे प्रणय निवेदन भूल जाता है। अन्ततः वर्तिका नारायण के साथ रहना स्वीकार करती है। वह अनाथ है। वर्तिका अपने इस सह-गृहवास में शादी-विवाह जैसा ढोंग नहीं करती। इस वजह से उसके पिता उस पर नाराज़ हो जाते हैं। वह मानती है कि सप्तपदी पढ़ने मात्र से विवाह नहीं हो जाता। आखिर क्यों अपने कंधों पर सदियों पुरानी रूढ़िवादी परम्परा की लाश को ढोया जाये।

³³ कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 103

³⁴ कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 216

विवाह से पूर्व वर्तिका की मुलाकात असद से होती है। वह उसके शादी नहीं करने के विषय में पूछता है, तो बताती है कि— “पूर्वाश्रम में तुम असद थे, तब तुम्हारे साथ भाग गई थी मैं। भ्रष्टा हूँ और भ्रष्टा वेश्या हो सकती है, गृहिणी नहीं। गृहिणी किसी ने मुझे बनाया नहीं, वेश्या मैं स्वयं नहीं बनी, सो यहाँ हूँ महानगर में। यहाँ सब कुछ निर्वैयक्तिक है, किसी को किसी की चिन्ता नहीं।”³⁵ उपरोक्त कथनों के आधार पर हम यह अन्दाजा लगा सकते हैं कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की क्या दशा है। पुरुष अगर पतित होता है तो उसे समाज बिना किसी शर्त के स्वीकार कर लेता है, पर वहीं अगर स्त्री होती है, तो उसके गले के नीचे नहीं उतरती है। कुन्तल अपनी ननद की जगह अपने को बलात्कारियों को सौंप देती हैं और बाद में वही ननद उससे नफरत करने लगती है। कुन्तल वर्तिका से कहती है कि—“नंदिता मुझसे नफरत करती है।³⁶ यह बात अनिरुद्ध से कहती है कि— तुम तो नफरत नहीं करते कुन्तल से।.....तुम्हारी डायरी पढ़ चुकी है भाभी।..... हम पारम्परिक संस्कारों के दास हैं। संस्कारों ने मन की स्वतंत्रता को नष्ट कर दिया है। कोई तो इनकी सत्ता को नष्ट करेगा। वह ‘कोई तो’ क्या तुम नहीं हो सकते।”³⁷ संस्कारों ने मनुष्य को मनोवैज्ञानिक रूप में ऐसे दबा दिया है कि वह अनुवांशिक मनोरोग जैसा पीढ़ियों से चला आ रहा है। कुन्तल जिस पति और ननद को बचाने के लिए अपने को दुराचारियों के हाथों सौंप देती है वही उन्हीं की दृष्टि बलात्कार के बाद एकदम बदल जाती है। ऐसी ही स्थिति ‘अर्द्धनारीश्वर’ की नायिका सुमति में देख सकते हैं।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री पुरुष के बनाये गये नियमों की वजह से घृणा करती है तो इसमें उसका नहीं अपितु पूरी परम्परा का ही दोष है जिसमें स्त्री को मात्र वस्तु माना गया है। नैतिकता का सारा बोझ उठाने का सारा जिम्मा स्त्री ने ही ले रखा है। एक स्त्री अपने साथ हुई ज्यादतियों के विषय में बताते हुए कहती

³⁵ कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ.—60

³⁶ वही, पृ. 287

³⁷ वही, पृ. 287—88

है कि— “सोचती हूँ यह न होता तो क्या मैं वकील के जिरह को सह पाती ? मेरे पति ने मेरी इस यातना की कल्पना की और मौन हो गये। मुझे याद है वे बहुत तड़पे थे लेकिन जैसा हमारा समाज है, हमारे संस्कार हैं, उसमें और भी क्या हो सकता था? उन्होंने कई दिन बाद कहा था कैसी है हमारी नैतिकता, इन्सानियत के प्रति इतना बड़ा जघन्य अपराध केवल इसी छद्म नैतिकता के कारण दण्डित हुए बिना रह गया।’ कौन तोड़ेगा नैतिकता के इस आत्मघाती चक्रव्यूह को.... ? मेरा अपना मन तो जैसे पुरुष के प्रति अपार घृणा से उमड़-उमड़।”³⁸

नैतिकता के जिस प्रश्न को बलात्कार पीड़ित स्त्री ने उठाया है वह आधी आबादी का सच है। ज्यादातर बलात्कार पीड़ितों को न्याय नहीं मिल पाता है क्योंकि लोग इसे अपने सम्मान का प्रश्न बना लेते हैं। बहुसंख्यक वर्ग की सबसे बड़ी समस्या है कि वह अपने साथ हुए दुर्व्यवहार का प्रतिकार नहीं करता। वह चाहता है कि इसके लिए कोई और लड़े और उसका नाम भी नहीं आये। अपने को बचाकर रखना और किसी दूसरे से बड़े आन्दोलन या सुधार की आकाँक्षा अनैतिकता की शिकार होने से बचाती नहीं, अपितु नैतिकता का हनन करती है। देखा जाये तो नैतिकता की बात करने का वही अधिकारी है जिसने इसको बचाने के क्षेत्र में कार्य किया हो और हमेशा स्त्री-पुरुष के विषय में सामान्यतः पक्षपात रहित राय रखता हो। इस बात को विष्णु प्रभाकर ने अपने उपन्यास ‘कोई तो’ की मार्फत (विधिवत) बखूबी उठाया है। वहीं ‘संस्कार’ में एक स्त्री पति के जीवित रहते हुए भी विधवाओं जैसी जिन्दगी जीने के लिए विवश कर दी जाती है या संस्कारों से मुक्त होना चाहती है। परन्तु मुक्त नहीं हो पाती है। वह उसी में जीने में गर्व महसूस करती है। ‘संस्कार’ की नायिका अपने पति को कभी भी संकट में देखना नहीं चाहती। वह अपने पत्र में लिखती है कि “मेरे सुहाग पर तो कभी संकट नहीं आया। भले ही मेरा हाथ काँपा हो, लेकिन माँग में सिन्दूर भरने का मेरा अधिकार आज तक कोई नहीं छीन सका। यह दूसरी बात है कि जिसके

³⁸- कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 287

लिए सिन्दूर भरती हूँ वह हमेशा मेरे लिए दर्पण का व्यक्ति बना रहा, आँखों का नहीं बन पाया।”³⁹

संस्कारों की वजह से एक स्त्री अपना जीवन इंतजार में काट देती है, हमेशा पतिव्रत्य के प्रति सचेत रहती है। वहीं स्वप्न (स्वप्नमयी) की अलका आधुनिकता और परम्परा के बीच पिसती रहती है। जब उसके सामने शुचिता का प्रश्न आता है तो वह सीधे उसका प्रतिकार करते हुए कहती है— “अब भी मुझे विश्वास है कि आत्मग्लानि से मैं जहर नहीं खाऊँगी। सामाजिक भय से कहीं जाकर छिपूँगी भी नहीं। मैं तुम्हारे हृदय के सिंहासन पर बैठी रहूँगी, अपना अधिकार आसानी से नहीं छोड़ूँगी, क्योंकि ऐसा करने का अर्थ होगा दुनिया को यह बताना कि मेरे योग्य आज की दुनिया में कोई है ही नहीं। मैं नये समाज की सृष्टि में विश्वास करती हूँ। मैं मनुष्य की अक्षय शक्ति में विश्वास करती हूँ लेकिन फिर भी मेरे स्वामी, मैं तुम्हारी घृणा नहीं सहना चाहती। तुम बोलो, क्या करूँ ?”⁴⁰

बदलते समय के साथ स्त्रियों में आये परिवर्तन ने उसे नई दृष्टि दी है। अब उसके लिए पुरुष केवल पुरुष होता है। वह उसे भगवान नहीं बनाना चाहती और न ही देवी बनने की आकांक्षी हैं। उसको यह दृष्टि सदियों का अपमान, शोषण, पीड़ा ने दिया है, इसलिए संस्कार की नायिका सब कुछ सहती है लेकिन एक जगह कहती है कि— “कमजोरी भी कभी-कभी किसी को सशक्त बना देती है।”⁴¹ वहीं ‘अर्द्धनारीश्वर’ की राजकली को अमानवीय हिंसा ने कमजोर नहीं बनाया। वह अपने ऊपर पुलिस द्वारा किये गये व्यवहार और अन्याय के प्रति दृढ़ता व्यक्त करते हुए कहती है “मैं किसी से नहीं डरती। क्यों डरूँ, मैंने कोई बुरा करम नहीं किया। मेरे साथ बुरा काम हुआ है। मैं वही हूँ मैं जो पहले थी, वे

³⁹- संस्कार, विष्णु प्रभाकर, पृ. 15

⁴⁰- स्वप्न, विष्णु प्रभाकर, पृ. 97

⁴¹- स्वप्न, विष्णु प्रभाकर, पृ. 34

मानते रहें मुझे पापिन। मैं तो कहती हूँ, पापी वे हैं जो मुझे पापिन कहते हैं।”⁴² इसी तरह ‘निशिकांत’ में कमला की यौन-शुचिता को लेकर समाज की चिन्ता आमतौर पर देखी जाती है। हमारे समाज में यौन-शुचिता का प्रश्न जितना महत्वपूर्ण रहा है उतना खुद इंसान का नहीं। स्त्री को पुरुष के समान सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं है। वह न स्वतंत्र रह सकती है, न कोई स्वतंत्र फैसला ले सकती है। इसी वजह से उसके मन में प्रश्न उठता है कि— “क्यों वही जिसके साथ जघन्य अपराध हुआ है, अपराधी बन जाती है और जो अपराधी है उसी तरह साफ-पाक बना रहता है। ... तब उसके अन्दर में बैठा अदृश्य जैसे उसे समझाता, ‘यह कानून का नहीं, संस्कारों और उससे निसृत सामाजिक मूल्यों का प्रश्न है। ...पुरुष अहेरी है, नारी शिकार ; पुरुष स्वामी है, नारी आलोक मण्डित दासी ; पुरुष भू स्वामी, नारी भूमि। इसी से उद्भूत हुई है। अब भी स्त्रियाँ ‘संस्कार’ की नायिका की तरह पति को सुखी देखना चाहती हैं, चाहे उसका पति उसे कितना भी कष्ट क्यों न दे। ‘तट के बन्धन’ में सत्येन्द्र के मित्र की पत्नी सदियों पुरानी इस वर्जना को तोड़ती है और अपने पति द्वारा अन्य स्त्रियों के सम्बन्ध को लेकर दुःखी नहीं होती। उसके अन्तर्मन से आवाज आती है कि—आखिर वह क्यों मर रही है, इसमें उसका क्या दोष है, तब यह निश्चय करती है, नहीं नहीं, मैं नहीं मरूँगी। मैं विरोध करूँगी, संघर्ष करूँगी।”⁴³ यह विरोध और संघर्ष की भावना उसके अदम्य साहस और विश्वास की पहचान है। वह जान गई है कि केवल पुरुष के लिए जीना-मरना निहायत बेवकूफी है। सम्बन्धों का सही मतलब आपसी समझदारी है और जब एक तरफ से समझदारी जैसी बात नहीं हो रही है तो दूसरा उसके असहज रवैये को लेकर कब तक जियेगा। अतः अपने जीने के रास्ते खुद तलाशने होंगे।

⁴²- अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 57

⁴³- तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 139

“व्यक्तिगत सम्पत्ति और स्वामित्व की भावना। धरती का स्वामित्व नारी के ही स्वामित्व का रूप है।”⁴⁴ शिक्षा के बढ़ते प्रभाव की वजह से आयी चेतना के कारण नारी ने पुरुष की सम्पत्ति बनने से अस्वीकार कर दिया है, वह भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व चाहती है। प्रभाकर जी ने स्त्री-मुक्ति के प्रश्न को बड़े ही सटीक ढंग से उठाया है।

इतिहास में स्त्री सदैव उपेक्षित रही है। राजनीति का राजमहल सदैव जनता और स्त्री की त्रासदी पर खड़ा हुआ है। विष्णु प्रभाकर ने इस त्रासदी को अपनी आँखों से देखा था। भारत विभाजन के समय सबसे ज्यादा दुर्दशा स्त्रियों की हुई। सारी धार्मिक नैतिकता उन्हीं स्त्रियों पर ही लादी गई। इस त्रासदी को प्रभाकर जी के ‘तट के बंधन’ में देखा सकता है। रतिराम की भाभी जब भारत में रुकी तो तब उसकी इच्छा नहीं थी। जब उसे कानूनी तौर पर पाकिस्तान भेजा जा रहा था तब भी उसकी इच्छा नहीं थी। जमुना (जुलेखा) कहती है कि — “आज की दुनियाँ में दिल कहाँ जो मिलेंगे। अपनी मर्जी से न इधर रही, न उधर जा रही हूँ . . . अब जाना ही है, जमना फिर जुलेखा बनने लगी है, तब जमना का दुःख इसके साथ क्यों जाये।”⁴⁵ उस स्त्री की पीड़ा का अन्दाजा लगाया जा सकता है जिसको जुलेखा से जमुना और फिर जुलेखा बनना हुआ होगा। देश के बंटवारे ने ऐसी कानूनी विवशता पैदा कर दी कि जमुना की तरह कितनी स्त्रियों को अपने बच्चों को छोड़कर जाना हुआ होगा ? अगर पूरे भारत का इतिहास देखा जाये तो धर्म के नाम पर हुए देश के बँटवारे में आम जनता और स्त्रियों की जो दुर्दशा हुई वैसी कभी नहीं हुई होगी। हम अपने इतिहास पर कितना ही गर्व क्यों न कर लें पर.... इस कालिख से छुटकारा नहीं पाया जा सकता। देश के बँटवारे से आम जनता पर क्या प्रभाव पड़ेगा इस विषय में हमारे महापुरुषों ने सोचने की थोड़ी भी कोशिश नहीं की। विष्णु प्रभाकर ने नीलम के माध्यम से इस

⁴⁴ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 61

⁴⁵ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 150

बात को उठाया है, वह अपने पत्र में लिखती हैं कि— दो देशों की राजनीति के इस संघर्ष में नारी को कितना बलिदान करना पड़ा, क्या कोई इतिहासकार इसकी कल्पना कर सकेगा।”⁴⁶

आधुनिक युग में नारी इतनी स्वतंत्र नहीं है, जितना कि पुरुष। उसे पुरुषों के समान अधिकार केवल संविधान में प्राप्त हैं, परन्तु समाज में नहीं। हमारे बहुसंख्यक वर्ग की मानसिकता वही सदियों पुरानी है। वह तो स्त्री को दासी या सेविका के अलावा कुछ नहीं समझता। कम ही ऐसी स्त्रियाँ हैं जो स्त्रियों के उत्थान के लिए कार्य करना चाहती हैं। उदाहरण स्वरूप ‘कोई तो’ में पल्लवी को देख सकते हैं जो केवल भोग—विलास को ही सब कुछ समझती है उसे दुनियाँ के अन्य लोगों की चिन्ता ही नहीं। इसी तरह बन्दना जो अपनी योग्यता पर विश्वास न करके दूसरे पुरुष की शरण में चली जाती है। ऐसी विडम्बनाओं के अतिरिक्त बहुत सी स्त्रियाँ हैं जो अपने अधिकारों को लेकर सचेत हैं। प्रभाकर जी के उपन्यास में आधुनिक नारी में दो तरह के चरित्र दिखाई देते हैं—एक वह नारी है जो आधुनिक है पर पारम्परिक संस्कारों को छोड़ नहीं पा रही है, उदाहरण स्वरूप ‘स्वप्न’ की अलका को देखा जा सकता है। दूसरी वह है जो धीरे—धीरे पारम्परिक सदियों से मुक्त होती जा रही है, उदाहरण के तौर पर ‘अर्द्धनारीश्वर’ की सुमति और ‘कोई तो’ की वर्तिका को देखा जा सकता है।

समाज में चल रही आधुनिकता की दौड़ में अधिकांश लोगों की आधुनिकता केवल त्वचा तक ही सीमित रह गयी। लोगों के विचार वही सदियों पुराने हैं परन्तु पहनावे तथा भाव से मनुष्य आधुनिक दिखना चाहता है। इस सम्बन्ध में नारायण कहता है कि— “आज की आधुनिक नारी में वह त्वचा की गहराई तक ही सीमित है। अन्तर में सब कहीं—न—कहीं संस्कारों से मोहाविष्ट होती हैं। वर्तिका ने उत्तर दिया “केवल नारी क्यों ? हम सब मोहाविष्ट हैं, कुछ

⁴⁶ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 11

संस्कारों से कुछ सपनों से।⁴⁷ संस्कार और सपने दोनों के बीच में आधुनिकता उसे बीच का रास्ता चुनने के लिए नहीं प्रेरित करती। इन दोनों के बीच में फँसे मनुष्य की स्थिति समाज के मध्य वर्ग जैसी होती है कभी वह इस ओर तो कभी उस ओर गोता लगाता रहता है। वास्तविक जीवन कभी नहीं जी पाता। तेजी से बदलते परिवेश और समाज की वजह से मनुष्य के रहन-सहन में भले ही परिवर्तन आया है परन्तु संस्कारों से अभी भी मुक्ति नहीं मिली।

5.3 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का समन्वयात्मक रूप

विष्णु प्रभाकर के लगभग सभी उपन्यास स्त्री समस्या को लेकर लिखे गये हैं। इनके उपन्यासों में बलात्कार, घरेलू हिंसा, आर्थिक शोषण, विभाजन की त्रासदी आदि मुद्दे उठाए गये हैं। इनका बहुचर्चित उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' मुख्यतः बलात्कार की समस्या को लेकर लिखा गया है। इसमें सुमति, राजकली आदि स्त्रियाँ बलात्कार की त्रासदी झेल रही हैं। वहीं 'कोई तो' की वर्तिका धार्मिक निकम्मेपन की शिकार है, जिसको धर्म की वजह से समाज में निन्दा का सामना करना पड़ा। ये तीनों स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक समाज के खोखले आदर्शों को चुनौती देती हुई जीवित हैं। "मध्य वर्ग की यौन-लिप्सा और आजादी के बाद भारत के महानगरों और शहरों के नवधनकुबेरों की यौन मानसिकता को विष्णु प्रभाकर ने 'कोई तो' में उधेड़कर कर रख दिया था। इसकी नायिका वर्तिका ही नहीं, कई युवतियाँ पुरुष की अनैतिकता का शिकार बनती हैं। इस कदाचार के खिलाफ कोई उठकर खड़ा हो, इसी साहस या दुस्साहस का आवाहन वर्तिका करती है और स्त्री-मुक्ति का एक प्रस्थान तैयार करती है।"⁴⁸

पितृसत्तात्मक समाज में सदियों से चली आ रही सामन्ती सोच ने नारी की भूमिका को आज भी स्वीकार नहीं किया। इस सोच ने हमेशा षड्यंत्र किया है।

⁴⁷ कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 270

⁴⁸ समकालीन भारतीय साहित्य-मार्च-अप्रैल पृ० 11

इस सम्बन्ध में अगर ऐतिहासिक विश्लेषण करें तो पाते हैं कि शुरुआती दौर में स्त्री को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे बाद में उसे देवी का दर्जा देकर घर की चहारदीवारी तक सीमित कर दिया। सदियों तक शिक्षा और समाज से वंचित रहने के कारण उसको अपने अस्तित्व की भी चिन्ता नहीं रही। पितृसत्तात्मक समाज उसी नारी को श्रेष्ठ मानता है जो अस्मिता विहीन हो और अपने समस्त जीवन-चर्या को पुरुष के आदेशानुसार संचालित करती हो।

‘अर्द्धनारीश्वर’ उपन्यास को स्त्री-पीड़ा और संघर्ष का शास्त्र कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस उपन्यास की स्त्रियाँ विभा, सुमति, शाहिदा आदि सदैव समाज और परिवार के बीच सामंजस्य स्थापित करती हैं। सुमति बलात्कार के बाद अपने और बच्चे के प्रति उतना ही सचेत रहती है, जितना कि उससे पहले। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि उसकी मानसिक स्थिति ऐसी हो गई है कि वह अपने पति की सहजता को दूसरे रूप में व्याख्यायित करती है। सुमति एक उच्च मध्य वर्ग की महिला का इण्टरव्यू लेने जाती हैं। वह अपना नाम बताने से इंकार करते हुए यह बताती है कि हमारे साथ हुई ज्यादती से इनका कोई असर नहीं पड़ा। उसके पति के साहस ने उसे जीने के लिए प्रेरित किया। स्त्रियों की शारीरिक गुलामी ने उसे मानसिक रूप से भी गुलाम बना दिया। अब वही पुरुष का संरक्षण पाकर आत्मविश्वास से भर जाती है और कहती है— “अब मैं पूर्ण शान्त हूँ, निश्चिन्त हूँ। मैं उन हिंसक पशुओं की आँखों में आँखें डालकर कह सकती हूँ, अब मुझे तुम्हारा डर नहीं। मैं पूरी तरह सुरक्षित हूँ। मुझे ऐसा संरक्षण प्राप्त है जो मुझे कभी न छोड़ेगा।” इस बात पर सुमति कहती है कि “आपने यह संरक्षण उन्हीं से क्यों पाना चाहा, अपने अन्दर से क्यों नहीं खोजा?”

लाखों बार यही प्रश्न मैंने भी पूछा है अपने से। पर बिटिया मैं जिस पीढ़ी की हूँ उसमें स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व था ही कहाँ।”... हमारे बाद की या उसके बाद की पीढ़ी की नारी उस संरक्षण को पाने के लिए बाहर नहीं भटकेगी।

पति-पत्नी एक-दूसरे के पूरक और सहायक हैं। एक दूसरे पर आश्रित नहीं।⁴⁹ अपने अन्दर चल रहे अर्न्तद्वन्द्व से लड़ती स्त्री ने इसी ताक में कई पीढ़ियाँ गुज़ार दीं कि आने वाले समय में समाज की मानसिकता में परिवर्तन होगा और यह मानसिक बदलाव उसे शरीर के आकर्षण और पुरुष के संरक्षण से मुक्त कर देगा।

विभा अपने पति के संरक्षण में रहना चाहती है, परन्तु उसका पति अपने पूर्व सम्बन्धों को जीवित रखता है। संरक्षण के नाम पर केवल सामाजिक बन्धन ही मिलता है। विभा इस परिस्थिति में स्वेच्छा से पति को मुक्त करके अपना रास्ता तलाशती है। अनित्य उसके इस फैसले से मुक्ति ही महसूस करता है और विभा भी। पुरुष स्त्री से मुक्ति चाहता है और स्त्री पुरुष से। वह उससे किसी प्रकार की माँग नहीं रखती न ही रखना चाहती। वह चाहती है कि अगर पति चाहे तो मुझसे मुक्त हो सकता है “इस धारणा को गलत प्रमाणित करना चाहती हूँ कि नारियाँ केवल भड़कदार पोशाक की बातें करने में होशियार होती हैं . . . पर मैं अपने पैरों पर खड़ा होना जानती हूँ। नारी के पास प्रेम करने की अशेष शक्ति है। उसी का प्रतिपादन वह चाहती है, उसी में अपनी सुरक्षा देखती है। अगर वह प्रेम मिल जाये तो नारी का हृदय विश्वास से भर जाता है . . . जब वह प्रेम न मिले तो क्या करे वह? क्या वह उस घिसटती लहलुहान जिन्दगी के साथ घिसटती रहे? या उससे मुक्ति पाकर नये सार्थक जीवन की तलाश करे? आवश्यकता आत्म-विश्वास और संकल्प की है। वह प्रेम करने का संकल्प ले सकती है तो कर्म करने का क्यों नहीं?”⁵⁰ यहीं विष्णु प्रभाकर के उपन्यास ‘संस्कार’ की नायिका रामो को देखें तो वह पति के द्वारा तिरस्कृत होने के बावजूद उसकी प्रतीक्षा करती है। दुनिया के सबसे महान मनुष्य की पत्नी होने के सौभाग्य से इन्कार नहीं करती, बल्कि कहती है “अपने लिए जो मार्ग चुना, वह हमेशा ही परम्परा से अलग था। लेकिन तुमने क्या कभी यह भी सोचा कि

⁴⁹ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 17-18

⁵⁰ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 299

तुम्हारा कोई और साथी है जो तुम्हारी छाया का अनुगामी है।”⁵¹ एक पारंपरिक नारी और आधुनिक नारी में साफ तौर पर अन्तर देखा जा सकता है। एक जगह संस्कारों का बोझ तो दूसरी जगह संस्कारों से मुक्ति। एक जगह धर्म का असहनीय दबाव तो दूसरी तरफ धर्म की पुनर्व्याख्या, एक जगह विवशता तो दूसरी जगह साहस। एक पति-प्रेम की आकाँक्षा में जीवन बिता देती है तो दूसरी पति-उपेक्षा के कारण नया रास्ता तलाश लेती है। एक पति सेवा को अपना धर्म समझती है दूसरी उपेक्षित होने पर समाज-सेवा को अपना धर्म समझती है। बदलती परिस्थितियाँ स्त्री को किस तरह चहारदीवारी से निकलकर खुले वातावरण में जीने की प्रेरणा देती हैं, अब स्त्री का दृष्टिकोण संकुचित नहीं अपितु विश्वव्यापी हो गया।

पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष की सामन्ती सोच में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। मोनिका का प्रेमी उसको इसलिए नहीं स्वीकार करता कि उसको ऐसी औरत की ज़रूरत है जो आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। वह कहता है कि— “आज के समाज में व्यक्ति यही तो चाहता है— एक अदद औरत जो गृहस्थी का भार ढो सके, पत्नी का, माँ का, गृहिणी का दायित्व निभा सके और ढेर सारा दहेज ला सके, जिसके सहारे वह शालीनता का मुखौटा लगाकर समाज में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर सके। वह सब हो गया है और इसलिए मैं प्रसन्न हूँ।”⁵² यह स्थिति समाज के उन बहुसंख्यक पुरुषों की है जो सपना पाले हुए हैं कि शादी में सुशील पत्नी और उसके साथ ढेर सारा दहेज मिले। दहेज की लालसा की वजह से ‘तट के बंधन’ में मालती की बारात वापस लौटने वाली होती है और वकील का बेटा अपनी पत्नी की हत्या कर देता है। हत्या से पहले उसने कितनी अमानवीय यातनाएँ दी होंगी; उस स्थिति को दहेज के दानव नहीं समझ पायेंगे। दहेज एक अमानवीय प्रथा है, जिसकी प्रभावशीलता का अन्दाज़ा

⁵¹ संस्कार, विष्णु प्रभाकर, पृ. 21

⁵² संकल्प, विष्णु प्रभाकर, पृ. 173

इसी बात से लगाया जा सकता है कि यह अमानवीय होते हुए भी मानवीय पोषण का अंग बनी हुई है। प्रत्येक वर्ग में इसके रूप अलग-अलग हैं।

शिक्षा ने जहाँ दहेज के प्रति जागृति पैदा की है वहीं इसके पोषकों ने अन्य रास्ते तलाश लिए हैं। युगानुरूप बदलती चेतना ने भी दहेज प्रथा का अन्त करने में अपने को अक्षम पाया है। मूलतः दहेज जैसी प्रवृत्ति के मूल में स्त्री-पुरुष असमानता ही है। स्त्रियों की घटती आज़ादी और पुरुषों के बढ़ते नियम की कोख से दहेज जैसी प्रथा का जन्म हुआ। इस पितृसत्तात्मक समाज ने पूरी आधी आबादी को हेय बना दिया और अब स्थिति ऐसी हो गई कि इनका घर में पैदा होना भी प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया। इसी खोखली प्रतिष्ठा ने भ्रूण हत्या, कन्या वध जैसी समस्या को पैदा किया। प्राचीन समय में ऐसी समस्याएँ नहीं थीं। शीला के ठेकेदार पिता ढेर सारा दहेज देकर नरेश से विवाह कराते हैं। इतना देने के बाद भी उसे दहेज कम ही लगता है। यह सब देखकर एक पिता कहता है कि— “यह देखकर जी में आता है कि अपनी लड़कियों का गला घोट दूँ।”⁵³ बाद में शीला को प्रताड़ित करता है। शीला बिना कुछ बोले सारी यातनाएँ सहती है। अन्त में नरेश दहेज की खातिर उसकी हत्या कर देता है। दहेज की यातना सह रही नारी न प्रतिकार कर सकती है, न इससे मुक्ति पा सकती है।

विष्णु प्रभाकर ने अपने उपन्यासों में मध्यवर्ग की नारी के साथ-साथ निम्न एवं उच्च वर्ग की नारी को भी रेखांकित किया है। यह बात अलग है कि उनके लेखन के केन्द्र में मध्यवर्ग की ही स्त्री रही। विष्णु प्रभाकर पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि उन्होंने मध्यवर्ग की नारी का ही चरित्र गढ़ा है। अगर इनकी जीवनी को पढ़ें तो हमें पता चलता है कि इनका आँखों देखा समाज ही इनकी कल्पना का मूल आधार था। ये भी मध्य वर्ग से सम्बन्ध रखते थे। इसलिए मध्यवर्ग को काफी करीब से जानते थे। विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि ज्यादातर समस्या का सामना मध्यवर्ग की स्त्री को ही करना पड़ा। उच्च

⁵³ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 7

वर्गीय महिलाओं पर उतना सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दबाव नहीं है, जितना कि मध्यवर्ग की। उदाहरणस्वरूप 'स्वप्न' की नायिका अलका और 'संकल्प' की नायिका सुमति। सुमति आजीवन समाज का भार कंधों पर उठाये फिरती है। विधवा होने के बाद अपने पुत्र की शादी कर देती है तो भी अपने को मुक्त नहीं मानती। "मैंने अनुभव किया कि अपना संकल्प पूरा कर लेने के बाद भी मैं सचमुच मुक्ति नहीं चाहती।"⁵⁴

विष्णु प्रभाकर आर्य समाजी थे, इसलिए वे आर्यसमाज की अच्छाइयों एवं बुराइयों दोनों से परिचित थे। सनातन धर्मियों के प्रभाव से विधवा-पुनर्विवाह जैसे मुद्दे शिथिल हो गये। इसके साथ ही घर वापसी के नाम पर हो रहे छल की तस्वीर प्रभाकर जी के सामने थी। इस बात का जिक्र इन्होंने अपने दोनों शुरुआती दौर के लिखे गये उपन्यासों में किया है। 'निशिकांत' में धर्मपाल और कम्पाउण्डर की बीबी एवं 'तट के बंधन' में सत्येन्द्र की माँ जिसने अपने पति की मृत्यु के बाद उनके मुसलमान मित्र रहमान से पुनर्विवाह कर लिया। रहमान धर्म-परिवर्तन करके धर्मप्रकाश बन जाता है फिर भी वह समाज में घृणा के भाव से देखा जाता है। कुछ समय बाद धर्म प्रकाश की मृत्यु हो जाती है, ऐसी स्थिति में उसकी माँ कड़े परिश्रम से बच्चों को पढ़ाती-लिखाती है।

सत्येन्द्र बाद में आई0ए0एस0 अधिकारी बन जाता है। नीलम की माँ सामाजिक मान्यताओं के अनुसार विवाह कर लेती है, लेकिन घृणा का शिकार इसलिए होना पड़ता है कि उसने एक तथाकथित हिन्दू-मुसलमान से विवाह किया। 'निशिकान्त' में कम्पाउण्डर की पत्नी निशिकान्त के दूसरी जाति या धर्म की लड़की से विवाह करने का समर्थन तो करती है पर कहती है कि "देखिए, मैं आपको सलाह देती हूँ। जब तक आप अपने समाज को नहीं बदल देते, तब तक किसी बेगुनाह लड़की का जीवन बरबाद न कीजिए।"⁵⁵ पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री का ना कोई अस्तित्व है ना धर्म। निशिकांत जब उसके पिता के धर्म

⁵⁴ संकल्प, विष्णु प्रभाकर, पृ. 242

⁵⁵ निशिकान्त, विष्णु प्रभाकर, पृ. 77

परिवर्तन के विषय में पूछता है तो कहती है— “जी हाँ, वह राजी हो गये थे। वह स्वयं हिन्दू होना चाहते थे, पर मैंने मना कर दिया। क्यों? क्योंकि मैं नहीं चाहती थी कि उनका अपमान हो। वे गरीब हैं, पर इज्जत से जीते हैं। यहाँ आकर कुत्तों की तरह जीने से मरना अच्छा समझती हूँ।

पर तुम! यंत्रवत् कान्त ने पूछा।

मैं! मेरा अब अस्तित्व कहाँ है? मैं तो उनकी हूँ।”⁵⁶

उपर्युक्त संवाद एक तरफ तो धर्म-परिवर्तन के बाद की उपेक्षा और निरीहता को बताता है और दूसरी तरफ स्त्री के अस्तित्व की ओर संकेत करता है। ‘तट के बंधन’ में नीलम एक सुन्दर युवती है, वह भी धर्म-परिवर्तन इसी की वजह से कई बार अपमानित हुई, “कितने ही युवकों ने उसे प्यार भरी निगाहों से देखा है। कितने प्रलोभन उसने ठुकराये, राह रोककर कितने शौकीन उससे बात करने की इच्छा प्रकट करते रहे हैं।..... वे सब भूखे थे.....। एक युवक एकबारगी तेजी से उसके पास आया। उसका कंधा पकड़कर झकझोरा और बिना इधर-उधर देखे भागता चला गया। हतभागिनी-सी वह चीख भी नहीं सकी। माँ सब कुछ देख रही थी। तड़पकर रह गई, क्योंकि उसके विरोध का कोई मूल्य नहीं था। समाज के जो स्तम्भ हैं, उन्होंने यही कहा था, ‘वैश्या जैसी है। उसकी बेटी को किसी ने छेड़ दिया तो क्या अनर्थ हो गया। यह रूप आखिर किस काम आयेगा।”⁵⁷ नीलम के सामने खड़ी शशि ने माता-पिता और समाज की परवाह किये बगैर अपने पसंद के लड़के से कोर्ट में विवाह कर लिया। नीलम सोचती है कि “शशि उसके स्थान पर होती तो क्या करती, जीवन के इस मर्मन्तक अपमान का बदला कैसे लेती? कैसे इस सामूहिक तिरस्कार का प्रतिवाद करती है? और जो कुछ शशि करती है उसे वह क्यों नहीं कर सकती। क्यों, आखिर क्यों कुछ लोग किस्मत में दुःख ही लिखाकर लाते हैं? क्यों सदा सहते ही हैं?”⁵⁸ सबसे

⁵⁶ निशिकान्त, विष्णु प्रभाकर, पृ. 77

⁵⁷ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 39

⁵⁸ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 40

ज्यादा साहस नीलम को शशि से मिलता है पर सुन्दरता के कारण ही डाकू उठा ले जाते हैं। डाकूओं ने प्रणय निवेदन किया, सताया, मारा-पीटा, उसके अस्मत् के साथ खेलने की कोशिश की। उसे पुरुष से घृणा हो जाती है। उसे जब पुलिस छुड़ाकर ले जाती है, तो समाज में उसके चरित्र को लेकर अनेक प्रश्न चिह्न खड़े हो जाते हैं। इसके बाद उसको स्कूल से निकाल दिया जाता है। इस स्थिति में सत्येन्द्र उसका हौसला बढ़ाते हुए पत्र लिखता है कि— “नीलम पढ़ायेगी नहीं, तो रेडियो पर काम करेगी। वह भी नहीं तो लिखेगी, मजदूरी करेगी, कपड़े सियेगी, पर नहीं। वह जिएगी और शान से जियेगी।”⁵⁹ इसका उत्तर उत्साह के साथ देते हुए नीलम लिखती हैं— “तुम्हारे पत्र मेरे जीवन का सम्बल बन गये हैं। विश्वास दिलाती हूँ कि जान-बूझकर जीवन का अपमान नहीं करूँगी। . . . उन सात दिनों में क्या देखा, क्या समझा कैसे बताऊँ और बताऊँ ही क्यों ? . . . यह दुर्भाग्य इसी तरह मेरा सौभाग्य बन सकेगा, जो शाप बनकर आया, उसको इसी तरह मैं आशीर्वाद के रूप में स्वीकार कर सकूँगी। . . . पर भैया, ये सुनी-सुनाई और पढ़ी-पढ़ाई बातें लिखकर मैं सत्य को झुठलाना नहीं चाहती। उपदेश प्रायः दुर्बलता का ही व्यापारिक रूप है, जो मुझ पर बीती है, उसे न तो मैं पी सकी हूँ, न सह सकी हूँ। जिस दिन वह साहस पा सकूँगी, उसी दिन यह कह सकूँगी कि मैंने जीने की राह ढूँढ़ ली है।”⁶⁰ नीलम के अन्दर चल रहा आत्मसंघर्ष उसका अकेले का नहीं है, अपितु बहुसंख्यक आधी आबादी का है। बँटवारे की राजनीति की शिकार हुई जुलेखा इसी यातना की शिकार थी। उसने दुःख में भी जीवन को सहज स्वाभाविक रूप में स्वीकार किया। उसका यह समन्वयात्मक रूप उसके लिए कितना पीड़ादायक था इस बात का अन्दाज़ा उसके एक वर्ष के बेटे से अलग किये जाने के दुःख के आधार पर लगाया जा सकता है। नीलम गोपाल से विवाह करना चाहती हैं, वह नहीं करते तो वह सुभाष से विवाह कर लेती है। गोपाल पाकिस्तान में छुट गई अनीला से प्रेम करते हैं लेकिन अनिला बेबसी में

⁵⁹ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 98-99

⁶⁰ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 98

विवाह कर लेती है और मुसलमान बन जाती है। इसको भी विभाजन की त्रासदी झेलनी पड़ती है। संवैधानिक कारणों से जुलेखा की तरह पाकिस्तान से भारत भेज दी जाती है।

अनीला पाकिस्तान में झेली यातना के विषय में सोचती है कि— “मैं किस-किसकी पत्नी बनी हूँ। किस किसकी?..... वह मर क्यों न गई क्यों न मर सकी? क्या क्या उसने नहीं देखा? भयंकर हत्याकाण्ड, वासना का वह वीभत्स नग्न नृत्य। उसने अपनी प्रिय सखी गीता को बलात्कार से सिसक-सिसककर मरते देखा। अपना अपहरण देखा, बलात्कार होते देखा, लेकिन मौत को उस पर दया नहीं आयी।”⁶¹ अनीला बाजार में बेची गई तत्पश्चात् उसने अपनी सखी गीता के मंगेतर अजित से विवाह कर लिया। दोनों पाकिस्तान में ही नाम बदलकर रहने लगे। अब अजित अमजद और अनीला अस्मत बन गई। विभाजन के बाद हुए नंगे-नाच ने इतिहास की सारी बर्बरता को पार कर दिया। राजनीतिज्ञों को आम जनता की नहीं कुर्सी की पड़ी थी। ऐसी स्थिति में प्रशासन असहाय स्त्रियों के साथ कैसा व्यवहार करता है, इसके उदाहरण इस उपन्यास में ढेरों मौजूद हैं।

सरला नीलम के मामा की बेटी है। पिता की अवहेलना के कारण उनके द्वारा निश्चित किये गये वर से विवाह न करके दिल्ली भाग जाती है। लड़का समाज और सरला के पिता के भय के कारण उसे धर्मशाला में छोड़कर भाग जाता है। गोपाल और शशि उसे घर लाते हैं। पिता द्वारा खोजा गया लड़का शादी करने से इंकार कर देता है। धन के बल पर रूप और धन पर आसक्त पुरुष से, सरला के न चाहने पर भी, विवाह कर दिया जाता है। “यही सब सुनकर नीलम बोली “जीजी, विवाह के कारण उसे यह सब भोगना पड़ा। नारी क्या विवाह के बिना कुछ नहीं है ?

⁶¹ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 161

नारी विवाह के बिना भी नारी है। सरला पर जो कुछ बीती है, उसका कारण मात्र विवाह नहीं है, डर भी है। कहुँ, वही है।..... स्त्री शक्ति और शाप दोनों है। विवाह इन दोनों अतियों के बीच का मार्ग ढूँढ़ने का एक साधन है। युग-युग से इस क्षेत्र में प्रयोग हुए हैं, पर स्त्रीत्व कोई नहीं मिटा सका, क्योंकि स्त्रीत्व के बिना मातृत्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जब तक स्त्रीत्व है, विवाह है।⁶² शशि का विद्रोही स्वभाव ही उसे पारम्परिकता के बन्धन से मुक्ति दिलाता है। प्रभाकर जी ने मध्यवर्गीय नारी की असहाय स्थिति को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। वे चाहते हैं कि स्त्रियाँ पुरुष के भरोसे अपनी मुक्ति की बात नहीं करे अपितु पुरानी जीण-शीर्ण रूढ़ियों के खिलाफ उठ खड़े होने का साहस करे। जब तक साहस नहीं करेगी, तब तक मुक्ति संभव नहीं है “साहसी व्यक्ति से अधिक समर्थ कोई नहीं होता।”... समाज उन्हीं को पूजता है, जो विद्रोह करते हैं। जो समाज की पूजा करते हैं, वे सदा दुःखी रहते हैं।⁶³ शशि के विवाह कर लेने मात्र से उसे समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है, उसे गालियाँ तक दी जाती हैं। इस सम्बन्ध में गोपाल दा कहते हैं— “जब प्रचलित रीति-नीति पर चोट की जाती है तो समाज में हलचल मचनी स्वाभाविक है।”⁶⁴ ऐसी स्थिति में “मध्यवर्गीय नारी क्या करे? विष्णु प्रभाकर जी ने इस उपन्यास के माध्यम से इस वर्ग की नारी की समस्याओं को चित्रित कर वस्तुस्थिति से केवल अवगत ही नहीं कराया है अपितु मध्यवर्गीय नारी को समय के साथ आगे बढ़ने की तथा समाज का सामना करने की शक्ति प्रदान की है। विष्णु जी का विश्वास है कि अपने अस्तित्व एवं प्रतिष्ठा की यह लड़ाई नारी को स्वयं ही लड़नी पड़ेगी, उसे साहस पूर्वक आगे आकर परिस्थितियों से संघर्ष करना होगा। इसके लिए स्वावलम्बन एवं आर्थिक स्वाधीनता आवश्यक है। आत्महत्या करके या घुट-घुट कर मरना कोई

⁶² तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 56-57

⁶³ तट के बंधन, विष्णु प्रभाकर, पृ. 41

⁶⁴ वही, पृ. 43

समाधान नहीं है। विवाह की समस्या का अन्त तभी संभव है, जब विवाह जाति-पाति, धर्म आदि के बन्धनों से निरपेक्ष रहकर किये जायेंगे।⁶⁵

नारी समाज, परिवार और राजनीति के केन्द्र में रही है। इसने समाज की जिस पूरी आबादी को जीवन दिया उसी की आधी आबादी ने इसको तमाम अधिकारों से वंचित कर दिया। फिर स्त्री हमेशा समाज की अनेक इकाइयों में समन्वय स्थापित करते हुए चल रही है। चाहे 'अर्द्धनारीश्वर' की सुमति हो, 'कोई तो' की वर्तिका, या 'तट के बन्धन' की शशि।

5.4 विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में चित्रित नारी का आत्म-संघर्ष

स्त्री-आत्म संघर्ष की शुरुआत उस समय से हुई होगी जिस समय उनकी सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता छीन ली गई होगी और पुरुष को श्रेष्ठ घोषित किया गया होगा। पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को ऐसी गृहिणी के रूप में देखने का पक्षपाती रहा है जो उसके बनाये नियमों का सहर्ष पालन करे और अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की बात नहीं करें, ऐसा करने वाली स्त्रियाँ समाज में सम्मान की पात्र रही हैं। इसके विरुद्ध आचरण करने वाली कुलटा कहलाती है। 'कोई तो' की नायिका वर्तिका ने सामाजिक बन्धनों को नकारना शुरू किया तो उसे भ्रष्ट समझकर आस-पास अनेक चर्चाएँ होने लगीं। वहीं 'निशिकांत' की कमला का पूरा जीवन इन्हीं झूठी मर्यादाओं से जुड़ गया है। जब वह अपने ननद के बच्चे को गोद लेना चाहती है तो उसकी ननद और उसके पति इस बात से यह कहते हुए इन्कार कर देते हैं कि "अगर लच्छन अच्छे होते तो इतनी हिम्मत कैसे आती। मर्द की तरह घूमती है। भाई, मैं तो अपना लड़का नहीं दूँगा। आदमियों से मिलती हैं, तभी तो शहर की औरतें न जाने कितने घाट का पानी

⁶⁵ विष्णु प्रभाकर, सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र/कृष्ण चन्द्र गुप्त, पृ. 323

पीती हैं।⁶⁶ 'संस्कार' की नायिका का पूरा जीवन संघर्ष में ही गुज़रता है। देखा जाये तो वह पितृसत्तात्मक समाज की घृणित व्यवस्था का प्रमाण पत्र है जिसने अपना पूरा जीवन अपने पति के इंतज़ार में बिता दिया। उसके पति ने कई शादियाँ कीं लेकिन मुड़कर अपने अतीत की तरफ नहीं देखा कि . . . कोई उसका इंतज़ार कर रहा है। वह अपने पति को शादी के 25 वर्ष बाद पत्र लिखती है। उसमें विद्रोही स्वर तीव्र हो जाता है। वह कहती है कि "विद्रोह करने की इच्छा होती है पर विद्रोह नहीं करती।" उसके संस्कार उसका पीछा नहीं छोड़ते। उसकी माँ उसके भाग्य को कोसते हुए मर जाती है और गाँव की औरतें उसके ऊपर सारा दोषारोपण करती हैं कि तुमसे शादी करने की वजह से वह घर से भाग गया।

वह समाज की तमाम अप्रत्याशित यातनाओं को झेलते हुए भी अपने आदिम संस्कारों को नहीं छोड़ पाती। वह एक जगह लिखती है, "जानती हूँ कि मैं तुम जैसे महान व्यक्ति के योग्य नहीं हूँ, पर तुम्हारी दासी बनने का सौभाग्य तो मुझे मिल ही सकता था। तुम्हारे स्पर्श की अधिकारिणी तो मैं हो सकती थीं।"⁶⁷ इतने वर्षों के इंतज़ार के बाद भी जब पति ने उसकी सुध नहीं ली और तीसरी शादी कर ली तो इस बारे में प्रतिक्रिया करते हुए लिखती है "कई दिन तक मेरा वह रोना नहीं रुक सका। अचरज इस बात का था कि मैं ज़िंदा कैसे रही ? लेकिन जो निर्लज्ज इतने वर्षों तक इस असहनीय वेदना को सहकर भी आशा का परित्याग न कर सकी, वह इस वज्रघात से भी कैसे मर पाती। मर पाती तो आज यह पत्र लिखने की इच्छा क्यों होती ? घृणा और पीड़ा के उन दिनों में मुझे तिरस्कृत के प्रति जैसे सारी बस्ती का प्रेम उमड़ पड़ा था।"⁶⁸ इस लम्बे आत्म संघर्ष के बाद जब उसका समाज के एक नये वर्ग से परिचय हुआ तो उसे उनका विचार इन पुराने रूढ़िवादी संस्कारों से कहीं महान लगा है। जहाँ मनुष्य पर बन्धनों का अतिरिक्त बोझ नहीं है। "कैसे स्वदेशी साधन हैं ये, ये कैसी

66- निशिकान्त, विष्णु प्रभाकर, पृ. 150-51

67- वही, पृ. 41

68- संस्कार, विष्णु प्रभाकर, पृ. 43

जहालत है, लेकिन कैसी मुक्तता ! कहीं परदा नहीं, झिझक नहीं, मानो मुक्तभाव से जो कुछ आया, उसे सह लिया, झेल लिया, फेंक दिया और फिर रीते होकर अपने को काम में उलझा लिया।⁶⁹ धर्म और स्त्री सच का गहरा सम्बन्ध रहा है। धर्म में स्त्री को किस रूप में देखा गया और सदियों से उसके साथ धर्म के नाम पर किस अमानवीय तरीके से व्यवहार किया गया है ? इस बात को प्रभाकर जी ने रामो के माध्यम से बड़ी ही सीधी भाषा में उठाया हैं। रामो धर्म के विषय में लिखती है। “जिस नारी को उसका पति ही न चाहे, तो उसे कौन चाहेगा! कैसा है हमारा यह जड़ धर्म विधान ! नारी स्वयं में कुछ नहीं है। पति को लेकर ही आत्मीयता, सहानुभूति और आकर्षण उसे मिलता है।”⁷⁰ ‘संस्कार’ उपन्यास पूरी तरह पत्र-शैली में लिखा गया है। इसमें प्रभाकर जी ने एक ऐसी स्त्री की मनोदशा को दिखाया है जो पति द्वारा तिरस्कृत होने के बावजूद, तमाम मर्यादाओं में बंधी हुई है। वह चाहकर भी उसे तोड़ नहीं पाती। उसके अन्तर्मन में चल रहे अर्न्तद्वन्द ने उसे विद्रोह करने पर मजबूर कर दिया, जब वह मजदूरों के साथ रहने लगती है। “गाँव-भर में यह अपवाद फैल गया कि रामो मजदूरी करने लगी है। मजदूरी तो मैं अब तक करती आ रही थी, लेकिन बड़े घर के कुलीन लोगों की। अब उनकी मजदूरी करने जा रही थी जो स्वयं मजदूर थे।”⁷¹

रम्मो कहने को तो पुरुष-बन्धन से मुक्त थी, पर विवाह नाम की संस्था की वजह से गुलाम ही थी। उसके मन में कई बार आम स्त्रियों की तरह विचार आया। वह किसी पुरुष का आश्रय चाहती या कहें तो उसे खुद आवश्यकता महसूस हो रही थी, लेकिन ऐसा करने में हमेशा असमर्थ रही। उसके अन्तर्मन में इतनी पीड़ा थी कि उसने अपनी तुलना विधवाओं से करते हुए लिखती है कि “पुरुष नारी के बिना नहीं रह सकता लेकिन नारी विवश होकर ही जीती है,

69- संस्कार, विष्णु प्रभाकर, पृ. 58

70- वही, पृ. 22

71- संस्कार, विष्णु प्रभाकर, पृ. पृ. 57

पुरुष के बिना रहने के लिए।”⁷² विधवा की स्थिति के सम्बन्ध में प्रभाकर जी अपने प्रथम उपन्यास ‘निशिकान्त’ में सही ढंग से बात किया है। कमला को इसलिए चरित्रहीन कह दिया जाता है कि वह पढ़ी-लिखी है और पुरुषों से किसी भी विषय पर सीधे-सीधे संवाद करती है। इस स्वतंत्रता को समाज की रूढ़िवादी सोच सहन नहीं कर पाती। इसी वजह से विद्यालय से निकालने की कोशिश की जाती है। उनका मानना है कि “भला विधवा के पास पुरुष का क्या काम।”⁷³ कमला जिस विद्यालय में पढ़ाती है वह आर्य समाजी है और विष्णु प्रभाकर का आर्य समाज से बहुत ही निजी सम्बन्ध था। उन्होंने आर्य समाज की खामियों की वजह से उसे त्याग दिया। इस वजह से ‘निशिकान्त’ को आर्यसमाजियों ने विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम से निकाल दिया। ‘निशिकान्त’ उपन्यास का काफी हिस्सा उनका भोगा हुआ यथार्थ है। प्रभाकर जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि— ‘आर्य समाज जिस उद्देश्य को लेकर चल रहा था उसे भूल गया और जिन रूढ़ियों का विरोध कर रहा था उसमें ही उलझकर रह गया।’ ‘निशिकांत’ में दो चरित्र—धर्मपाल और कम्पाउण्डर की पत्नी, धर्म परिवर्तन करके हिन्दू बनी हैं। दोनों के हिन्दू बन जाने के बाद भी आम जनता के साथ-साथ धर्म-परिवर्तन करवाने वाले मंत्री और अन्य सदस्य भी उनके साथ वैसा ही भेदभाव करते हैं, जैसा कि पहले करते आये थे। जब निशिकान्त किसी अन्य जाति में विवाह करने की इच्छा जाहिर करता है तो कम्पाउण्डर की पत्नी कहती है— “देखिए मैं आपको सलाह देती हूँ । जब तक आप अपने समाज को नहीं बदल देते, तब तक किसी बेगुनाह लड़की का जीवन बरबाद न कीजिये।”⁷⁴ विष्णु प्रभाकर ने अपनी आत्मकथा में बताया कि वे खुद किसी अन्य जाति की कन्या से विवाह करना चाहते थे, पर ऐसा सम्भव नहीं हो सका।

भारतीय समाज में विधवा स्त्री एक जिन्दा लाश है, जिसे समाज अपने हिसाब से कफन पहनाना चाहता है, जैसा कि मुर्दों के साथ करता है। वह क्या

72- संस्कार, विष्णु प्रभाकर, पृ. 29

73- निशिकान्त, विष्णु प्रभाकर, पृ. 160

74 निशिकान्त, विष्णु प्रभाकर, पृ. 77

पहनेगी, क्या खायेगी, कैसे रहेगी, किन लोगों से सम्बन्ध रखेगी, किस जगह उपस्थित रहेगी। ये सब समाज तय करता है। किसी स्त्री का विधवा होना उसके बस में नहीं है, लेकिन विधवा होकर जीवित रहना किसी नर्क से कम नहीं है। वह उस दुःख को भूलना भी चाहे तो समाज उसे समय-समय पर याद दिलाता रहेगा, ताकि आजीवन उसका घाव भरे नहीं। उसके चरित्र को लेकर समाज में चिन्ता आमतौर पर देखी जा सकती है। कमला की चाची निशिकान्त से कहती है कि— “ना बेटा तू इसके मुँह न लगना सोने की सी आब है। दुनिया तुझे जाने है। यह औरत तो लम्बे बालों वाली है। जरा सी देर में इज्जत खाक में मिला देवे हैं। भला उतनी रूपवान और जवान विधवा बस में रह सकती है। मैंने धूप में बाल सफ़ेद नहीं किये। . . . ऐसी औरत को स्कूल में नहीं रखना चाहिए। लड़कियों की बात है। कच्ची उमर में रंग जल्दी चढ़े हैं। . . . सबसे बड़ी बात तो यह है कि लड़कियों का पढ़ना किसने बताया है। जब से पढ़ाई शुरू हुई है तब से चरित्र तो रहा ही नहीं।”⁷⁵ विधवा स्त्री का रूपवान होना भी ठीक नहीं समझा जाता, न ही उसका लोगों से सम्पर्क। भारतीय समाज में विधवा के लिए सदियों से नियम बनाये गये हैं कि वह संसार के किसी प्रकार के उत्साह और उल्लास से दूर रहकर केवल ईश्वर भक्ति में ही जीवन यापन करें। यह नियम पोंगा पण्डितों द्वारा बनाया गया और उन्हीं ने सबसे ज्यादा इनका शारीरिक शोषण किया। धर्म के नाम पर जो अत्याचार पीढ़ी दर पीढ़ी होता चला आया उस ओर आज भी लोगों की नज़र नहीं जाती। इस समाज में जब यह कहा जाता है कि— ‘विधवा स्त्री को पुरुष से क्या काम।’ तब यह प्रश्न नहीं उठता कि स्त्रियों से विधवा स्त्रियों को ज्ञान, ध्यान की शिक्षा का भार पुरुषों पर क्यों था। नवजागरण के बाद जब स्त्रियों को शिक्षा देने की बात उठी तो पहले तो लोगों ने इसका घोर विरोध किया। जब तत्कालीन मध्यवर्ग पश्चिम के सम्पर्क में आया तब वह पितृसत्ता का बन्धन बिना ढीला किये स्त्रियों को घर में शिक्षा देने लगा। यह वर्ग घर में अपनी स्त्रियों या लड़कियों को खुद शिक्षा देता था किसी पढ़ी लिखी

75- निशिकान्त, विष्णु प्रभाकर, पृ. 96

महिला के माध्यम से। इससे बड़ी विडम्बना और क्या है जब पुरुष जीवित था तब पुरुष द्वारा शिक्षा नहीं दी गई लेकिन जब उसके सम्पर्क में नहीं रहना चाहिए तब उसे ही चुना गया। यह दोहरापन धर्म के पीछे सदियों से हो रहे शोषण का पर्दाफाश करता है।

पहले स्त्री-शिक्षा को उसके चारित्रिक पतन का कारण माना जाता था। लोगों का मानना था कि स्त्रियाँ पढ़ लिख जायेंगी तो किसी के बस में नहीं रहेंगी। अपने पति या सास-ससुर का सम्मान नहीं करेंगी। इसके अलावा शिक्षा के सम्बन्ध में एक और धारणा है कि 'लड़कियों को शिक्षा देकर क्या होगा, दूसरे के घर जाना है, घर में खाना बनाना, कपड़ा धोना ही तो इसका काम है।' ऐसी मानसिकता बहुसंख्यक अनपढ़ ही नहीं अपितु शिक्षित लोगों की भी थी। प्रताप नारायण मिश्र ने शिक्षित स्त्रियों और पुरुषों की पुस्तकों को अलग रखने की बात करते हुए कहा है कि—'ऐसी कौन सी पुस्तक थी कि जिसे पुरुष पढ़ेगा तो उसका चारित्रिक पतन नहीं होगा लेकिन स्त्री पढ़ ले तो उसका चारित्रिक पतन हो जायेगा। आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती ने स्त्रियों को पुरुषों से अलग शिक्षा देने की बात की। आर्य समाज जिन रूढ़ियों से मुक्ति की बात कर रहा था उसी में उलझकर रह गया। यह शुरुआती दौर में पश्चिमोत्तर भारत (राजस्थान, पंजाब, हरियाणा) में प्रभावशाली रहा। आर्य समाज के प्रमुख मुद्दे घर वापसी, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, जाति-पाँति विरोध आदि थे। इन मुद्दों को लेकर जब पश्चिमोत्तर से प्रयाग और काशी की तरफ आये तो सनातन धर्मी पण्डितों ने इसका घोर विरोध किया। इसके फलस्वरूप स्वामी दयानन्द ने अपने ऐजेण्डे में परिवर्तन कर प्रमुख ऐजेण्डे में नागरी लिपि और गौ वध निषेध को शामिल कर लिया। इसके बाद स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह और जाति-पाँति जैसे मुद्दे शिथिल पड़ गये। जो आर्य समाज विश्व कल्याण की भावना लेकर चल रहा था वह बस हिन्दू-मुस्लिम तक ही सीमित रह गया। आर्य समाज के बदलते मुद्दों और रूढ़िवादिता ने उसे डुबोने में सार्थक भूमिका निभायी। दयानन्द जी ने जिस घर वापसी की बात की थी उसकी क्या दुर्दशा हुई इसको विष्णु प्रकार के

उपन्यास 'निशिकान्त' में धर्मपाल और 'कोई तो' में असद के माध्यम से देख सकते हैं। हिन्दू शास्त्रों में वर्णित है कि स्त्री का कोई धर्म नहीं होता, उसके पति का ही धर्म उसका धर्म होता है। लेकिन दूसरे धर्म में विवाह करने वाले कम्पाउण्डर के घर आर्य समाज के मंत्री शुद्धीकरण के बाद भी पानी नहीं पीते।

'स्त्री का कोई धर्म नहीं होता, उसके पति का धर्म ही उसका धर्म होता है।' यह आधी आबादी के साथ अन्याय है। जब परिवार में दोनों बराबर हैं और पति अपने धर्म को मान सकता है तो स्त्री अपने धर्म को मानने के लिए क्यों स्वतंत्र नहीं है। निशिकान्त इसी रूढ़ि को तोड़ना चाहता है वह सुरैया से शादी करके उसको धर्म के मामले में स्वतंत्र रखना चाहता है। वह नहीं चाहता है कि वह इस्लाम से हिन्दू धर्म को अपनाए। उसका मानना है कि वह इस मामले में पूरी तरह स्वतंत्र हैं। इसको लेकर उसके अपने साथी शंका जाहिर करते हैं। उस बात की सराहना करते हुए मंत्री कहते हैं— "कान्त ! तुम्हारा साहस धन्य है। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ, पर कान्त, अब तुम उसको शुद्ध कर लो। वह तुम्हारी है। तुम हिन्दू हो। उसे भी हिन्दू होना चाहिए।"

"क्या आवश्यक है ?"

"हाँ, शुद्ध न हो तो . . ."

तो उसके मन में पाप है। वह तुम पर जादू करना चाहती है।"

मंत्री विद्रूप से बोले, "मैंने तुम्हें चेतावनी दे दी है। यह असंभव है कि वह मुसलमान रहे और तुम हिन्दू। वह तुम्हारी संतान को तुमसे छीन लेगी।"⁷⁶ आज के उत्तर आधुनिकता दौर में धर्म के ठेकेदारों को छोटी सी बात समझ में नहीं आ रही है कि जो स्त्री किसी के लिए अपना सब कुछ छोड़ सकती है वह शादी के बाद कैसे धोखा दे सकती है। आपसी प्रेम सम्बन्ध में धर्म का क्या काम ? धर्म का मुख्य काम मनुष्य को मनुष्य से जोड़ना होता है, पर आजकल धर्म से ही

76- निशिकान्त, विष्णु प्रभाकर, पृ. 170

मनुष्य में आपसी भेद पैदा हो गया। भारत विभाजन धर्म की ही देन है, आपसी भाई चारे की वकालत करने वाले गाँधी जी के दावे भी ओछे ही साबित हुए। भारत के बँटवारे की त्रासदी झेल रहे लोगों को प्रभाकर जी ने देखा था और समय की सम्प्रदायगत सोच और ऊँच-नीच की भावना को अच्छी तरह समझते थे। 'तट के बंधन' की जुने खाँ (जमुद) बँटवारे की वजह से मात्र एक वस्तु बनकर रह गई। उसे हाड़-माँस का जीव समझने की कोशिश ही नहीं की गई। 'निशिकान्त' में मुस्लिम स्त्री सदियों से चली आ रही परम्परा का विरोध करती है। वहीं अर्द्धनारीश्वर की वर्तिका विश्व की नारी चिन्ता को लेकर कहती है—“नारी ही सूली पर चढ़ रही है यहाँ भी। वहीं बुर्का, वही नमाज़, वही इबादतगाह जैसे मन बहलाने का खिलौना हो। न उसके कुछ विचार हैं, न उसे राजनीति में दखल देने का अधिकार है।”⁷⁷

विष्णु प्रभाकर ने 'स्वप्नमयी' (स्वप्न) में पाठकों को ऐसी नारी से परिचित कराया है जो परम्परा और आधुनिकता के बीच में फँसी हुई है। उसने जीवन को एक प्रयोगशाला बना दिया है जो कुछ देखना चाहती है वह सब अपनी आँखों से। उसका जीवन बदलते परिवेश और समाज में स्त्री की दशा का बड़ी सरलता से चित्रण करता है। अलका समाज को जगाना चाहती है और परम्पराओं से जुड़ी भी रहना चाहती है। वह आधुनिक नारी है और उसके विचार भी आधुनिक हैं परन्तु उसके प्रयोग उसे परम्परा से जोड़े रखते हैं। अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के कारण अपने पति का विश्वास पात्र नहीं बन पाती, इस बात का उसे थोड़ा-सा भी अफसोस नहीं है, बल्कि सामना करती है और पति को समझाती है कि—“तुम्हारे विश्वास को अखण्ड रूप में स्वीकार किया था, पर उसको खण्ड-खण्ड करने की कोशिश मैंने कभी नहीं की। न जाने मुझे क्यों ऐसा लगता रहा कि ऐसा करती तो तुम्हारा अपमान हो जाता। ... अब भी मुझे विश्वास है कि आत्मग्लानि से मैं जहर नहीं खाऊँगी। सामाजिक भय से कहीं जाकर छिपूँगी नहीं

77- अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 207

... मैं मनुष्य की अक्षय शक्ति में विश्वास करती हूँ, लेकिन फिर भी मेरे स्वामी, मैं तुम्हारी घृणा नहीं सहना चाहती। तुम बोलो क्या करूँ।''⁷⁸

समाचार पत्रों में बलात्कार जैसी घटनाओं की सूचना हमारी मनोदशा को उस आदिमता और बर्बरता के सामने खड़ा कर देती है जहाँ इंसान की परिभाषा ही बदल जाती है। तब हमें एहसास होता है कि दो हाथ-पाँव वाला मनुष्य जैसा दिखने वाला यह जरूरी नहीं कि मानसिक रूप से भी मनुष्य ही हो। बलात्कार जैसी घटनाएँ इसी मानसिक जंगलीपन की देन है। इसे मनोविज्ञान की भाषा में हम मनोरोग कह सकते हैं। यह हमें संभोग का सुख नहीं अपितु भयंकर रूप से दैहिक-मानसिक दर्द देती है। पीड़ित के प्रति अनायास ही सहानुभूति उमड़ जाती है और शोषक के प्रति अपार घृणा। अगर समाज का रवैया देखें तो पाते हैं कि जो समाज बलात्कार-पीड़ित के प्रति सहानुभूति तो रखता है वहीं पीड़ित स्त्री को दूसरी दृष्टि से देखने लगता है। अब वह उसके लिए सामान्य स्त्री नहीं रहती, बल्कि अपवित्र आख्यान हो जाती है जिससे सम्पर्क भी औरों के लिए बदनामी का कारण बन जाता है। जो स्त्रियाँ बलात्कार के बाद आत्महत्या कर लेती हैं उन्हें समाज की अपार सहानुभूति मिलती है। वहीं जो अपने लिए न्याय की गुहार लगाती हैं उन्हें अपार घृणा का सामना करना पड़ता है। विचार किया जाये तो महानता मृत्यु को वरण करने में नहीं अपितु दोषी को सजा दिलाने में है। पीड़ित की मृत्यु ऐसे अपराध को बढ़ावा देती है और अपराधियों को अपराध करने के लिए प्रेरित करती है। पर बहुसंख्यक वर्ग इस बात को समझे वगैर पीड़ित को और पीड़ित करने में कोई कसर नहीं छोड़ता।

विरोधी के जीतने पर उस स्त्री के अन्तर्मन में कैसा घमासान मचा होगा यह तो वही महसूस कर रही होगी। उसके अन्दर पुरुष के प्रति कितनी घृणा, उभर जाती होगी यह उसकी मनःस्थिति देखने से ही पता लग सकता है। 'कोई तो' की कुन्तला इसी स्थिति से गुजरते हुए अचानक कह उठती है 'मुझे पुरुष से

घृणा है।' प्रभाकर जी ने ऐसी भी स्त्रियों के चरित्र की ओर भी संकेत किया जिनमें उनकी पीड़ा समझने की शक्ति नहीं है उनके लिए यह सब आनन्द का विषय है। वे कहती है कि— "मेरे साथ कई बार बलात्कार हुआ। इसमें बुरा क्या है, मजा ही आता है।"⁷⁹ मजा आना शब्द भारतीय संस्कार की स्त्री को शायद ही अच्छा लगे। भोग की आकांक्षा अपनी अतृप्त वासनाएँ शान्त करने के तरीके निकाल लेती है, गिनती में मिले दो-चार के आधार पर उस स्त्री की पीड़ा को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। पितृसत्ता के बोझ से दबी स्त्री के साथ ऐसी घटनाएँ केवल घर के बाहर ही नहीं होती अपितु घर के अन्दर खुद के पति द्वारा भी होती है। पति पितृसत्तात्मक समाज का ऐसा टैग है जो एक बार स्त्री से चिपक जाये तो स्त्री की इच्छा-अनिच्छा कुछ महत्व नहीं रखती। पुरुष की इच्छा ही सर्वोपरि हैं। इस पुरुष-श्रेष्ठता से स्त्री मुक्ति चाहती है।

बलात्कार जैसी घटनाओं का एक सामाजिक पक्ष यह है कि ऐसी घटना हो जाने पर भी ज्यादातर लोग न्याय के पचरे में इसलिए नहीं पड़ते, कि इससे बदनामी होगी। 'कोई तो' में शकुन्तला और अर्द्धनारीश्वर में सुमति बलात्कार से पीड़ित होने के बावजूद न्याय के लिए इसलिए नहीं जातीं क्योंकि इससे बदनामी होगी। पुलिस और प्रशासन का भ्रष्ट रवैया इस प्रकार की उदासीनता के लिए विशेष रूप से जिम्मेदार हैं। एक पीड़ित स्त्री अपनी उस दुर्दशा के विषय में बताते हुए कहती है— "पुलिस ने भारी रिश्वत लेकर उसे छोड़ दिया। मेरे पति से थानेदार ने कहा, कोई प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं है। वह दोषी है यह प्रमाणित करने के लिए आपकी पत्नी को जिस यातना से गुजरना होगा उसको सह पायेंगी वह ? . . .तो बात यहाँ तक आकर समाप्त हो गई। यही हो सकता था। . . . इन्सानियत के प्रति इतना बड़ा जघन्य अपराध केवल इसी छद्म नैतिकता के कारण दण्डित हुए बिना रह गया। कौन तोड़ेगा नैतिकता के आत्मघाती चक्रव्यूह को।"⁸⁰ मनुष्य के साथ घटित ऐसी अप्रत्याशित घटनाएँ उसके मानस के तीनों

79- अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 12

80- अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 15-16

पटल पर ऐसी छा जाती है कि भूलने का नाम ही नहीं लेती। इसके पीछे अनेक सामाजिक कारण मौजूद हैं।

ऐसी घटना के बाद लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन, अत्यधिक सहानुभूतिपरक रवैया और संस्कारगत विचार उसे भूलने ही नहीं देते। उससे सामान्य व्यवहार नहीं किया जाता है। लोगों के व्यवहार में आयी कृत्रिमता उस घटना को सजीव बना देती हैं। भारतीय संस्कारगत यौन शुचिता खण्डित होने के बाद अगर उस स्त्री के पति और परिवार वालों का दृष्टिकोण सामान्य भी है तो उसे जल्दी भूल नहीं पाती। एक स्त्री अपनी मानसिक स्थिति के विषय में बताती है कि “कितना बड़ा संसार है मेरे भीतर दर्द से सना। किसी को दिखा भी नहीं सकती, किसी की सहानुभूति भी नहीं चाह सकती। इसलिए पति परिवार का मुक्त स्नेह—सत्कार पाकर भी मुझे आज भी लगता है कि जैसे हर कोई मुझे हिकारत की नजर से देख रहा है। उस आत्मग्लानि से मैं काँप—काँप उठती हूँ, इसलिए नहीं कि कोई मुझे दोषी समझता है, बल्कि इसलिए कि मैं स्वयं अपने को इस दोष से मुक्त क्यों नहीं कर पा रही, समाज को झटक क्यों नहीं देती ?”⁸¹ बलात्कार के बाद स्त्री की मनोदशा पूरी तरह बदल जाती है। अगर कोई उसके अच्छे कार्यों के लिए भी सम्मान देता है तो उसे यह सहानुभूति ही लगती है। उसको सम्मान भी कष्ट देने लगता है। उसके अन्तर्मन में फैली अशान्ति का अन्त उसे दिखाई नहीं देता। विष्णु प्रभाकर ने उसी नारी की असहाय पीड़ा को ‘अर्द्ध नारीश्वर’ और ‘कोई तो’ में दिखाने का प्रयास किया है। सुमति और कुन्तल दोनों रात में अपने पति और ननद के साथ फिल्म देखने जाती हैं। रात में कुछ लड़के उनका स्कूटर खराब कर देते हैं और जब सभी लोग चले जाते हैं तो छेड़छाड़ करने लगते हैं। दोनों अपनी ननद को बचाने के लिए खुद को नर—पिशाचों के हवाले कर देती हैं। उन्हें उस पीड़ा से मुक्ति नहीं मिलती। सुमति खुद सोचने लगती है कि उसका पति उससे मुक्ति चाहता है। जब अजीत इस विषय में पूछता है— “आखिर तुम चाहती क्या हो ? बार—बार उस प्रश्न को

81- अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 16

उछालने का अर्थ क्या यह नहीं है कि तुमने बहुत बड़ा अहसान किया है। हम तुम्हें त्रास दे रहे हैं ? तुमने शहादत का जाम पिया है और हम तुम्हें सलीब पर चढ़ा रहे हैं ? बार'बार तुमने ...।

हाँ मैंने शहादत का जाम पिया और बदले में पाई घृणा और तुम ... तुम अपने को हीन समझने लगे हो और तुम्हारी हीनता आज रेत-रेत कर काट रहा है मेरे वजूद को। तुम मेरा सामना नहीं कर सकते। तुम मुझसे मुक्ति चाहते हो, इसलिए भागते फिरते हो तुम भी और तुम्हारी बहन भी जिसके लिए मैंने बलि दी अपनी ...दुनिया समझती है कैसा आदर्श परिवार है यह। कैसी सुन्दर जोड़ी है हमारी एक-दूसरे के प्रति समर्पित, एक दूसरे के अस्तित्व में पैबस्त ... नहीं ओढ़ सकती यह छद्म अब और मैं। मुक्ति दो मुझे।”⁸² वहीं जब ‘कोई तो’ की कुन्तल की बात करते हैं तो स्थिति एक दम उलट होती है। कुन्तल की ननद और पति नफरत करने लगते हैं। जब इस घटना के विषय में अनिरुद्ध से वर्तिका कुन्तल की पीड़ा के विषय में बताती है कि कुन्तल मुझसे कह रही थी कि— “नन्दिता मुझसे नफरत करती है।” ... तुम तो नफरत नहीं करते कुन्तल से ? तुम्हारी डायरी पढ़ चुकी हैं भाभी।” हम पारिवारिक संस्कारों के दास हैं। इन संस्कारों ने मन की स्वतंत्र सत्ता को नष्ट कर दिया है। कोई तो इनकी सत्ता को भी नष्ट करेगा। वह ‘कोई तो’ क्या तुम नहीं हो सकते ?”⁸³ सामान्यतः यह समस्या मध्य वर्ग में देखी जा सकती है कि यह न अपने संस्कारों को छोड़ पाता है न ही उच्च वर्गीय ढोंग से मुक्त हो पाता है।

बलात्कार आमतौर पर एक अमानवीय प्रवृत्ति है। इसको बढ़ावा देने में बहुसंख्यक समाज का हमेशा अप्रत्यक्ष समर्थन प्राप्त रहा है। जहाँ पीड़ित महिला को सशक्त बनाना चाहिए कि न्याय के लिए लड़ सके वहीं कमजोर बनाता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बलात्कार के बाद जिस पीड़ित महिला ने आत्महत्या कर ली उसे सम्मान की दृष्टि से देखा गया और जिसने उसके

82- अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 35

83- कोई तो, विष्णु प्रभाकर, पृ. 287-287

खिलाफ़ आवाज़ उठाई या अपने अदम्य जिजीविषा को बनाये रखा उसे अपमान, घृणा का सामना करना पड़ा। पितृ सत्तात्मक समाज में यौन शुचिता का प्रश्न केवल स्त्री तक ही सीमित है। पुरुष का न पवित्रता से लेना देना है न पत्नीव्रत्य से। इस समाज का पुरुष मानवीय गुणों से परे स्त्री पर अपना अधिकार समझता है। विष्णु प्रभाकर ने इस स्थिति से गुजरी स्त्रियों और उनके परिवार की पीड़ा को बड़े ही नजदीक से महसूस किया है। 'अर्द्धनारीश्वर' में रामकली का पिता अपनी इस पीड़ा को महसूस करता है और पूछने पर कहता है कि— “अब आप ही बताइए मोती की—सी आँख जैसी लड़की की आबरू चली गई तो रह क्या गया ? लोग यह कब सोचते हैं कि कसूर किसका है ! उनकी नजरों में तो लड़की अपवित्तर हो गई। लेकिन हम तो माँ—बाप हैं। कैसे फेंक दे उसे कूड़े पर ? कैसे घोंट दें उसका गला ? कौन करेगा उससे शादी ? हमें ही रखना होगा उसे अपने पास, पर कब तक कब तक?”⁸⁴

प्रायः देखा जाता है कि इस प्रकार की कोई घटना घटती है तो शुरुआती दौर में उससे बड़े—बड़े संगठनों और नेताओं का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। लेकिन जब वह प्रकाश में आ जाती है सब इस घटना को लेकर ऐसे उतावले हो जाते हैं कि मानो न्याय दिलाकर ही दम लेंगे। उनका साथ देने वाला पीड़ित आदमी उसके लिए बस वोट बैंक का साधन या प्रसिद्धि का माध्यम मात्र होता है। जब इन संगठनों के उत्साहपूर्ण कार्य की चर्चा चारों तरफ़ हो जाती तो इनके लिए न वह आदमी महत्व रखता है न मुद्दा। मीडिया भी कछुए की तरह अपनी गर्दन अन्दर समेट लेता है और नये शिकार की ओर बढ़ जाता है जो कि उसकी टी.आर.पी. बढ़ाने में सहायक हो। इस बात को प्रभाकर जी ने अर्द्धनारीश्वर में बड़े ही सटीक ढंग से उठाया है। जब सुमति राजकली से मिलने जाती है तो सबसे पहले तो लोग व्यंग्य भरे लहजे से स्वागत करते हैं। एक वृद्ध महिला कहती है— “छि: किससे मिलने आयी हैं आप ! जानती नहीं है पुलिस ने मुँह काला किया

⁸⁴ अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 55

उसके साथ। फिर हमल गिराया। जेल में रखा कई महीने। किसके काम की रही वह अब ?”⁸⁵

वृद्ध महिला ने सदियों से चली आ रही स्त्री के प्रति स्त्री की यौन शुचिता को लेकर क्या सोच होती है इस ओर ध्यान केन्द्रित किया। पुलिस द्वारा किये गये अमानवीय व्यवहार और उसके बाद उल्टे उसको जेल में रखना प्रशासनिक विफलता और लोकतंत्र की हत्या है। कानून का पालन करने वाले जब आम जनता के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं तो जनता किससे न्याय की गुहार लगाये। नेता, मीडिया और महिला मण्डल केवल फोटो खिंचवाकर शान्त हो जाये तो इससे बड़ी विडम्बना और क्या होगी। राजकली का वेबस, असहाय पिता संगठनों द्वारा मजाक बनाये जाने की पीड़ा व्यक्त करते हुए कहता है कि— आप हमारी कहानी क्यों जानना चाहती हैं ? क्यों बढ़ाना चाहती हैं हमारी मुसीबतें ? क्या किया है महिला मण्डल ने ? क्या वे हमें इंसान दिला सके ? क्या राजकली की शादी का बन्दोबस्त किया उन्होंने ? कोई नौकरी दिलवा सके ? वे तो उस हवलदार को मोअत्तल तक नहीं करा सके। मूँछों पर ताव देता वह अब भी गरीबों की इज्जत लूटता फिरता है। बस अपना नाम करने के लिए जुलूस निकाले, नारे लगाये, अखबारों में हमारे फोटो छपवाये और बस”⁸⁶

बलात्कार होने और उसके प्रचार—प्रसार का भी अपना अलग समाजशास्त्र है। इसको हम राजनीतिक समाजशास्त्र कह सकते हैं जिसकी सफलता मनोवैज्ञानिक आधारों पर चलती है। उच्च, मध्य और निम्न वर्ग की अपनी सीमाएँ हैं। कई स्तरों पर सभी समान हैं, परन्तु कुछ स्तर ऐसे भी हैं जहाँ दोनों भिन्न हैं। सुमति कहती है— “काश, मैं भी पुकार—पुकार कर कह सकती कि मैंने अपने साथ बलात्कार होने दिया, मैंने पर नहीं कह सकी। क्योंकि मैं उच्च वर्ग की नारी थीं और वह ...।”⁸⁷ समाज की प्रतिक्रिया सुमति और राजकली के साथ

85 अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 52

86 वही, पृ. 53

87 अर्द्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर, पृ. 58

अलग-अलग देखी जा सकती है। दोनों ने बलात्कार की पीड़ा को दो सामाजिक स्तरों पर सहा। कुन्तल और सुमति उच्च मध्यवर्ग की महिला हैं, उन्होंने एक स्त्री (ननद) की यौन शुचिता को बचाये रखने के लिए अपना बलात्कार होने दिया। तीनों अमानवीय कृत्यों को देखा जाये सबसे ज्यादा असहनीय पीड़ा राजकली ने सही, उसी के फोटो पूरे देश में छपे, उसी के साथ महिला मण्डल जैसी संस्थाओं ने अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिए झूठा नाटक किया। पुलिस अधिकारियों ने पर्याप्त सबूत होते हुए भी उनके खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की। वहीं उच्च वर्ग की स्त्रियाँ कोई प्रतिक्रिया नहीं करतीं, न ही उनके साथ दंगों में दुर्व्यवहार होता है, उसमें निम्न जाति के स्त्रियों के साथ हुए दुर्व्यवहार का प्रचार-प्रसार किया जाता है। राजनीतिक वर्ग जानता है कि इस वर्ग/जाति का नाम लेने से बहुसंख्यक लोग बिना सोचे-विचारे उनके कहे अनुसार चलने लगेंगे।

उपसंहार

विष्णु प्रभाकर अपनी रचनाओं के द्वारा मनुष्य मन के बाहरी और आंतरिक रूपों को परखने में सक्षम रहे हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में नारी के जीवन-संघर्ष को दिखाने का सफल प्रयास किया है। इनके अधिकांश उपन्यास नारी-समस्या प्रधान उपन्यास होने के कारण इनमें उच्च, मध्य एवं निम्न वर्गों की स्त्रियों की समस्याओं का सहज चित्रण मिलता है। स्वयं मध्यवर्गीय परिवार से होने के कारण विष्णु प्रभाकर ने अपने उपन्यासों में मध्यवर्ग की करुण गाथा का सबसे अधिक चित्रण किया है।

इन्होंने अपने उपन्यासों में निम्नलिखित समस्याओं के चित्रण के द्वारा नारी के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है -

- ❖ विभिन्न वर्गों की स्त्रियों का चित्रण।
- ❖ कामकाजी स्त्रियों की समस्याएँ और उनकी मानसिकता।
- ❖ पितृसत्तात्मक सिद्धांतों के अनुरूप बताए गए संस्कारों से ग्रस्त और उससे मुक्त नारी।
- ❖ बलात्कार-पीड़ित नारी और उसके प्रति समाज का दृष्टिकोण।
- ❖ दहेज प्रथा की समस्या।
- ❖ विधवाओं की दशा, समाज में उनका स्थान और उनका पुनर्विवाह।

विष्णु प्रभाकर ने अपने उपन्यासों में विभिन्न वर्गों की स्त्रियों का वर्णन किया है। यद्यपि वर्ग-विभेद के कारण और स्वरूप को लेकर सभी विद्वानों की राय एक नहीं है तथापि आमतौर पर देखा जाए तो वर्ग-

विभेद हमें दो रूपों में बिल्कुल स्पष्ट दिखायी देता है- एक प्राकृतिक कारणों से और दूसरा सामाजिक कारणों से । पहले में मनुष्यों के रूप-रंग, शारीरिक संरचना आदि की विभिन्नता आती है । दूसरे में आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि भिन्नताएँ । सामाजिक वर्ग-भेद एक स्थायी व्यवस्था नहीं होती, इसमें समय के साथ परिवर्तन संभव है । मार्क्सवाद में जिस आर्थिक आधार पर वर्ग-भेद का उल्लेख किया गया है, भारत में उसके अलावा भी सामाजिक, जातिगत भेदभाव भी हैं । मार्क्स का वर्ग-भेद केवल अर्थ के आधार पर है जबकि जातिगत भेद धर्म, सम्प्रदाय और समाज की आदतों और विश्वासों पर आधारित है । इन दोनों को एक समान मानना उचित नहीं है और इनसे जन्मी समस्याओं का हल भी एक-जैसा होना संभव नहीं है । विष्णु प्रभाकर ने अपने उपन्यास 'निशिकांत' की कमला, 'तट के बंधन' की नीलम, 'कोई तो' की वर्तिका, 'स्वप्न (स्वप्नमयी)' की अलका, 'संस्कार (दर्पण का व्यक्ति)' की रामो, 'अर्धनारीश्वर' की सुमति, 'संकल्प' की सुमति पात्रों के द्वारा मध्यवर्ग की स्त्रियों का परिचय पाठकों से कराया है । अनीला, पल्लवी जैसे नारी-पात्र उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं तो रामो, राजकली, पार्वती जैसे पात्र निम्नवर्ग का दर्पण बनकर रहे हैं ।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री अर्थ और शिक्षा से वंचित रहने के कारण वह पुरुष के सहारे जीवन-यापन करने की आदी हो गयी है । शिक्षा प्राप्त स्त्रियाँ अपने अस्तित्व और अपनी अस्मिता के लिए नौकरी करने

लगीं | नौकरीपेशा स्त्रियों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि उसे एक साथ अपने कार्यालय और घर का काम समान रूप से बखूबी करना पड़ता है और घर के कामों में परिवार का कोई सदस्य हाथ नहीं बँटाता | कार्यालय में, रास्ते में लोग और उसके पुरुष सहकर्मी उसे कामातुर दृष्टि से देखते हैं, उसे उनसे बचना पड़ता है अगर स्त्री केवल अपने काम से मतलब रखती है तो उसे घमंडी कहा जाता है | वहीं अगर खुले तौर पर सबसे समान व्यवहार करती है तो उसे चरित्रहीन तक की संज्ञा से अभिहित किया जाता है | 'कोई तो' की वर्तिका ऐसी स्त्री है जिसको अपने स्वतन्त्र व्यवहार की वजह से सामाजिक दंश झेलना पड़ता है।

निस्संदेह आर्थिक स्वतंत्रता स्त्रियों में आत्मसम्मान की भावना को बढ़ाती है | वे आत्मनिर्भर हो जाती हैं | उनका आत्मविश्वास और निर्णय लेने की क्षमता बढ़ जाती है | 'तट के बंधन' की गाँव की छुई-मुई नीलम पढ़-लिखकर नौकरी करती है | इस कारण वह अदम्य साहस का प्रतिरूप बन जाती है | 'तट के बंधन' की शशि, 'संकल्प' की सुमति इसी वर्ग के अन्य उदाहरण हैं | विष्णु प्रभाकर के अनुसार आर्थिक स्वतंत्रता स्त्रियों को पुरुषों के दमन और शोषणात्मक व्यवहार से मुक्ति देती है | यद्यपि नारी आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो जाती है, वह मानसिक रूप से पुरुष-जाति के प्यार की याचना और उसके अस्तित्व में अपनी पहचान की प्यासी है | नीलम और अनीला इसी प्रकार की सोच रखने वाले नारी-पात्र हैं |

पुरुष-प्रधान समाज में सदियों से चली आ रही सामंती सोच नारी की भूमिका को आज भी स्वीकार नहीं करती है। यह सोच हमेशा नारी वर्ग के लिए घातक ही रही है। इस सम्बन्ध में अगर ऐतिहासिक विश्लेषण करें तो पाते हैं कि शुरुआती दौर में स्त्री को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे; बाद में उसे देवी का दर्जा देकर घर की चहारदीवारी तक सीमित कर दिया गया। पुरुष प्रधान समाज ने ऐसे अनेक नियम-कायदे बनाये जो परम्परा, रिवाज और 'संस्कार' के नाम से जाने जाते हैं। सदियों तक शिक्षा और मान्यता से वंचित रहने के कारण नारी को अपने अस्तित्व और पहचान की भी चिंता नहीं रही। इसी के चलते वह परम्पराओं और रिवाजों की दासी बन गयी। यह संस्कार-ग्रस्त नारी पुरुष के आदेशानुसार अपने समस्त जीवनचर्या को संचालित करती है। पुरुष स्त्री को वस्तु और स्वयं को उस वस्तु का मालिक समझता आया है। उम्र के हर पड़ाव पर स्त्री कभी भी अपनी इच्छानुसार चलने के लिए स्वतन्त्र नहीं रही है। प्राचीन काल की स्त्रियों ने पुरुष की शोषणात्मक प्रवृत्ति पर प्रश्न उठाये बिना नियमों को स्वीकार कर लिया। उन्हें अपने अधिकारों की सुध तक नहीं थी। इसी दासता में वे अपने जीवन की सार्थकता और मुक्ति की कामना करती थीं। ऐसे संस्कार ग्रस्त स्त्रियों का वर्णन विष्णु प्रभाकर ने किया है। उनके उपन्यासों में तीन प्रकार की स्त्रियों को हम देख सकते हैं- 1. अपने अधिकारों से अनभिज्ञ और अपने अस्तित्व को पुरुष के अस्तित्व से जोड़कर देखने वाली स्त्रियाँ, 2.

आत्मसम्मान, समझदार परन्तु परम्परागत रुढ़िग्रस्त विचारों में जकड़ी हुई स्त्रियाँ और 3. स्वतन्त्र विचार रखने वाली स्त्रियाँ । 'संस्कार' की रामो, 'स्वप्न' की अलका और 'कोई तो' की वर्तिका इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । मर्यादा के अतिरिक्त दबाव ने भारतीय स्त्रियों के आत्मविश्वास को कमजोर बना दिया है जिस वजह से उनको हमेशा अज्ञात भय सताता रहता है । वे अपनी सुरक्षा के लिए पुरुषों से सुरक्षा की अपेक्षा रखती हैं । दूसरी ओर उसके साथ हुए अन्याय ने स्त्री को विद्रोही बना दिया है जैसे कि 'अर्धनारीश्वर' की राजकली । सती-प्रथा जैसी पुरानी परम्पराओं ने स्त्रियों के लिए उनकी चिताग्नि सजाई थी । अतः जानलेवा शोषण के विरुद्ध आज की स्त्रियाँ विद्रोही बन जाती हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

विष्णु प्रभाकर ने अपनी रचनाओं में अनेक बलात्कार-पीड़ित स्त्रियों का यथार्थ चित्रण किया है । ये बलात्कृत नारियाँ तमाम उम्र दुविधापूर्ण जीवन-यापन करने के लिए मजबूर हैं । दैहिक शोषण की शिकार इन स्त्रियों को समाज का दंश भी बहुत झेलना पड़ता है । भारत-विभाजन में मौतों से भी बढ़कर सबसे बड़ी त्रासदी यह थी कि स्त्रियों का बुरी तरह से यौन-शोषण और धर्म-परिवर्तन किया गया था और उस जघन्य अपराध के कारण जन्मी नाजायज़ औलादें । समाज बलात्कार के कारण जन्मे बच्चों को नाजायज़ कहकर किनारा कर देता है लेकिन जननी तो माँ होती है । वह उस बच्चे को नहीं छोड़ पाती है और न ही निश्चिन्त

जीवन जी पाती है | उसका अस्तित्व इस समाज के लिए निरर्थक और मूल्यहीन हो जाता है | तथाकथित आधुनिक समाज में बलात्कार के खिलाफ़ आवाज़ उठाने की हिम्मत स्त्रियों में थोड़ी बहुत आ गयी है | महिला मंडल और मीडिया बलात्कार पीड़ित नारियों को न्याय दिलाने के लिए आवाज़ देते हैं लेकिन गौर करें तो इसके पीछे छिपा बाजारीकरण मानवता को ख़त्म कर डालता है | 'अर्धनारीश्वर' की राजकली के साथ बलात्कार होने के बाद मीडिया ने उस अमानवीय व्यवहार को लोगों के सामने मसाले लगाकर चटखारेदार बनाकर प्रस्तुत किया | महिला मण्डल जैसी संस्थाएँ ऐसी घटनाओं में दखल-अन्दाज़ी करके अपनी संस्था के लिए नाम कमाने और अपने अस्तित्व को सुदृढ़ बनाने का साधन मात्र समझती हैं | समाज में किसी के मन में भी इन बलात्कार-पीड़ित नारियों के लिए न कोई सच्ची हमदर्दी देखी जाती है और न ही कोई सहानुभूति |

विष्णु प्रभाकर ने उच्च, मध्य एवं निम्न तीनों वर्गों की स्त्रियों के साथ हुए बलात्कार का अंकन किया है | इनमें से निम्नवर्ग की अधिकतर स्त्रियाँ अपने साथ हुए अत्याचार का खुलासा करती हुई चित्रित की गई हैं | यहाँ तक उनके साथ हुए बलात्कार का बाजारीकरण होता हुआ दिखाया है | उच्च और मध्य वर्ग की स्त्रियाँ इस मामले में ज़्यादातर चुप्पी साधती दिखाई गई हैं | पीड़ा सबकी एक-जैसी है लेकिन इससे जुड़ी हुई मानसिकता हमें चौंका देनेवाली बात है | आमतौर पर बलात्कार की शिकार नारी अपने जीवन को व्यर्थ और शापित समझने लगती है और

हीन भावना से पीड़ित हो जाती हैं | ऐसी भी एकाध स्त्रियाँ हैं जो बलात्कार को सम्भोग का सुख समझती हैं, क्योंकि इस बारे में कुछ किया नहीं जा सकता, ऐसा जान चुकी होती हैं |

नर और नारी की वर्गीय चेतना उसके परिवेश से प्रभावित होती है। परिवेश का सीधा सम्बन्ध अर्थ और सामाजिक मान्यता से है | सामाजिक मान्यताएँ जाति और धर्म को अधिक महत्व देती हैं | अर्थ को भी महत्व मिलता है मगर जाति और धर्म की तुलना में कम | विष्णु प्रभाकर ने विभिन्न आर्थिक-सामाजिक स्तर की स्त्रियों के चरित्रों को पाठकों के सामने रखते हुए इस ओर संकेत किया है कि आदिवासी स्त्रियाँ सभ्य कहे जाने वाले समाज की स्त्रियों की अपेक्षा ज़्यादा स्वतन्त्र हैं | अपने जीवन-साथी को चुनने में, सामाजिक कार्यों में भागीदार बनने में, और पुरुषों के समान निर्णय लेने में, वे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं | सभ्य समाज की स्त्रियाँ अपने इन सभी अधिकारों से लगभग वंचित होकर 'परम्परा', 'सभ्यता' और 'संस्कार' के नाम पर मौन हो जाती हैं | इसी के चलते वे राजनीति में भी अपनी अलग पहचान नहीं बना पा रही हैं | विष्णु प्रभाकर ने राजनीति में स्त्रियों की कमज़ोर स्थिति की ओर संकेत किया है, हालाँकि इस स्थिति में धीरे-धीरे सुधार होने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं |

स्त्रियों के आर्थिक पिछड़ेपन के कारण वे पुरुषों की आश्रित मानी जाती रही हैं | इसी कारण शादियों में दहेज़-प्रथा प्रबल होती गयी | कुरूप,

अपंग, अनपढ़, गरीब लड़कियाँ ही नहीं अपितु सुन्दर, सुशील, पढ़ी-लिखी और संपन्न परिवार की कन्याएँ भी दहेज़-प्रथा के ताप से बच नहीं पाती हैं। 'तट के बंधन' में वकील बुधवार का बेटा नरेश अधिक दहेज़ के लिए ऐसा अमानवीय कृत्य कर बैठता है कि वह जान बूझकर अपनी पत्नी शीला को मौत के घाट उतार देता है। बाद में अपने ससुर का पत्र पाकर वह आत्मग्लानि के कारण आत्महत्या कर लेता है। अनेक कन्याएँ दहेज़ न दे पाने के कारण अविवाहिता ही रह जाती हैं जिन्हें माता-पिता अपना बोझ समझते हैं। विष्णु प्रभाकर ने इस प्रकार भारतीय सामाजिक परिवेश में दहेज़ प्रथा के विकराल रूप का यथोचित उल्लेख किया है। आज दहेज़ के खिलाफ कानून लागू होने के बावजूद हालत में कोई सुधार हुआ हो ऐसा नहीं कहा जा सकता।

विष्णु प्रभाकर ने विधवा समस्या को उठाया है। इनकी समस्त रचनाओं को देखने से पता चलता है कि यह समस्या अब उच्च और निम्न वर्ग की नहीं है अपितु मध्य वर्ग की है। मध्य वर्ग इस परम्परा को छोड़ना चाहता है पर पारम्परिक दबावों और अंध रिवाजों की वजह से मुक्त नहीं हो पा रहा है। ऐतिहासिक परिदृश्य पर नज़र डालें तो विधवा पुनर्विवाह की समस्या निम्न वर्ग में कभी नहीं थी। समय के चलते उच्च वर्ग की जीवन-शैली के साथ-साथ रुढ़िगत दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया। मध्य वर्ग ने उन्नीसवीं सदी में शुरू हुए इस सुधारवादी आन्दोलन का सबसे ज्यादा विरोध किया और आज इक्कीसवीं सदी में भी

इससे मुक्त नहीं हो पाया है। 'संकल्प' में सुमति पति की मृत्यु के बाद आजीवन विधवा जीवन जीती है ।

समान्यतः विधवा स्त्री के प्रति स्त्री का क्या दृष्टिकोण है । इसको 'कोई तो' और 'निशिकांत' उपन्यास में वर्तिका की विधवा नौकरानी और कमला के साथ हो रहे व्यवहार के रूप में देख सकते हैं । कमला की सास और उसकी ससुराल के अन्य लोग उसके सहज व्यवहार की वजह से उसे चरित्रहीन कहने में तनिक भी संकोच नहीं करते हैं । यह समस्या विशेष रूप से मध्य वर्ग की समस्या है । इस संदर्भ में पुरुष को रखकर देख जाये तो पत्नी की मृत्यु के बाद पति सभी शुभ अवसरों में भाग ले सकता है और उसमें कोई दोष नहीं देखा जाता । पितृसत्तात्मक समाज में सारे दोष, पाप-पुण्य स्त्री के साथ ही जुड़े हैं, उसे मुक्ति तब तक नहीं मिल सकती, जब तक व्यापक रूप में समाज और विशेष रूप से पुरुष वर्ग की मानसिकता में परिवर्तन नहीं आ जाता ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विष्णु प्रभाकर ने अपने उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि दृष्टिकोणों से नारी के अस्तित्व और उसकी अस्मिता के विविध रूपों का सरल, सहज और यथार्थ चित्रण करने का औपन्यासिक प्रयास किया है ।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

आधार ग्रन्थ-सूची

उपन्यास

अ.क्र.	किताब का नाम	लेखक	प्रकाशन/संस्करण
1	अर्धनारीश्वर	विष्णु प्रभाकर	शब्दकार, 159, गुरु अंगद नगर(वेस्ट), दिल्ली-110092 , संस्करण 1994
2	कोई तो,	विष्णु प्रभाकर	शब्दकार, 159, गुरु अंगद नगर(वेस्ट), दिल्ली-110092 , संस्करण 1980-81
3	तट के बन्धन	विष्णु प्रभाकर	अंकुर प्रकाशन, 9/30-सी, बाज़ार मार्ग, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-३२, संस्करण 1980
4	निशिकान्त	विष्णु प्रभाकर	प्रभात प्रकाशन, चावडी बाज़ार, दिल्ली-6 प्रथम नया संस्करण 1993
5	संकल्प	विष्णु प्रभाकर	प्रभात प्रकाशन, चावडी बाज़ार, दिल्ली-6 प्र.सं 1993
6	संस्कार	विष्णु प्रभाकर	प्रभात प्रकाशन, चावडी बाज़ार, दिल्ली-6 प्र.सं 1993
7	स्वप्न	विष्णु प्रभाकर	प्रभात प्रकाशन, चावडी बाज़ार, दिल्ली-6 प्र.सं 1993

आत्मकथा

1	पंखहीन(आत्मकथा, भाग-1)	विष्णु प्रभाकर	राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 संस्करण-2004
2	मुक्त गगन में(आत्मकथा, भाग-2)	विष्णु प्रभाकर	राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 संस्करण-2004
3	और पंछी उड़ गया(आत्मकथा, भाग-3)	विष्णु प्रभाकर	राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 संस्करण-2004

कहानी

1	धरती अब भी घूम रही है	विष्णु प्रभाकर	राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 चतुर्थ सं. 1970 प्र. सं. 2001
2	मेरा वतन	विष्णु प्रभाकर	निधि प्रकाशन, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, सं. 1980
3	मैं नारी हूँ खण्ड-1,2	विष्णु प्रभाकर	सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
4	संघर्ष के बाद	विष्णु प्रभाकर	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली तृतीय सं. 1968
5	विष्णु प्रभाकर : प्रतिनिधि रचनाएँ,	सं. डॉ. कमल किशोर गोयनका	प्रभात प्रकाशन, चावड़ी, बज़ार दिल्ली-6 प्र. सं. 1988

नाटक

1	विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण नाटक भाग-2	विष्णु प्रभाकर	प्रभात प्रकाशन, चावडी बाजार, दिल्ली-6 प्र.सं 1988
2	बारह एकांकी(संग्रह)	विष्णु प्रभाकर	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली द्वितीय सं. 1965

निबंध

1	विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण निबन्ध, भाग-1,2,3,	विष्णु प्रभाकर	प्रभात प्रकाशन, चावडी बाजार, दिल्ली-6 प्र.सं 1994
---	--	----------------	---

कविनी

1	आवारा मसीहा	विष्णु प्रभाकर	राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, संस्करण- 2004
---	-------------	----------------	--

सहायक ग्रंथ-सूची

1	अठारह उपन्यास	राजेन्द्र यादव	अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्र. सं. 1981
2	आखिर क्यों	विष्णु प्रभाकर	सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्र. सं. 2001
3	आदमी की निगाह में औरत	राजेन्द्र यादव	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं.-2007

4	आधी आबादी	इन्दु भारती	अनामिका पब्लिशर्स, डिस्ट्रिब्यूटर्स(प्रा.) लि. 469/3, 21ए अन्सारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-10002, प्र. सं.-2005
5	आधुनिक समाज में वर्ग	टी. बी. वॉटमोर, अनु. वंदना मिश्र	ग्रन्थ शिल्पी, श्रावस्ती कॉम्पलेक्स, लक्ष्मी नहर, नई दिल्ली-110092 प्र. हिन्दी सं. 2006
6	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान	डॉ. देवराज उपध्याय	साहित्य भावप्रकाशन, इलहाबाद, प्र. सं. 1956
7	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	बच्चन सिंह	लोकभारती प्रकाशन-15, ए महात्मा गाँधी मार्ग, इलहाबाद, सं.-2005
8	औरत : कल, आज और कल	आशा रानी व्होरा	सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्र. सं. 2001
9	उपन्यास का मनोविश्लेषण	डॉ. धनराज मानधाने(माहेश्वरी)	अन्नपूर्णा प्रकाशन 127/1100, डब्लू वन, साकेत नगर, कानपुर-208014 प्र.सं-2011
10	उपन्यास और लोक-जीवन	रैल्फ फॉक्स	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, अनुवादक-नरोत्तम नागर, (प्रा.) लिमिटेड, एस. एस. रोड, नई दिल्ली, सं. 1957
11	ऐतिहासिक उपन्यास : तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. श्रीनारायण भारद्वाज,	कोणार्क प्रकाशन 61 एफ, कमला नगर, दिल्ली, प्र. सं. 1983
12	काव्यालंकार	भामह	परिमल पब्लिकेशन, शक्तिनगर, अनु. सत्यदेव चौधरी, दिल्ली-110007, द्वि.सं-1990
13	क्या खोया क्या पाया	विष्णु प्रभाकर	किताब घर, गाँधीनगर, दिल्ली, प्र. सं. 1982
14	जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला	रामेश्वरलाल खंडेलवाल	नेशनल पब्लिसिंग हाउस, 3/38 अन्सारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-10003

15	जिन्ना : भारत विभाजन के आईने में	जसवन्त सिंह	राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 सं. 2009
16	दुर्ग द्वार पर दस्तक	कात्यायनी	परिकल्पना प्रकाशन 3/274, विश्वास खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010 द्वि.सं-1998
17	नारी : अन्तःदर्पण और समाज	चन्द्रमोहन अग्रवाल	इंडियन पब्लिशर्स, 156-डी
18	प्रतापनारायण ग्रन्थावली	सं. विजय शंकर मल्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्र. आवृत्ति, वि. सम्वत् 2014, कमला नगर 110007
19	प्रेमचंद पूर्व के हिन्दी उपन्यास	ज्ञानचंद जैन	आर्य प्रकाशन, सरस्वती भंडार गाँधीनगर दिल्ली-110031, सं. 1998
20	भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज	जगमोहन सिंह / चमनलाल	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं.-2010
21	भारतीय उपन्यास साहित्य का उद्भव,	आर. एस. सर्राजु,	गीता प्रकाशन, मोतीबाजार, हैदराबाद, सं. 1988
22	भारतीय उपन्यास साहित्य का उद्भव: तुलनात्मक समाजशास्त्रीय विश्लेषण	आर. एस. सर्राजु	मिलिंद प्रकाशन, , हैदराबाद, प्र. सं. 2005
23	मनुस्मृति	टीकाकार रामचन्द्र शास्त्री	विद्या विहार, नई दिल्ली, सं. 2000
24	महिला श्रमिक : सामाजिक स्थिति एवं समस्याएँ	डॉ. जास्मिन लारेंस	आदित्य पब्लिशर्स, सागर, म.प्र. -470113, प्र. सं. 1999
25	मार्क्सवादी चिन्तन और प्रवृत्तियाँ	त्रिभुवन सिंह	मध्य प्र. हिन्दी ग्रन्थ एकेडमी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, बानगंगा भोपाल(म.प्र.)-462003

26	युग स्रष्टा विष्णु प्रभाकर, हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार विष्णु प्रभाकर से पंकज बिष्ट की बातचीत पर आधारित वृत्त चित्र (Documentary) -2005		
27	विष्णु प्रभाकर सम्पूर्ण साक्षात्कार	विष्णु प्रभाकर	प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड नई दिल्ली-110002, प्र. सं. 1999
28	विष्णु प्रभाकर,	सं. डॉ. विश्वनाथ मिश्र/ डॉ. कृष्णचंद्र गुप्त	कुसुम प्रकाशन, नवेन्दु सदन, आदर्श कालोनी, मुजफ्फरनगर, उ.प्र. -251001, प्र. सं. 1991
29	विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य	सं. डॉ. महीप सिंह	अभिव्यंजना प्रकाशन 109/48, पंजाबी बाग, नई दिल्ली-110026, प्र. सं. 1983
30	विष्णु प्रभाकर का उपन्यास साहित्य : संवेदना और शिल्प	डॉ. पूनम पटवा	ज्ञान प्रकाशन, 128/90 जी ब्लॉक किदवई नगर, कानपुर-208011, प्र. संस्करण-2012
31	स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन	विवेकी राय	लोकभारती प्रकाशन-15ए, महात्मा गाँधी मार्ग इलहाबाद, सं.-1974
32	रस्साकशी,	वीरभारत तलवार,	सारांश प्रा० लि० 142 ई पॉकेट-4, मयूर बिहार नई दिल्ली सं. 2005
33	स्त्री संघर्ष का इतिहास	राधा कुमार	वाणी प्रकाशन 21 ए दरियागंज, नई दिल्ली-110002 सं. 2005
34	स्त्री अस्मिता के प्रश्न	सुभाष सेतिया	सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
35	स्त्री : मुक्ति का सपना	कमला प्रसाद	वाणी प्रकाशन 21 ए दरियागंज, नई दिल्ली-110002
36	स्त्री: उपेक्षिता	सीमोन द बोउवार अनुवाद-प्रभा खेतान	हिन्दी पॉकेट बुक प्राइवेट लिमिटेड जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली-110003, संस्करण-2002

37	संस्मरण और विचार	गाँधी	गाँधी शांति प्रतिष्ठान तथा सस्ता साहित्य मण्डल संयुक्त प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968
38	सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान	शंकर प्रसाद	अनुपम प्रकाशन, पटना-6ए प्र. सं-1978
39	साहित्य का उद्देश्य	प्रेमचन्द	हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2001
40	हिन्दी उपन्यास-साहित्य	ब्रजरत्नदास	हिन्दी साहित्य-कुटीर बनारस, सं. संवत् 2021
41	हिन्दी उपन्यास का इतिहास	गोपाल राय	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं.-2005
42	हिन्दी एकांकी और एकांकीकार	डॉ. रमा सूद	अन्नपूर्णा प्रकाशन, साकेत नगर, कानपुर, प्र. सं. 1981
43	हिन्दी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति	डॉ. म.के. गाडगिल	पुस्तक संस्थान, नेहरू नगर, कानपुर, प्र. सं. 1976
44	हिन्दी गद्य-शैली का विकास	जगन्नाथ प्रसाद शर्मा	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. संवत् 2017
45	हिन्दी उपन्यास: नये क्षितिज	डॉ. शशिभूषण सिंहल	प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, प्र.सं.1992
46	हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य	डॉ. प्रेम भटनागर	अर्चना प्रकाशन 10-सी, जालूपुरा जयपुर प्र. सं.1968
47	हिन्दी उपन्यास कला	डॉ. रामलखन शुक्ल	सन्मार्ग प्रकाशन, 16 यू. बी. बँगलो रोड, दिल्ली-7 प्र.सं-1972
48	हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन	डॉ. शान्ति भारद्वाज	सुशील प्रकाशन पुरानी मंडी, अजमेर, प्र. सं. 1968
49	हिन्दी उपन्यास का विकास	मधुरेश	सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, सं० 2004 प्रयाग, सं 2005

50	हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा	रामदरश मिश्र	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय सं. 1982
51	हिन्दी उपन्यास : सृजन-प्रक्रिया	शिवबहादुर सिंह	शैलजा प्रकाशन 107/295 ब्रह्मनगर कानपुर-12, प्र. सं. 1981
52	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. संवत् 2060
53	हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	रामस्वरूप चतुर्वेदी	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 18 वां सं. 2005
54	हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी	रेखा कुलकर्णी	चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, सं. -1994
55	हिन्दी नवजागरण की विचारधारा	वीरभारत तलवार	भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास शिमला, प्र. सं. - 2001
56	हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष	शिवदान सिंह चौहान, विष्णुचंद्र शर्मा(सं.),	स्वराज प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली, सं. 2007
57	हिन्दी साहित्य का इतिहास	हृदयेश मिश्र, शिवलोचन पाण्डे	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, द्वितीय सं. 1995
58	हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास	हजारी प्रसाद द्विवेदी	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, छठा सं. 2010

English

1. The twentieth Century Novels, J. W. Beach, Appleton Century Crafts, New York 1932
2. The Interpretation of Dreams, S. Freud, Harper Collin Publishers 10 East 53rd Street New York, 1965

पत्र-पत्रिकाएँ

क्र.सं.	सम्पादक	वर्ष
1. आजकल,	सीमा ओझा	जुलाई 2009
2. कथादेश,	हरिनारायण,	मई 2009
3. नया ज्ञानोदय,	रवीन्द्र कालिया,	मई 2009
4. पाखी,	अपूर्वा जोशी,	सितम्बर 2008
5. संकल्य,	प्रो. टी. मोहन सिंह,	अक्टूबर-दिसम्बर 2006
6. समीक्षा,	सत्यकाम,	अप्रैल-जून 2009
7. सबलोग,	किशन कालजयी,	मई 2009
8. समकालीन भारतीय साहित्य,	अरुण प्रकाश,	मार्च-अप्रैल 2012
9. श्रावन्ती,	सी.एस. होसगौडर,	जून 2013
10. संग्रथन,	डॉ. एम.एस. विनयचंद्रन,	अप्रैल 2009
11. संग्रथन,	डॉ. एम.एस. विनयचंद्रन,	नवम्बर-दिसम्बर 2010
12. संग्रथन,	डॉ. एम.एस. विनयचंद्रन,	अक्टूबर 2012

13.साहित्य अमृत,	त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी,	जून 2009
14.वागर्थ,	एकांत श्रीवास्तव/कुसुम खसिनी,	नवम्बर 2011
15.वागर्थ,	एकांत श्रीवास्तव/कुसुम खसिनी,	अगस्त 2012
16.वागर्थ,	एकांत श्रीवास्तव/कुसुम खसिनी,	अक्टूबर 2013
17.वैचाराकी,	डॉ. बाबूलाल शर्मा,	जनवरी-फरवरी 2012
18.हिन्दी संवाद हस्तपत्रिका,	शशि नारायण स्वाधीन,	1मई-अक्टूबर 2008

कोश :

1. हिन्दी उपन्यास कोश, भाग-1, गोपालराय, ग्रंथ निकेतन पटना, रानी
घाटपटना-6 प्र. सं०-1968
2. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1,2, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा(सं.), ज्ञानमण्डल लिमिटेड, प्र. सं. 2015
बनारस, 2007
3. हिन्दी शब्दकोश, डॉ. स्वप्न मुकर्जी, सं. शिक्षा भारती, कश्मीरी
गेट, दिल्ली, सं. 1989
4. अमर कोश, टीका. हरगोविंद शास्त्री, चौखम्बा विद्या भवन,
बनारस, सं. 1957